हिन्दी के आधुनिक उपन्यासों का नैतिक भावबोध

(A STUDY OF MORAL CONCEPT IN MODERN HINDI NOVELS)

Thesis Submitted to
THE UNIVERSITY OF COCHIN

for the degree of
DOCTOR OF PHILOSOPHY

By
शशिदेवन डी.
SASIDEVAN D.

Prof. and Head of the Department
DR. N. RAMAN NAIR

Supervisor
DR. S. SHAAJAHAN

DEPARTMENT OF HINDI
UNIVERSITY OF COCHIN
COCHIN-682 022

1984

C E R T I F I C A T E

This is to certify that this thesis is a bonafide record of work carried out by D. Sasidevan under my supervision for Ph.D. and no part of this has hitherto been submitted for degree in any University.

Dr.S.SHAHJAHAN
Supervising Teacher

Department of Hindi
University of Cochin
Cochin-22
28--5--1984.

प्राक्कथन

प्राक्कथन

नैतिक मूल्य जीवन को गति एवं रूप देनेवाला तत्व है, जिसके अभाव में समाज में पापाचार बढ़ जाता है और अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है । अत: अराजकता एवं पाप से बचने केलिए समाज ने व्यक्ति केलिए जो नियम निर्धारित किये हैं, उन नियमों को नैतिक मूल्यों के अन्दर स्थान मिलता है । समाज के सारे के सारे नियमों की तरह नैतिक मूल्य भी परिवर्तनोन्मुख होते हैं । समाज से स्वीकृत एक मूल्य कालांतर में अस्वीकृत भी हो जाता है । इस स्वीकृति एवं अस्वीकृति की स्थिति मूल्यसंबन्धी मान्यताओं के विश्लेषण में परिलक्षित होती है । जीवन का यथातथ्य चित्रण करनेवाला साहित्यकार अपनी रचनाओं में बदलते नैतिक मूल्य के स्वरूप का अंकन करता है और नये जीवन बोध की व्याख्या करता है ।

स्वाधीनोत्तर उपन्यासों में चित्रित नैतिक मूल्य स्वाधीनता पूर्व के उपन्यासों से भिन्न लगते हैं । पचास के पूर्व के उपन्यासों में उपन्यासक की जो दृष्टि पायी जाती है वह समाजोन्मुख अधिक रही है ।

लेकिन स्वाधीनोत्तर काल की औपन्यासिक रचनायें अधिक वैयक्तिक होती गयी हैं । साठोत्तरी उपन्यासकारों ने वैयक्तिकता पर ज़ोर देकर दिशा-हीनता, अस्तित्व बोध, अजनबीपन जैसे नये भावों को अपने उपन्यासों में अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है ।

स्वाधीनोत्तर काल के उपन्यासों का अध्ययन करने से उपन्यासकार की विविध दृष्टियों का परिचय मिलने के साथ ही साथ सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक क्षेत्रों के मूल्य विघटन का भी पता चलता है । इस कारण स्वाधीनोत्तर उपन्यासों में समसामयिक नैतिक यथार्थ का चित्रण मिलता है जो नये मूल्य संबन्धी धारणाओं का स्वरूप प्रस्तुत करता है ।

प्रस्तुत शोध प्रबंध में हिन्दी उपन्यासों के बदलते नैतिक परिप्रेक्ष्य को आंकने का यथासंभव प्रयास किया गया है । उपन्यासों के नैतिक यथार्थ का यह अध्ययन छः अध्यायों के अंदर किया गया है । पहले अध्याय में नैतिकता की परिभाषा एवं व्याख्या पुराने और नये संदर्भों में की गयी है । भारतीय एवं पाश्चात्य दृष्टि में नैतिक मूल्य की व्याख्या के साथ ही साथ धर्म और नैतिकता, समाज और नैतिकता, व्यक्ति और नैतिकता को एक नये ढंग से देखने की कोशिश इस अध्याय में की गयी है ।

दूसरा अध्याय मूल्य संक्रमण की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक परिस्थितियों का अध्ययन है । बदलती परिस्थितियों के कारण समाज में उभरनेवाले नये मूल्यों को समसामयिक यथार्थ के आधार पर परखने का प्रयास इस अध्याय में किया गया है ।

तीसरे अध्याय में स्वाधीनता पूर्व के उपन्यासों में दृष्टिगत नैतिकता का स्वरूप प्रस्तुत किया गया है । प्रारंभिक उपन्यासों के नैतिक भाव बोध को चित्रित करने के साथ साथ प्रसाद,जोशी, जैनेन्द्र, यशपाल, उग्र, भगवतीचरण वर्मा एवं प्रेमचंद के उपन्यासों में बिंबित नैतिक मूल्य-बोध को भी आंकने का प्रयत्न किया गया है ।

चौथे अध्याय में स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों के नैतिक भावबोध को पकड़ने की कोशिश की गयी है । इसमें एक ओर पुरानी पीढ़ी के जोशी, यशपाल, जैनेन्द्र, भगवतीचरण वर्मा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी आदि उपन्यासकारों की औपन्यासिक रचनाओं में चित्रित नैतिक स्वरूप का अध्ययन है तो दूसरी ओर अज्ञेय, रेणु, नागार्जुन, राजेन्द्र यादव, अमृतलाल नागर, धर्मवीर भारती, चतुरसेन शास्त्री जैसे उपन्यासकारों की नैतिक दृष्टि का अध्ययन है । साथ ही साठोत्तरी पीढ़ी के मोहन राकेश,मन्नू भंडारी, निर्मल वर्मा, राजकमल चौधरी, नरेश मेहता, शैलेश मटियानी, श्रीलाल शुक्ल जैसे उपन्यासकार के उपन्यासों में चित्रित नैतिकता पर भी आलोचना प्रस्तुत की गयी है ।

पांचवें अध्याय में सामाजिक यथार्थ,उपन्यासों में प्रतिबिंबित वास्तविकता, यथार्थ और लेखकीय दृष्टि,समाज सापेक्षता और मूल्यबोध, लेखकीय प्रतिबद्धता आदि विषयों का विश्लेषण उपन्यासों के नैतिक मूल्यांकन के विशेष संदर्भ में किया गया है ।

अंतिम अध्याय उपसंहार है जिसमें इस अध्ययन का निष्कर्ष निकाला गया है ।

यह अध्ययन स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों के नैतिक भावबोध को एक विशेष दृष्टि से देखने का प्रयास है । समय एवं समाज के अनुसार बदलनेवाली नैतिक मान्यतायें समसामयिक सामाजिक यथार्थ को प्रस्तुत करती दिखाई गयी है ।

मेरा यह शोध कार्य डॉ॰ शाहजहाँ के विद्वत्तापूर्ण निर्देशन में फलीभूत हुआ है । इस शोध प्रबंध को नयी दृष्टि और नया रूप देने में मुझे डॉ॰ शाहजहाँ से सात्विक प्रेरणा एवं हार्दिक सहायता मिली है । उनकी प्रेरणा एवं सहायता के अभाव में यह शोध कार्य शायद संपन्न नहीं होता । मैं अपने इस गुरुवर के प्रति आभारी हूँ । विभागाध्यक्ष पूज्य गुरुवर डॉ॰ रामन नायर जी के प्रति भी मैं अपनी हार्दिक भावना प्रकट करता हूँ ।

टंकण की अशुद्धियों केलिए मैं क्षमा प्रार्थी हूँ ।

भवदीय,

शशिदेवन॰ डी॰

हिन्दी विभाग,
कोचीन विश्वविद्यालय,
कोचीन पिन 682022
ता॰ 28·05·1984

विषय सूची

पृष्ठ संख्या

पहला अध्याय — 1 - 23

नैतिक भावबोध की व्याख्या

नैतिकता क्या है - नैतिकता भारतीय दृष्टि में - नैतिकता पाश्चात्य दृष्टि में - पाश्चात्य और भारतीय विचारों में अंतर - धर्म, नीति और नैतिकता - समाज और नैतिकता - व्यक्ति और नैतिकता ।

दूसरा अध्याय ... 24 - 56

मूल्य संक्रमण की परिस्थितियाँ

सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक - परिस्थितियाँ

तीसरा अध्याय ... ... 57 - 116

पचास के पूर्व के उपन्यासों में नैतिक मूल्य

हिन्दी के प्रारंभिक उपन्यासों की नैतिक भावभूमि - प्रेमचंद युग के उपन्यासों में नैतिक मूल्य - जयशंकर प्रसाद के उपन्यासों में नैतिक मूल्य - इलाचंद्र जोशी के उपन्यासों की नैतिक भावभूमि, इलाचंद्र जोशी के उपन्यासों में नैतिक मूल्य - जैनेन्द्र के उपन्यासों की

पृष्ठ संख्या

नैतिक भावभूमि, जैनेन्द्र के उपन्यासों में नैतिक मूल्य - यशपाल के उपन्यासों की नैतिक भावभूमि, यशपाल के उपन्यासों में नैतिक मूल्य - उग्र के उपन्यासों में नैतिक मूल्य - भावतीचरण वर्मा के उपन्यासों में नैतिक मूल्य - प्रेमचंद के उपन्यासों की नैतिक भावभूमि, प्रेमचंद के उपन्यासों में नैतिक मूल्य ।

चौथा अध्याय ... ... 117 - 211

पचास के बाद के उपन्यासों में नैतिक मूल्य

पचास के बाद के उपन्यासों में पुरानी पीढ़ी की नैतिक दृष्टि - इलाचंद्र जोशी, जैनेन्द्र, यशपाल, भावतीचरण-वर्मा, हज़ारीप्रसाद द्विवेदी - पचास के बाद के उपन्यासकारों की नैतिक दृष्टि - अज्ञेय, फणीश्वरनाथ-रेणु, नागार्जुन, राजेन्द्र यादव, अमृतलाल नागर, धर्मवीर भारती, चतुरसेन शास्त्री - साठोत्तरी उपन्यासों में नैतिक मूल्य - मोहन राकेश, मन्नूभंडारी, निर्मल वर्मा, राजकमल चौधरी, नरेश मेहता, शैलेश मटियानी, श्रीलाल शुक्ल ।

पृष्ठ संख्या

पांचवाँ अध्याय ... 212 - 253

यथार्थ मूल्य और दृष्टि

सामाजिक यथार्थ और बदलते परिप्रेक्ष्य - कृतियों में प्रतिबिंबित वास्तविकता - पचास के पूर्व के उपन्यासों का सामाजिक यथार्थ, पचास के बाद के उपन्यासों का सामाजिक यथार्थ, साठोत्तरी उपन्यासों का सामाजिक यथार्थ - यथार्थ और लेखकीय दृष्टि - समाज सापेक्षता और मूल्यबोध नैतिकता और लेखकीय दृष्टि - लेखकीय प्रतिबद्धता ।

छठा अध्याय ... ... 254 - 257

उपसंहार

संदर्भ ग्रंथ सूची ... ... 258 - 271

पहला अध्याय

नैतिक भावबोध की व्याख्या

पहला अध्याय

नैतिक भाव बोध की व्याख्या

नैतिकता क्या है?

नैतिकता एक ऐसा शब्द है जिसकी व्याख्या पूर्ण रूप से प्रस्तुत करना और जिसके संबन्ध में आतंतिक निर्णय पर पहुँचना असंभव है । इस शब्द के इतने अर्थ हो सकते हैं जितने विश्व भर के व्यक्ति।क्योंकि आधुनिक परिस्थितियों में नैतिकता व्यक्ति की अपनी चीज़ बन गयी है । परंतु अध्ययन की विशेष सीमाओं को ध्यान में रखते हुए कहीं न कहीं नैतिकता की अर्थ व्याप्ति को सीमित करना ही पडेगा । वैसे जीवन के प्रारंभ काल से ही नैतिक जीवन की समस्या भी व्यक्ति के सामने प्रस्फुटित होने लगी थी । आदिम मनुष्य के मन में जब से चिंतन और मनन की शक्ति जन्म लेने लगी तब से ही वैद्यता-अवैद्यता की समस्यायें भी खडी होने लगीं । जो चीज़ व्यक्ति के हित केलिए सहायक नहीं थी उसको अनैतिक मानने केलिए व्यक्ति बाध्य सा हो गया । और इसके आधार पर व्यक्ति के सामने कुछ नियम उभरने भी लगे । ये नियम आगे चलकर सामाजिक संहित के आधार बन गये और इन नियमों का उल्लंघन अनैतिक माना गया ।

नैतिकता और अनैतिकता की मान्यतायें समाज में कुछ विशेष परिणामों को लेकर निश्चित की जाने लगीं । आगे चलकर यही नियम धर्म के अन्तर्गत माने जाने लगे ।

जैसे जैसे मनुष्य ने ईश्वर की शक्ति को पहचानने की कोशिश की और ईश्वर को अपने जीवन के नियंता के रूप में देखने का प्रयास किया वैसे वैसे सामाजिक कल्याण के नियम ईश्वरीय आदेश के रूप में धार्मिक ग्रंथों में स्थान पाने लगे । इन नियमों का प्रचार और प्रसार करने वाले लोग मसीहा कहलाये । धार्मिक दायरे में नैतिकता का प्रवेश इस तरह होने लगा और अनैतिक व्यक्ति केलिए नरक के दंड का विधान भी किया जाने लगा । इस तरह सत्य, न्याय, नीति, ब्रह्मचर्य, त्याग, करुणा आदि स्वर्ग को पाने केलिए व्यक्ति के लिए आवश्यक गुण माने गये । प्राचीन काल में ये ही नैतिकता के आधार उद्घोषित किये जाने लगे। संक्षेप में यही नैतिकता के विकास का छोटा सा इतिहास रहा । लेकिन आधुनिक युग में नैतिकता पर विभिन्न दृष्टिकोणों से विचार हुआ है । बदलती सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक परिस्थितियों के अनुसार नैतिकता संबन्धी मान्यतायें विभिन्न दृष्टिकोण रखनेवाली हैं । इन विभिन्न नैतिक मान्यताओं के कारण नैतिकता नामक शब्द जटिल बन गया है । नैतिकता की व्याख्या करने केलिए दार्शनिक, साहित्यकार, वैज्ञानिक एवं विचारक उत्सुकता प्रकट करते आये हैं । इनके विचार इतने विभिन्न हैं कि एक बिन्दु पर इन सब को समाहित करना असंभव सा लगता है । अधिकतर यही देखा जाता है कि नैतिकता की व्याख्या करनेवाले व्यक्ति अपने अपने कार्यक्षेत्र से उसको जोड़कर व्याख्या करने की योजना बनाते रहे हैं । उदाहरण के रूप में समाज शास्त्री नैतिकता की व्याख्या समाज के परिप्रेक्ष्य में करना ज्यादा समीचीन मानता है । समाज की अच्छाई, बुराई, उनके परिणाम आदि पर विचार करते हुए समाजशास्त्री यह कहता है कि "नैतिकता अच्छाई और

बुराई से संबन्धित है । उसके अनुसार मानव के आपसी संबन्ध दो निश्चित तत्वों के आधार पर होते हैं - जो है और जो होना चाहिए । समाज अपने सदस्यों केलिए निश्चित नियमों का निर्धारण करता है जिसका पालन हर एक सामाजिक प्रेमी को करना पड़ता है । ..... समाज में व्यवहार केलिए कुछ निर्धारित नियम है । अच्छाई और बुराई से संबन्धित इस नियमावली को हम नैतिकता कह सकते हैं[1]।" विश्व प्रसिद्ध साहित्यकार हेमिङ्वे ने नैतिकता की व्याख्या इस प्रकार प्रस्तुत की है "वह बात नैतिक होती है जिसके करने के बाद संतोष होता है और उस बात को अनैतिक मानना चाहिए जिसके करने के उपरांत बुराई महसूस होती है[2]।"

यहाँ पर कुछ दार्शनिकों के विचारों से भी परिचित होना हमारे लिए आवश्यक लगता है । प्रसिद्ध विचारक हरबर्ट स्पेन्सर के अनुसार नैतिक सिद्धांत की व्याख्या सुनिश्चित नहीं है नैतिक नियम अनिश्चित और अस्थायी हैं । परिवेश एवं बौद्धिक क्षमता की विभिन्नता के कारण नैतिक लक्ष्य की प्राप्ति केलिए निश्चित नियम निर्धारित हम नहीं कर सकते । फिर भी स्पेन्सर ने नैतिकता की व्याख्या इस प्रकार दी है -"जीवन को बनाये रखने, उसको विकास की ओर अग्रसर करनेवाला व्यवहार सुखद होता है और यह भी व्यक्त करता है कि कौन सा नियम ऐसा है जो विकास को प्रोत्साहन देता है[3]। स्पेन्सर का नैतिक सिद्धांत सामाजिक

---

1. Morality is concerned with good and evil. Every human relationship is governed by two considerations; what in-fact exists, and what in fact ought to be.. Every group prescribes for its members certain rules and of conduct which ought to be observed by them..... These rules and principles concerned with good and evil as manifested to us by consience constitute.... what is called Morality.
   An Introduction to sociology - Vidyabhushan, Sachidev p.5
2. What is Moral is what you feel good after and what is immor is what you feel bad after - Earnest Hemingway
   International Dictionary of thoughts - John P.Bradley,p.
3. पश्चिमीय आचार विज्ञान का तुलनात्मक अध्ययन - ईश्वरचंद शर्मा जेतली - पृ.155

कल्याण और सामाजिक सुख को ही मानता है । स्वतंत्र रूप से सोचने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि नैतिकता सामाजिक नियमों के पालन से जुडी हुई है । बदलती हुई सामाजिक मान्यताओं के साथ साथ नैतिकता का स्वरूप भी परिवर्तनोन्मुख होता है । इसलिए परंपरागत मान्यताओं के आधार पर नैतिकता के स्वरूप को निर्धारित करना एक असंभव बात लगती है । सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिवर्तनों के परिणाम स्वरूप समाज में उभरनेवाली आचरण संहिता को नैतिकता का आधार माननेकेलिए आधुनिक मनुष्य बाध्य सा हो गया है । अत: नैतिकता कालानुगत मान्यता है और देश के आचार संहिताओं का, परंपराओं का इस पर एक सीमा तक प्रभाव भी होता है । जो भी हो नैतिकता मनुष्य के जीवन में सुख और संतोष की लहर पैदा करने केलिए ही स्वीकारी जाती रही है । इस दृष्टि से इसका मूल्यांकन करना चाहिए ।

यहाँ स्पेन्सर के नैतिक भाव सिद्धांत पर प्रकाश डालना बुरा नहीं होगा क्योंकि स्पेन्सर नैतिक भाव को जन्म से ही प्रत्येक व्यक्ति में विद्यमान शक्ति-मानते हैं । "हम सत् असत् तथा शुभ, अशुभ में स्वत: ही अपने अन्तस से ठीक उसी प्रकार विवेक करते हैं जिस प्रकार कि सुन्दर असुन्दर में भेद करते हैं । इस सिद्धांत के अनुसार नैतिकता अर्जित न होकर एक अन्तर्निहित जन्मजात प्रवृत्ति है तो मनुष्य में स्वाभाविक होती है[4] ।"

वैसे नैतिकता के संबन्ध में विभिन्न विचारों का होना स्वाभाविक है । विचारों की विविधता को ध्यान में रखते हुए उन पर प्रकाश डाले बिना नहीं रहा जा सकता । इन विभिन्न मतों की

---

4 • पश्चिमी आचार विज्ञान का तुलनात्मक अध्ययन - ईश्वर चंद्र शर्मा जेतली - पृ·97

विशेषता यह है कि कहीं कहीं पर वे एक दूसरे के निकट आने लगते हैं। ऊपरी दृष्टि से देखने पर पाश्चात्य एवं भारतीय नैतिक विचारों में बहुत भारी अंतर तो दिखाई पड़ेगा। लेकिन दोनों की विभिन्नता की गहराई में कुछ ऐसे तत्व विद्यमान हैं जो मानवीय संदर्भों में सही सिद्ध होते हैं। इसलिए एक का साधुकरण और दूसरे का तिरस्कार स्वाभाविक नहीं है। पाश्चात्य एवं भारतीय नैतिक सिद्धांत एक दूसरे से भिन्न होते हुए भी एक दूसरे के पूरक हैं।

नैतिकता - भारतीय दृष्टि में

नैतिकता के संबन्ध में भारतीय दृष्टिकोण अत्यंत पुराना है। भारत की संस्कृति जितनी पुरानी है उतनी ही पुरानी मान्यतायें नैतिकता के संबन्ध में मिलती हैं। भारतीय प्राचीन आचार्यों ने नैतिकता को धर्म के साथ जोड़कर ही देखने का प्रयास किया है। व्यक्ति के आचरण को धर्म के नियमों के साथ इस तरह जोड दिया गया है कि कोई भी कार्य धार्मिक नियमों के बाहर नहीं जा पड़ता था। दूसरे शब्दों में सामाजिक नीति का स्वरूप नैतिकता का आधार रहा और इसका अनुमोदन धर्म ही करता रहा। धर्म की इतनी व्यापक परिभाषा प्राचीन आचार्यों ने प्रस्तुत की कि नैतिकता उसकी अंग जैसी बन गयी।

धर्म की व्यापक परिभाषा हमारे वेद, उपनिषद, महाभारत, रामायण में मिलती है। भारतीय मनीषियों ने कहा है -

सर्वेऽन सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्चन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग् भवेत्॥

अर्थात् इस विश्व में सब प्राणी सुखी हो । सब लोग रोग से आक्रांत न हो, सब प्राणी कल्याण की उपलब्धि करें । कोई प्राणी दु:ख का भाजन न हो ।

धर्म की सर्वश्रेष्ठता तैत्तिरीय आरण्यक नारायणोपनिषद् में इस प्रकार कही गयी है -

धर्मो विश्वस्य जगत् प्रतिष्ठा
लोके धर्मिष्ठ प्रजा उपसर्पन्ति, धर्मेण पाप म्वनुदति
धर्मे सर्व प्रतिष्ठितम, तस्माद धर्म परम वदन्ति[5] ।

धर्म में सारे जगत का आश्रय है, जगत् में धर्मिष्ठ व्यक्ति के पास ही जनता धर्मा-धर्म के निर्णय केलिए जाती है । धर्म से ही पाप का नाश होता है । धर्म में ही सब कुछ प्रतिष्ठित है अत: विद्वानों ने धर्म को ही सर्वश्रेष्ठ माना है ।

महाभारत में वेद व्यास ने धर्म की व्याख्या इस प्रकार दी है -

श्रूयतां धर्म सर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्
आत्मन: प्रतिकूलनि परेषां न समाचरेत्[6] ।

अर्थात् सावधान होकर धर्म का वास्तविक रहस्य सुनो और उसे सुनकर और उसी के अनुसार आचरण करो । दूसरों के प्रति वैसा व्यवहार मत करो जैसा तुम नहीं चाहते कि कोई तुम्हारे साथ करे ।

---

5. तैत्तिरीय आरण्यक नारायणोपनिषद् - बृहत् सूक्ति कोश से उद्धृत-पृ.24
6. महाभारत - सूक्ति सागर से उद्धृत - पृ.145

भारत के प्राचीनतम मनीषियों ने नैतिकता को धर्म के अन्दर ही माना था और नैतिक आचरण को धर्म का आधार माना था । इसका मतलब यह है कि नैतिकता के संबन्ध में जितने भी प्राचीन विचार उपलब्ध होते हैं वे एक व्यापक जीवन दर्शन से संबन्धित लगते हैं । दूसरे शब्दों में आज जिस अर्थ में नैतिकता का प्रयोग हो रहा है ; उससे भिन्न अर्थ में प्राचीन आचार्यों ने इस शब्द की व्याख्या की थी । व्यापक परिवेश में रखकर देखने पर प्राचीन परिभाषाओं के आधार पर नैतिकता एक आचरण संहिता बन जाती है।इस के आधार पर विचार करने पर यह स्पष्ट होने लगता है कि नैतिकता सामाजिक कल्याण की आधार शिला है । प्राणी मात्र के सुख और कल्याण की कामना ऋग्वेद में मिलती है तो तैत्तिरीय आरण्यक नारायणोपनिषद् में पाप का नाश करनेवाली धर्म-संहिता के रूप में नैतिकता का स्वरूप-निर्धारण होता नज़र आता है।जबकि महाभारत तक आते आते व्यावहारिक महत्व पर ज्यादा ज़ोर दिया जाने लगता है।इसका अर्थ यह हुआ कि सैद्धांतिक भावभूमि से व्यावहारिक क्षेत्र में नैतिकता प्रवेश करने लगती है । यानी वेद काल से महाभारत काल तक आते आते धर्म और नैतिकता आचरण विशेष पर ज्यादा ज़ोर देनेवाले तथ्य बन जाते हैं। इस तरह नीति और आचरण से धर्म और नैतिकता अपना संबन्ध जोड़ने लगते हैं । विशेष कर वाल्मीकि के समय तक आते आते नीति के दायरे में धर्म बंधा जाने लगता है ।

वाल्मीकि ने धर्म को श्रेष्ठ और सत्य निष्ठ माना है[7] "धर्मो हि परमो लोक धर्मे सत्यं प्रतिष्ठितम् ।"

---

7. वाल्मीकि - सूक्ति सागर से उद्धृत - पृ.147

संसार में धर्म ही सबसे श्रेष्ठ है । धर्म में ही सत्य की प्रतिष्ठा है । एक अज्ञात नामा विद्वान ने इस प्रकार कहा है कि नीति धर्म की दासी है । धर्म पालन केलिए मनुष्य को नीतिमान होना चाहिए और आजीवन नीति पथ न छोड़ना चाहिए । परन्तु भारतीय अर्थशास्त्र के प्रणेता चाणक्य के समय तक आते आते इस धर्म और नैतिक पक्ष का स्वरूप एक प्रकार से विधिनिषेध तत्वों पर आधारित बनने लग गया था । यानी किसी कार्य विशेष को करना या न करना नैतिकता का आधार माना जाने लगा । चाणक्य सूत्र इसका उदाहरण प्रस्तुत करते हैं । चाणक्य के अनुसार "वेद स्वीकृत धर्म ही वास्तविक धर्म है[8]।" चाणक्य कहते हैं -

सुख का मूल धर्म है[9]
दान करना धर्म है[10]
दया ही धर्म की जन्मभूमि है[11]
अहिंसा ही धर्म है[12]
राज्यतंत्र {राज्यस्थिति} का आधार नीतिशास्त्र है[13]

चाणक्य की धर्म संबन्धी व्याख्या व्यापक दृष्टि रखनेवाली है और ये मान्यतायें वेदग्रंथों की धर्म संबन्धी दृष्टियों से मिलती जुलती हैं । यहाँ पर यह कहना आवश्यक बन जाता है कि चाणक्य ने कूट नीति के आधार पर नैतिकता के स्वरूप को विशिष्ट निर्धारित करने का प्रयास किया था । यहाँ से नैतिकता सामाजिक उपादेयता पर आधारित होने लगती है ।

---

8. चाणक्य सूत्र - 414
9. वही - 1
10. वही - 155
11. वही - 236
12. वही - 561
13. वही - 43

समाज के साथ सीधा संबन्ध जोड़ने की प्रक्रिया यहाँ से प्रारंभ होने लगती है । वस्तुत: नैतिकता और सामाजिकता एक दूसरे के निकट आने लगते हैं । उन्हीं संबन्धों के आधार पर पाप और पुण्य संबन्धी समाजशास्त्रीय नियमों का निर्धारण भी यहाँ से होने लगता है। इस तरह नैतिकता का स्वरूप और उसका अर्थ समय के साथ बिलकुल जुडा हुआ लगता है । युग के वैचारिक और बौद्धिक परिवेश से जुड़े रहने के कारण नैतिकता के संबन्ध में जितनी भी मान्यतायें उपलब्ध होती हैं वे सब कालानुगत होती हैं । इस कारण नैतिकता के संबन्ध में प्राचीन ग्रंथों के आधार पर ही एक ठोस परिभाषा पर पहुँचना कठिन कार्य सा लगता है । वैसे नैतिकता के संबन्ध जितने भी अर्थ प्राप्त होते है वे उपर्युक्त कथन का सार्थक प्रमाण प्रस्तुत करते हैं ।

पुराने भारतीय कवियों एवं विचारकों ने धर्म की महत्ता गायी है । विश्व प्रसिद्ध दार्शनिक स्वामी विवेकानंद ने धर्म को अनुभूति की वस्तु मानी है । उन्होंने कहा है - "मुख की बात मतवाद अथवा युक्तिमूलक कल्पना नहीं है । चाहे वह कितनी ही सुन्दर हो । आत्मा की ब्रह्म स्वरूपता को जान लेना तद्रुप हो जाना, उसका साक्षात्कार करना यही धर्म है । धर्म केवल सुनने या मान लेने की चीज़ नहीं हैं समस्त मन, प्राण, विश्वास के साथ एक हो जाय, यही धर्म है[14] ।"

भारत का महान दार्शनिक डा॰ राधाकृष्णन ने धर्म के संबन्ध में अपनी व्याख्या प्रस्तुत की है, "जिन सिद्धांतों का हमें अपने दैनिक जीवन में और सामाजिक संबन्धों में पालन करना है ; वे उस वस्तु द्वारा नियत किये गये हैं जिसे धर्म कहा जाता है । यह सत्य का जीवन में मूर्त रूप है और हमारी प्रकृति को नये रूप में ढ़ालने की शक्ति है[15]।"

14॰ कल्याण धर्मांक - विवेकानन्द का कथन - पृ॰698

15॰ धर्म और समाज- डा॰ राधाकृष्णन - पृ॰106

नैतिकता पाश्चात्य दृष्टि में

पाश्चात्य विचारकों ने नैतिकता संबन्धी विभिन्न मत प्रकट किये हैं। प्रसिद्ध दार्शनिक बरट्रान्ड रस्सल ने नैतिकता को अच्छाई माना है[16]। वे कहते हैं कि मैं उन गुणों को अच्छा मानता हूं जिनसे अच्छे समाज का उद्भव होता है। उन गुणों को मैं बुरा मानता हूं जिनसे बुरे समाज का उद्भव होता है। प्रसिद्ध विचारक राल्फ वाल्डो एमेरसन का मत है कि नैतिकता के बिना अच्छे समाज का अस्तित्व संभव नहीं है[17]। अर्थात् जहां नैतिक नियम पूर्ण रूप से लागू हैं वहां समाज की स्थिति उत्तम श्रेणी की होगी। नैतिक नियमों का, समाज में पूर्ण रूप से पालन करने से समाज की उन्नति और नैतिक नियमों की अवहेलना करने से समाज की अवनति होती है।

महान पाश्चात्य नाटककार शेक्सपियर नैतिकता की परिभाषा देना उचित नहीं समझते। क्योंकि नैतिकता या अच्छाई बुराई नामक कोई वस्तु नहीं है। मनुष्य के विचारों ने उसको जन्म दिया है[18]।

कुछ विद्वान नैतिकता को धर्म से संबन्धित मानते हैं। महान विचारक एडविन हुब्बल चाप्पिन नैतिकता को धर्म का वास स्थान समझते हैं[19]। सैरस एगस्टस बारट्रोल ने भी नैतिकता के संबन्ध में अपना विचार प्रकट किया है। उनके अनुसार नैतिकता को धर्म से अलग नहीं किया जा सकता धर्म उस जड के समान है जिसके अभाव में नैतिकता मर जायेगी[20]।"

---

16. I shall define as virtues those mental and physical habits which tend to produce a good community and asvices those th tend to a bad community.
The prospects of Industrial civilization-Bert rand Russel,p

17. There can by no high civility whithout a deep Morality - Ralph Waldo Emerson, p.507

18. Nothing is good or bad in the world but thinking makes its Shakespheare

19. Morality is the vestibule of Religion - Edwin Hubbel Chapin p.507

20. Some would divorce morality from religion but religion is the root with out which morality would die. p.
Cyrus Augustus Bartol, p.507
International dictionary of thoughts - John P.Bradley

पाश्चात्य और भारतीय विचारों में अंतर

नैतिकता संबन्धी पाश्चात्य विचार भारतीय विचार पद्धति से भिन्न लगते हैं । यद्यपि कई स्थानों पर नैतिकता संबन्धी मान्यतायें समानांतर रूप में प्रवाहित होती हैं फिर भी मौलिक रूप में उनके बीच अवश्य अंतर दिखाई पड़ता है । धार्मिक जीवन पर बल देनेवाला भारतीय दर्शन नैतिकता को धर्म का अंग मानकर चलता है तो भौतिकता से प्रभावित पाश्चात्य विचार नैतिकता को धर्म के दायरे के बाहर देखना अधिक समीचीन मानता है । एक प्रकार से भारतीय दृष्टि नैतिकता को सामाजिक कल्याण से जोड़ती है और हित-अहित की सीमा रेखा पर नैतिक और अनैतिक आचरणों की व्याख्या करती है । नैतिकता को धर्म का पर्यायवाची मानने के कारण धर्म की व्याख्या भारतीय दृष्टि में नैतिकता केलिए भी लागू की जा सकती है । धर्म के संबन्ध में डॉ॰ राधाकृष्णन के विचार यहीं पर आलोच्य हैं । "यह चार वर्णों के और चार आश्रमों के सदस्यों द्वारा जीवन के चार प्रयोजनों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) के संबन्ध में पालन करने योग्य मनुष्य का समूचा कर्तव्य है ।[21]" इस प्रकार धर्म की नियम संहिता का उद्देश्य सामाजिक जीवन में शांति और समरसता उत्पन्न करना है ।

परंतु पाश्चात्य दृष्टिकोण नैतिकता को धर्म का पर्यायवाची नहीं समझता । इस कारण नैतिकता का महत्व आचरण विशेष तक ही सीमित रह जाता है । इसका अर्थ यह हुआ कि नैतिकता धर्म से स्वतंत्र एक आचार संहिता का रूप धारण कर लेती है । यद्यपि इस नैतिकता का और आचार

21॰ धर्म और समाज - डॉ॰ राधाकृष्णन - पृ॰109

संहिता का लक्ष्य धार्मिक जीवन को बढ़ावा देना है और स्वस्थ परंपराओं की स्थापना करना है । फिर भी व्यवहारिक दृष्टि से ये सारी बातें गौण सी बन जाती हैं । समाज के हित और कल्याण को सामने रखकर नैतिकतावादी अपने जीवन का विधान करता है । यहाँ तक भारतीय और पाश्चात्य नैतिकता के बीच समानता दिखाई पड़ती है । लेकिन सूक्ष्म अंशों की ओर जाते समय कहीं कहीं इनके बीच विरोध भी दिखाई पड़ने लगता है । इसलिए राल्फ पैरी ने नैतिकता को परस्पर विरोधी हितों के संघर्ष को मिटानेवाली व्यवस्था कहा है[22] - यानी पाश्चात्य देशों के संघर्षमयी जीवन में आनेवाले विरोधों को मिटाकर सामाजिक सुस्थिरता लाना ही नैतिक आचरण का उद्देश्य है । इसका अर्थ यह होता है कि नैतिकता धर्म से स्वतंत्र एवं भिन्न एक आचरण व्यवस्था है । इसलिए पाश्चात्य दृष्टि में अनैतिक आचरण करनेवाला व्यक्ति अधार्मिक नहीं कहलाता।[illegible] । और धार्मिक व्यक्ति का नैतिक होना भी कोई ज़रूरी बात नहीं।[illegible] । यद्यपि आदर्श रूप में धार्मिक व्यक्ति का नैतिक होना ही उचित है ।

पाश्चात्य देशों में ईसाई धर्म का प्रचार हुआ था और धार्मिक अनुष्ठानों में अनैतिक व्यक्ति को पाप से मुक्त करने का उपाय भी शामिल किया गया था । इसलिए नैतिकता और धर्म के बीच में कोई संघर्ष नहीं खड़ा किया जा सकता था । क्योंकि अनैतिक जीवन बिताने वाला व्यक्ति पादरी के सामने प्रायश्चित करके उस पाप से मुक्त हो सकता था । इस कारण नैतिक आचरण के संबन्ध में पाश्चात्य दृष्टि में कुछ ढील सी आ गयी है । धार्मिक सिद्धांतों की विभिन्नता के कारण नैतिकता संबन्धी पाश्चात्य दृष्टि भारतीय दृष्टि से भिन्न लगती है । अधिकतर सामाजिक राजनैतिक, धार्मिक एवं पारंपरिक परिस्थितियों की भिन्नता ने ही

22• हिन्दी उपन्यास का विकास और नैतिकता - सुखदेव शुक्ल - पृ•4

नैतिकता संबन्धी विषमता को जन्म दिया था । क्योंकि आधुनिक रूप में नैतिक आचरण किसी देश विशेष के, काल विशेष के, समाज विशेष के सुखमय जीवन केलिए निर्धारित किये जाते रहे हैं ।

धर्म, नीति और नैतिकता

धर्म और नीति आपस में जुड़े हुए शब्द हैं । कुछ लोगों की दृष्टि में धर्म और नीति में अंतर नहीं है जो धर्म है वही नीति है । प्राचीन आचार्यों ने अधिकतर नीति शब्द के प्रयोग से उन सारी बातों को सूचित करना चाहा है जो समाज हित के लिए उचित माने गये थे । वैसे नैतिकता शब्द बाद में आधुनिक काल में रूपायित शब्द लगता है। यद्यपि आजकल हम "मोरेल वाल्यूस" के समांतर शब्द के रूप में इसे प्रयुक्त करते हैं फिर भी प्राचीन काल में नीति शब्द का अर्थ इतना सीमित नहीं रहा था । अत: नीति शब्द ज्यादा व्यापक है और इसकी व्याख्या उस परिप्रेक्ष्य में की जाती रही है । नीति और धर्म को मिलाकर ही सांसारिक जीवनके पहलुओं का प्रणयन प्राचीन मनीषियों ने किया था । धर्म को यदि सीमित दायरे में देखा जाय तो वह रिलीजियन शब्द का समांतर बन जाता है । परंतु यदि धर्म को हम व्यापक दृष्टि से देखना चाहेंगे तो उसके अंदर नैतिक मूल्य आ जाते हैं । आधुनिक युग में नैतिकता संबन्धी विचार इतने व्यापक दृष्टिकोण वाले बन गये हैं कि कभी कभी उसके रूप निर्धारण में कठिनाई भी आ जाती है ।

धर्म और नीति के संबन्ध में आधुनिक विचारक नये ढ़ंग से सोचने लगे हैं । "मनुष्य सुविधापूर्वक जीवन जीने केलिए जियो और जीने दो का सिद्धांत पालन करता है और यहीं से व्यक्ति समाज का अंग बन जाता है

इस व्यवस्था को बनाये रखने में धर्म सहायक होता है । जीवन भली भांति व्यतीत करने केलिए देशकाल परिस्थिति के अनुसार व्यक्ति और समाज के जो कर्तव्य स्थिर होते हैं वही उनका धर्म है .... वह जीवनानुकूल एक व्याख्या एवं मार्ग निर्देशन है । जो लोग स्वार्थ अहंकार अथवा भ्रमवश उसे रूढ़िगत रूप दे कर उसका आतंक फैलाते हैं, उनके धर्म से मानव का हित नहीं अहित होता रहा है।[23]

इसका मतलब यह है कि मनुष्य आधुनिक काल में धर्म को, सामाजिक मान्यताओं को बढ़ावा देकर, जीवन को स्वस्थ परंपराओं से जोडनेवाला साधन मानते हैं । आधुनिक काल में धर्म के संबन्ध में मनुष्य की दृष्टि में आये हुए परिवर्तन का यह सूचक है । "मानव समाज को श्लाघनीय एवं सुव्यवस्थित पथ पर अग्रसर करने तथा इसके प्रत्येक व्यक्ति को धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की सम्यक एवं सुगमता से उपलब्धि करने हेतु जिन विधि अथवा निषेधात्मक वैयक्तिक एवं सामाजिक नियमों का विधान देशकाल एवं पात्र को लक्ष्य में रखकर बनाया जाता है वही नीति है।[24]"

उपर्युक्त विवेचन से नीति और धर्म संबन्धी कई धारणायें व्यक्त होने लगती हैं । प्राचीन काल में धर्म का दायरा बहुत ही व्यापक रहा और नीतिशास्त्र संबन्धी सभी आचरण उसके अन्दर माने गये थे । जैसे जैसे समय आगे बढ़ा तो धर्म शब्द के अर्थ का लोप होता गया । और नीति शब्द का विकास भी होता गया । इस तरह धर्म और नीति दो समांतर स्थानों में प्रवृत्त होते दिखाई पड्ते हैं । एक दूसरे के समर्थक होते हुए भी आधुनिक अर्थ में धर्म और नैतिक आचरण एक दूसरे से भिन्न भी है और कई अर्थों में एक दूसरे के पूरक भी है ।

---

23. हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियां - डॉ. शशिभूषण सिंहल - पृ. 355
24. संस्कृत काव्य में नीति तत्व - गंगाधर, आमुख - पृ. 13

समाज और नैतिकता

जब से समाज का विकास हुआ है, जब से मानव मन में चिंतन मनन की शक्ति जागी है तब से लेकर नैतिकता का प्रश्न भी उठा है । नैतिकता संबन्धी मान्यतायें हर समाज में भिन्न रहती हैं । जो नियम हिन्दु मानते हैं वह नियम मुसलमान नहीं मानते और जो ईसाई मानते हैं उसमें भी अंतर होता है । विभिन्न धर्मों की, समाज की धार्मिक या नैतिक दृष्टियों में अंतर तो होता है । लेकिन सभी नियम समाज कल्याण की दृष्टियों से बनाये गये हैं । समाज को सुदृढ़ बनाने केलिए समाज में होनेवाली उच्छृंखलता को समाप्त करने केलिए ये नियम अत्यंत आवश्यक माने गये हैं । समाज का सार्थक इकाई मनुष्य तब बनता है जब वह समाज के नियमों का पालन करता है और आदर्शों की पूर्ति करता है ।

समाज की नैतिक मान्यतायें समय के अनुसार बदलती रहती हैं । समय के बदलाव ने नैतिक मान्यताओं को दो घेरों में बन्द कर दिया है जिसके कारण समाज में भिन्न नैतिक मान्यताओं वाले दो दल पैदा हो गये हैं । एक पुराने नैतिक मूल्यों पर विश्वास करनेवाली पुरानी पीढ़ी है तो दूसरी मूल्यों की खोज करनेवाली नयी पीढ़ी । इन दोनों के बीच अविश्वास की भावना जन्म लेती रही है । फलत: नये और पुराने मूल्यों के बीच संघर्ष का जन्म भी होता रहा है । लोगों की बदली हुई दृष्टियों के कारण समाज की आचार व्यवहार संबन्धी संहिता का शिथिल होना स्वाभाविक है । फलत: आधुनिक समाज में नैतिक संकट की स्थिति उत्पन्न होती रही है ।

परंपराओं के प्रति विद्रोह, मूल्यों का खंडन आधुनिक युग बोध का परिणाम है । परंपराओं के प्रति विद्रोह के स्वर में वैयक्तिक नैतिकता के प्रति आग्रह परिलक्षित होता है । आधुनिक जीवन बोध ने समाज में

नैतिकता के रूप को बदल दिया । पुराने सामाजिक मूल्य परंपरागत मूल्य बन गया । समाज के नियमों के प्रति विरोध की भावना व्यक्ति के मन में जन्म लेने लगी । व्यक्ति के मन के इस परिवर्तन के मूल में अंग्रेज़ी शिक्षा का, पाश्चात्य विचारकों का प्रभाव स्पष्टत: दृष्टिगत होता है । व्यक्ति ने जीवन के जिन क्षणों को भोगा, वही उनकेलिए सत्य माना जाने लगा । फलत: समाज की बनी बनायी नैतिक संहिता बिगडने लगी, समाज की नैतिक व्यवस्था शिथिल बनने लगी ।

व्यक्ति को ठीक राह पर चलने केलिए बाध्य करनेवाली यह नैतिकता जब से शिथिल हो गयी, तब से वैयक्तिक नैतिकता का स्वरूप भी समाजोन्मुख न रह कर व्यक्ति सापेक्ष हो गया । इस संदर्भ में जीवन के नैतिक क्षेत्र के संबन्ध में विचार करना गलत नहीं होगा - जीवन का नैतिक क्षेत्र तीन तत्वों का समन्वय माना जा सकता है । वे हैं आदर्शात्मक तत्व, सामाजिक व्यवस्थात्मक तत्व, व्यक्तिगत व्यवहार एवं अभ्यास के तत्व । इनमें आदर्शात्मक तत्व का अर्थ सद्व्यवहार के सभी नियम हैं जो कि हमारे जीवन केलिए आदर्श माने जाते हैं और जिनका अनुसरण करना नैतिक दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति केलिए उचित माना जाता है। सामाजिक व्यवस्थात्मक तत्व वे सामाजिक संस्थायें हैं जिनका कि प्रत्येक व्यक्ति सदस्य होता है व्यक्तिगत व्यवहार एवं अभ्यास का तत्व नैतिक क्षेत्र का वह तत्व है जिसमें कि व्यक्ति अनायास एक आदर्श व्यवहार का अनुसरण करता है ।"[25]

लेकिन समसामयिक संदर्भ में समाज और व्यक्ति के बीच की खाई चौडी होती जा रही है, आचार और व्यवहार के सामाजिक मूल्य धूमिल पड गये हैं, व्यक्ति अपने ही अंदर सिमट कर रहने लगे हैं ।

---

25. पश्चिमीय आचार विज्ञान-आलोचनात्मक अध्ययन - ईश्वरचंद शर्मा-पृ.330

व्यक्ति और नैतिकता

प्रारंभ में ही हम यह कह आये हैं कि नैतिकता संबन्धी धारणा व्यक्ति व्यक्ति में भिन्न होती है । हर व्यक्ति के मन में अपने संस्कार एवं परिस्थितिजन्य जीवनादर्शों के अनुरूप ढाली गयी आंतरिक मूल्य धारणा होती है । इस व्यक्तिगत नैतिकता को हम वैयक्तिक नैतिकता कह सकते हैं । वैयक्तिक नैतिकता कुछ हद तक सामाजिक नैतिकता भी होती है । "व्यक्ति की नैतिकता अपने व्यापक अर्थ में व्यक्ति का अपना जीवन दर्शन है जिसके सहारे वह जीवन यापन करता है[26]।"

आधुनिक भारतीय जीवन में समाज की अपेक्षा व्यक्ति ऊपर उठ आये हैं । समाज के परिवेश में रूपायित व्यक्ति का जीवन दर्शन जब सिर्फ वैयक्तिक बन जाता है तब नैतिकता का रूप व्यक्ति प्रधान हो जाता है । वैयक्तिक नैतिकता समाज केलिए स्वीकार्य नहीं होती । आज के अव्यवस्थित, कुंठित जीवन यात्रा में व्यक्ति समाज की नैतिक सीमाओं को तोड़ते हुए आधुनिक भाव बोध को प्रस्तुत करता है । "आज का व्यक्ति अपनी जीवन अनुभूतियों की विविधता के बावजूद बेहद सीमित हो गया है । सारा जीवन मानों अंधेरे बन्द कमरे में घिरकर घुटन में सांसें तोड रहा है[27]।"

वैयक्तिक मूल्य हो या किसी प्रकार का मूल्य हो, उसकी अर्थवत्ता समाज की दृष्टि से ही बनती है । व्यक्ति की नैतिकता सामाजिक नैतिकता हो सकती है । लेकिन पूर्ण रूपेण हो भी नहीं सकती ।

---

26. हिन्दी उपन्यास विकास और नैतिकता - डॉ.सुखदेव शुक्ल - पृ.4।
27. हिन्दी वार्ष्णेय - महेन्द्र चतुर्वेदी - पृ.34

व्यक्तिगत मूल्य या नैतिकता विशिष्ट तो होती है — समाज के एक विशिष्ट संदर्भ में । अत: कहा जा सकता है कि "मूल्य की स्थिति सदैव समाज सापेक्ष होती हैं । व्यक्तिगत मूल्य महत्वपूर्ण होकर भी समाज की स्वीकृति के अभाव में अपना महत्व स्थापित नहीं कर पाते ।"[28]

नैतिकता जैसे मूल्य मनुष्य के उचित अनुचित, हित अहित की चिंता से निर्मित होते हैं । उचित अनुचित की बातें परिस्थिति एवं समाज के अनुसार बदलती रहती है । इसलिए कहा जा सकता है कि मूल्य अस्थिर होते हैं । "जब मूल्य की मूल्यवत्ता इसके अनुचित प्रयोग के कारण नष्ट हो जाती है या जब रूढ़ होकर अथवा व्यवहार कर्म से भिन्न हो जाने पर प्रचलित मूल्य अपना मूल्य खो बैठते हैं । उनके प्रति मनुष्य सहज आस्थाशील नहीं रह पाता और एक ऐसी संक्रांतिपूर्ण स्थिति से होकर गुज़रने लगता है जब उसका मन नये संदर्भ में नये मूल्यों केलिए छटपटाने लगता है । पुराने मूल्यों के अस्वीकार या विघटन की स्थिति यहीं पर जन्म लेती है, किन्तु यही नये मूल्यों की उदय भूमि है ।"[29]

व्यक्ति के अन्तर्मन उचित अनुचित का विश्लेषण करता है । "मनुष्य की अंतरात्मा केवल उसी बात को अनुचित समझती है जिसको समाज अनुचित समझता है । इसलिए यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि अंतरात्मा समाज द्वारा निर्मित है । मनुष्य के हृदय में समाज के नियमों के प्रति अन्ध-विश्वास और पूर्ण श्रद्धा को अंतरात्मा कहते हैं । समाज से पृथक उसका कोई अस्तित्व ही नहीं है ।"[30]

---

28. साहित्य सिद्धांत और शोध - आनंद प्रकाश दीक्षित - पृ.126
29. वही - पृ.127
30. चित्रलेखा - भगवतीचरण वर्मा - चाणक्य का कथन - पृ.37

व्यक्ति और समाज का जो संबन्ध है, वह कभी कभी ढ़ीला हो जाता है और कभी कभी टूट भी जाता है । परिवर्तनशील परिस्थितियों एवं सामाजिक गठन की कमियों से व्यक्ति कुंठित हो जाता है । कुंठित व्यक्ति से समाज के हितानुकूल नैतिक आचरण नहीं होता । व्यक्ति समझता है कि नये जीवन आदर्शों की पृष्ठभूमि में पुराने नैतिक मूल्यों की सार्थकता नष्ट हो गयी है । जिन नये मूल्यों का सृजन व्यक्ति करता है वह व्यक्ति तक ही सीमित हो जाता है ।

मार्क्सवाद, अस्तित्ववाद, फ्रायड का मनोविज्ञान आदि ने व्यक्ति और नैतिकता की धारणाओं को हिला दिया है । युद्ध और विज्ञान ने मनुष्य की भावुकता नष्ट कर दी है । व्यक्ति और व्यक्ति के बीच अजनबीपन जैसे नये भाव उभरने लगे हैं । "जितने ही हमारे जानने के साधन बढ़ गये है, उतने ही हम अजनबी हो गये हैं । अपनी निकटतम पडोसी को ही नहीं जानते बल्कि अपने को ही दिन ब दिन कम पहचानते हैं । जल्दी ही बिलकुल नहीं जानेंगे ।"[31] प्रसिद्ध विचारक नीत्शे यह मानते हैं कि संसार और मानव जीवन के विषय में शाश्वत नियम निर्माता नाम की कोई अवान्तर सत्ता नहीं है । सारे मूल्यों की रचना स्वयं मनुष्य ने की है[32] । और ये मूल्य परिवर्तन के लागू है - शार्त्र यह मानते हैं कि मनुष्य स्वतंत्र होने के कारण जब चाहे मूल्यों को परिवर्तित कर सकता है[33] ।

कीर्केगार्द की दृष्टि में "नैतिकता आत्म केन्द्रित होती हैं । आत्मगत चिंतन पद्धति के मार्ग को अपनाकर ही उसे प्राप्त किया जा सकता है क्योंकि नैतिकता का उद्देश्य आत्मोत्थान ही होता है .....

---

31. भवन्ती - अज्ञेय - पृ.88
32. अस्तित्ववाद - दार्शनिक तथा साहित्यिक भूमिका - लालचंद गुप्त-पृ.83
33. वही - पृ.83

अत: मनुष्य की नैतिक भावना और जीवन के सभी कार्यकलाप आत्मोत्थान केलिए ही होने चाहिए । कीर्केगार्द की दृष्टि में यही नैतिकता सर्वोच्च है[34]। यहाँ कीर्केगार्द ने वैयक्तिक नैतिकता पर ज़ोर दिया है । लेकिन उसकी वैयक्तिक नैतिकता सामाजिक नैतिकता ही है । "मनुष्य जो चुनाव करता है, वह नैतिकता पर आधारित होता है । यह चुनाव वह केवल अपनेलिए ही नहीं करता, बल्कि संपूर्ण समाज केलिए भी करता है । जहाँ वह अपने प्रति उत्तरदायी होता है वहाँ वह पूरे समाज के प्रति भी उत्तरदायी होता है[35]।"

प्रत्येक विचारक की विचारधारा विश्व कल्याण की भावना से प्रेरित रहती है और इस दृष्टि से मार्क्स की विचारधारा भी जनकल्याण को लक्षित करती है । मानव मंगल की भावना सामाजिक नैतिकता के बल पर ही हो सकती है । वर्गहीन समाज ही मार्क्सवाद का लक्ष्य है । मार्क्सवादी यही समझते हैं कि पूँजी ही सब बुराईओं की जड़ है । बुराईओं की जड को समाप्त करके वर्गहीन समाज की स्थापना यही मार्क्सवादी नैतिकता का लक्ष्य है ।

मार्क्सवादी आज की नैतिकता पर विश्वास नहीं करते । "हमारा कहना यह है कि अभी तक नैतिकता के सारे सिद्धांत अंतिम विश्लेषण में, समाज की तत्कालीन आर्थिक परिस्थितियों की उपज सिद्ध हुए है और चूँकि अभी तक समाज वर्ग विद्वेषों के भीतर विचरण करता रहा है - इसलिए नैतिकता सदा वर्गीय नैतिकता रही है[36]। मार्क्सवादी स्त्री केलिए निश्चित नैतिक आचरण का निर्धारण नहीं करते । उनकी दृष्टि में

---

34. अस्तित्ववाद - दार्शनिक तथा साहित्यिक भूमिका - लालचंद गुप्त-पृ.84
35. वही - पृ.85
36. कम्यूनिस्ट नैतिकता - रमेश सिन्हा - पृ.42

स्त्री पुरुष की दासी नहीं है, पुरुष के समान अधिकारी है । मार्क्सवादी उच्चवर्गीय लोगों के चंगुल से स्त्री का उद्धार करना चाहते हैं । अर्थ के बल पर संचालित उच्च वर्गीय जीवन की नैतिक दुर्बलताओं को समाप्त करके वर्गहीन समाज की सृष्टि में तल्लीन मार्क्सवादियों के लिए नैतिकता एक अलग चीज़ ही है ।

प्रसिद्ध दार्शनिक नीत्शे की दृष्टि में नैतिक परंपरा गुलामों और स्वामियों की नैतिकता में विभाजित ढकोसला है। और उनका मूलोच्छेदन करते हुए नवीन स्वास्थ्य एवं आदर्श परंपराओं का निर्माण करना उनकी दृष्टि में उपयुक्त और अपेक्षित है[37]।"

अभिव्यंजनावादी क्रोचे नैतिकता को चेतना की व्यावहारिक वृत्ति का एक रूप मानते हैं और नैतिकता को अर्थ पर निर्भर कहते हैं । वे कहते हैं - चेतना की दो मूल प्रवृत्तियाँ हैं-सैद्धांतिक और व्यावहारिक। चेतना की व्यावहारिक वृत्ति जीवन के क्रियाकलापों से संबद्ध है । इसके दो रूप होते हैं - आर्थिक और नैतिक । पहला रूप केन्द्रित है व्यक्ति में और दूसरा केन्द्रित है समाज में । आर्थिक क्रिया के बिना नैतिक क्रिया असंभव है[38] । अतः क्रोचे की दृष्टि में नीति अर्थ पर निर्भर है ।

काफ्का एक उच्चतर मूल्य के प्रति आस्थावान है । वे कहते हैं "इस जीवन का उद्देश्य सामान्य स्तर पर निरर्थक रूप से जीना नहीं है, बल्कि एक उच्चतर मूल्य के प्रति संकल्पित होना है .....

---

37. व्यक्ति चेतना और स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास - पृ.35
38. वही - पृ.49 - पुरुषोत्तम दुबे

जीवन के उच्चतर मूल्य या कर्मों को ऋतु या न्याय हमारे ऊपर आरोपित करता है । ये चाहे जितने ही अप्रिय या अनुचित लगे इसे स्वीकार करना ही होगा ।"[39] कामु के अस्तित्ववादी दर्शन उनकी नैतिकतावाद को व्यक्त करता है । इसलिए लोग उसको सच्चे अस्तित्ववादी नहीं समझते । सार्त्र ने उसे अस्तित्ववादी न कहकर नैतिकतावादी कहा था । कामु का पूरा विश्वास था कि व्यवहार, मृदुता, सृजन, कर्म, मानवीय सदाशयता की भावनायें एक न एक दिन अपना स्थान अवश्य लेंगी ।"[40] कामु के ये विचार पूर्ण रूपेण नैतिक दीखते हैं ।

भारतीय नैतिकता पर अस्तित्ववादी, मार्क्सवादी, मनोविश्लेषणवादी पाश्चात्य चिंतकों का प्रभाव पडा है । हिन्दी के आधुनिक उपन्यास साहित्य इस आधुनिकता बोध को व्यक्त करने का प्रयास करता है । परंपरागत नैतिक मानों में शिथिलता आयी है । फ्रायड ने सभी क्रियाकलापों के मूल में काम वासना को माना था । मार्क्सवादी ने वर्ग संघर्ष एवं पूंजीपति वर्ग के शोषण का कारण अर्थ माना था । इन सारे चिंतन के प्रभाव से नैतिकता की पूर्वधारणाओं में परिवर्तन आने लगा है । पहले जो निषिद्ध था, आज वह माननीय कार्य बन गया है ।

इस तरह विभिन्न विचारकों की चिंतन प्रणाली पर ध्यान देने के बाद लगता है कि व्यक्ति और नैतिकता का जो संबन्ध है वह बहुत ही संकीर्ण है । व्यक्ति वैसे अपनेलिए एक नैतिक संहिता का निर्माण कर सकता है । यह ज़रूरी नहीं कि समाज उस नैतिकता को मान्यता प्रदान करें ।

---

39. आधुनिक परिवेश और अस्तित्ववाद - शिवप्रसाद सिंह - पृ.110
40. वही - पृ.127

इस तरह व्यक्ति और समाज की नैतिकतायें एक दूसरे से भिन्न भी हो सकती हैं। भिन्नता की स्थिति संघर्ष को जन्म देती हैं और यहाँ से समस्यायें खडी होने लगती है। नये मूल्यों की खोज इस बिन्दु से शुरू होती है और यह खोज भी सैद्धांतिक रूप में किसी न किसी मूल्य पर आधारित हो जाती है। यानी नैतिकता की पुनर्व्याख्या करते समय भी, व्यक्ति और समाज की नैतिकता के पारस्परिक संघर्ष की कथा कहते समय भी मूलभूत रूप में कहीं न कहीं कोई नैतिक मूल्य मापदंड के रूप में स्वीकारा ही जाता है। इसका मतलब यह है कि मूल्य या नैतिकता के आधार सिर्फ बदल ही सकते हैं, मिटाया नहीं जा सकते।

इस परिप्रेक्ष्य में व्यक्ति और समाज की नैतिकता कहीं न कहीं नये आधारों की खोज करती दीख पड़ती है।

दूसरा अध्याय

मूल्य संक्रमण की परिस्थितियाँ

दूसरा अध्याय

मूल्य संक्रमण की परिस्थितियाँ

स्वतंत्रता प्राप्ति एक ऐसी घटना है जिसने भारत के जन जीवन के सभी आयामों को परिवर्तित कर दिया । इस परिवर्तन के कई आयाम हैं जिनको हम सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिवेशों से जोड़कर देख सकते हैं । मूल्य संक्रमण की परिस्थितियों को प्रभावित करने में और नये मूल्यों की स्थापना करने में इन तथ्यों का बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान है । इसलिए मूल्य संक्रमण की परिस्थितियों का अध्ययन उपरोक्त आयामों से संबन्धित है ।

सामाजिक परिस्थिति

आज़ादी के उपरांत देश में एक ऐसे समाज की स्थापना हुई जो हर दृष्टि से स्वतंत्रयपूर्व समाज से भिन्न लगता है । आज़ादी के पूर्व प्रगतिवादी विचारों से प्रभावित होकर समाज को वर्गों के बीच बाँट कर

देखने की प्रवृत्ति तो ज़ारी रही । परंतु आज़ादी के बादवाला समाज वर्ग संघर्ष की बातों के आधार पर मात्र जन्म लेनेवाला नहीं था । ऐसी संकीर्ण समस्यायें उसकी गहराई में विद्यमान होने लगीं, जिनके कारण वर्ग संघर्ष की चेतना और उसके आधार पर किया गया मूल्यांकन समाज के सही अर्थ को पहचानने में अपूर्ण लगने लगा । अब समाज वर्गों में न विभक्त होकर कई घेरों में विभक्त होने लगा । ये घेरे अर्थ, राजनीति और प्रभुता से प्रभावित थे ।

अर्थ से प्रभावित लोगों का झुंड अलग सा बन गया जो हर कीमत पर अपनी शक्ति को बनाये रखने की कोशिश में लग गया था । यह समूह उन व्यक्तियों का जमघट था जिसमें पूँजीपतियों से लेकर मुनाफाखोरी और चोर बाज़ारी को प्रश्रय देते हुए काला धन कमाने वाले लोगों तक शामिल थे । मार्ग की चिंता के बिना किसी भी प्रकार धन कमाना ही इसी वर्ग का लक्ष्य था । न्याय, नीति और भले,- बुरे की चिंता आदि उन लोगों में तनिक भी नहीं थी । अर्थ की उपासना करना ही इन लोगों का आत्यंतिक लक्ष्य था । समाज में इन्हीं का प्रभाव भी धन के कारण बहुत अधिक होने लगा था । दिन के उजाले में अपने नकली चेहरे को दिखानेवाले ये नये धनिक रात के अंधेरे में हत्या, व्यभिचार, बलात्कार, लूटमार आदि जघन्य अपराध करने से हिचकते नहीं थे । इस तरह मुखौटे लगाकर जीने की कला इन लोगों के जीवन का आधार बन गयी थी । वास्तव में समाज में जो मूल्यच्युति हुई है ; उसीके ठेकेदार, पूँजीपति, व्यापारी और काले धन की रक्षा करनेवाले ये लोग थे । इन्हीं के कारनामों के कारण अहिस्ता अहिस्ता समाज के मूल्य परिवर्तित होने लगे । और परिवर्तित मूल्यों का विष समूचे समाज को विषैला बनाता रहा । अर्थ के बल पर ये लोग अजय थे ।

और उनके सामने न्याय, नीति, धर्म, राजनीति सब सर झुकाती रही । कहीं कहीं ये धनवान, समाज के आदर्श भी बनते गये । उनके साथ ही साथ किसी भी जघन्य अपराध करके धन कमाने की इच्छा लोगों के मन में पैदा होने लगी । स्वतंत्रता के बाद के समाज के नैतिक पतन का इतिहास यहाँ से शुरू होता है ।

विश्व भर के स्वतंत्रता संग्राम में भारत के स्वतंत्रता संग्राम की अपनी विशेषता है । क्योंकि भारत का स्वतंत्रता संग्राम सत्य, अहिंसा आदि जीवन के सदगुणों पर आधारित था । गांधीजी की अहिंसात्मक नीति ने दुनिया में भारत का गौरव बढ़ाया था और भारत को आध्यात्मिक गरिमा प्रदान की थी । स्वतंत्रता-पूर्व के समाज पर गांधीजी के अहिंसात्मक दर्शन का पूर्ण प्रभाव पडा था । लेकिन स्वतंत्रता के बाद, गांधीजी की मृत्यु के बाद समाज और राजनीति गांधी दर्शन के प्रभाव से दूर होते दिखाई पडते हैं । स्वतंत्रता प्राप्त भारत का जो सपना गांधीजी ने देखा था वह धूमिल पड गया । गांधीजी ने कहा था "मैं उस भारत वर्ष के गठन केलिए कार्य कर जाऊंगा जिस भारत वर्ष में दीनतम व्यक्ति भी यह समझेगा कि देश उसका है । इस देश के गठन में उसके मत का भी मूल्य होगा । उस भारत वर्ष में उच्चश्रेणी या नीच श्रेणी के रूप में मनुष्य का कोई समाज न होगा । उस भारत वर्ष में सब संप्रदाय आपस में श्रेष्ठ प्रीति का संबन्ध रखते हुए वास करेंगे । उस भारत वर्ष में अस्पृश्यता रूपी अभिशाप केलिए कोई स्थान नहीं रह जायेगा । उत्तेजक पेय अथवा किसी मादक द्रव्य को प्रश्रय नहीं दिया जायेगा, नारी समाज पुरुष समाज के समान ही अधिकार का भोग करेगा । यही मेरे ध्यान का भारत वर्ष होगा ।[1]

---

1. गांधीजी व्यक्तित्व विचार और प्रभाव - मोहनदास करमचंद गांधी पृ.530

गाँधीजी की मनोकामना के बिलकुल विपरीत की स्थिति स्वतंत्रता प्राप्त भारत में आहिस्ता, आहिस्ता रूपायित होने लगी है। उच्च नीच का भाव अब भी बना रहता है। गरीब और भी गरीब, अमीर और भी अमीर बनते जा रहे हैं। इनके बीच की खाई को पाटने का परिश्रम तो होता रहता है, लेकिन उसका आशोजनक परिणाम इसलिए नहीं दिखाई पड़ता कि इन प्रयत्नों में कहीं भी ईमान्दारी नहीं दिखाई पड़ती है आज़ादी की प्राप्ति के उपरांत उन नेताओं की परंपराओं का ह्रास हो गया था जो निस्वार्थ भाव से अपने को देश केलिए समर्पित कर सकते थे। देश का नेतृत्व ऐसे राजनीतिक व्यक्तियों के हाथ में आ गया जो जनता को अपनी उन्नति और स्वार्थपूर्ति का साधन समझने लग गये थे। इस तरह सिद्धांत और सिद्धांतों को व्यावहारिक बनाने की योजनायें सिर्फ कोरे कागज पर लिखी हुई पंक्तियों तक सीमित रह गयी।

साम्प्रदायिक एवं जातीय भावनाओं को नष्ट करने केलिए गांधीजी ने बहुत अधिक परिश्रम किया था। स्वतंत्रता प्राप्त भारत में गांधीजी जैसे सच्चरित्र नेताओं का ह्रास हो गया। नये नेता अपनी स्वार्थ पूर्ति केलिए जनता की संकुचित भावनाओं को दीप्त करने लगे। आज़ाद भारत की ~~साम्प्रदायिक~~ साम्प्रदायिक स्थिति बहुत ही खतरनाक लगती है। देश विभाजन के साथ उत्तर भारत के हिन्दू और मुसलमानों के बीच अविश्वास और आपसी प्रतिशोध की भावना जन्म ले गयी थी। इसके साथ ही साथ एक धर्म के अन्य विभिन्न जातियों के लोगों में भी अविश्वास की भावना दृढ़ होती गयी। संप्रदायवाद और जातिवाद के संकीर्ण दायरों को तोड़ने की क्षमता भावनात्मक एकता के प्रवक्ताओं के कार्यों में नहीं दिखाई पड़ी। इस तरह राष्ट्रीय एकता के आदर्श जातिवाद, संप्रदायवाद और भाषावाद के आघातों से दिन प्रतिदिन कमज़ोर होते गये। वास्तव में

समाज की जडों तक विषमता और अनैक्य के ज़हर को यह भाव फैला रहा था । इसतरह से प्रेम के स्थान पर घृणा, अहिंसा के स्थान पर हिंसा भारतीय जीवन में स्थान पाने लगे ।

उधर भारतीय समाज पर व्यक्तिवादी जीवन दर्शन का भी प्रभाव पडने लगा था । आधुनिक युग में नयी शिक्षा प्राप्त युवकों के बौद्धिक उन्मेष ने व्यक्ति चेतना का बीजारोपण किया था । व्यक्तिवादी जीवन दर्शन की विशेषता यह है कि इसके समर्थक समाज से कटे हुए जीवन बिताना पसंद करते हैं । समाज से निर्धारित नियमों को वे अनदेखा करते हैं । वे चाहते हैं कि व्यक्ति की श्रेष्ठता और पवित्रता को बनाये रखने वाली एक नयी चेतना का उदय हो । व्यक्ति चेतना का विकास भारतीय जनता के आध्यात्मिक परिवेश को नष्ट करता नज़र आता है । क्योंकि व्यक्तिवादी चेतना को माननेवाले लोग धार्मिक एवं सामाजिक बंधनों को नकारना पसंद करते हैं । कभी कभी वे इस तरह आत्म केन्द्रित हो जाते हैं कि समाज पर उनका कोई असर ही नही पड पाता । समाज से और परिवेश से अपने को अलग कर देने की इच्छा के कारण ऐसे लोग समाज को प्रभावित नहीं कर पाते । इसी कारण व्यक्ति चेतना और सामाजिक चेतना के बीच द्वन्द्व की स्थिति पैदा हो जाती है । नैतिक मूल्यों का तिरस्कार और मूल्य परिवर्तन की स्थिति आदि पर इस द्वन्द्व का गहरा प्रभाव पडा है ।

संयुक्त परिवार को समाप्त करके एकांगी परिवार की स्थापना करने में व्यक्तिवाद का महत्वपूर्ण स्थान है । औद्योगीकरण से जन्मी नयी अर्थ व्यवस्था एवं नयी शिक्षा के प्रभाव स्वरूप संयुक्त परिवार की परंपरा विघटित हो गयी । सहयोग, समानता एवं सद्भाव से संपूर्ण संयुक्त परिवार की व्यवस्था भारतीय सामाजिक व्यवस्था की महत्वपूर्ण अंग और

सामाजिक संगठन की आधार थी । कृषि प्रधान अर्थ व्यवस्था के ह्रास होने पर औद्योगीकरण से जन्मी नयी आर्थिक व्यवस्था ने अपना पैर जमा कर लिया । इसके साथ साथ व्यक्ति मात्र के हित, एवं इच्छापूर्ति केलिए समाज के अहित की योजनायें अपने आप बनती गयीं ।

मूल्य संक्रमण की आधुनिक परिस्थितियों में युवा पीढ़ी का बहुत ही नाज़ुक स्थान है । पुराने मूल्यों की अवहेलना तो हो गयी है और नये आदर्श हर दृष्टि से मूल्यच्युति से प्रभावित है । ऐसी हालत में जिस दिशाहीनता का बोध महसूस किया जाता है उसकी सबसे बडी शिकार है युवा पीढ़ी । वह इसलिए निराशा ग्रस्त और कुंठित हो गयी है कि उसके सामने सभी रास्ते बन्द दिखाई पड़ते हैं । बन्द दरवाज़ों से टकराकर लौटनेवाली पीढ़ी नये रास्तों की खोज तो नहीं कर पाती । लेकिन थककर, हारकर कभी कभी पलायनात्मक वृत्तियों की शरण में चली जाती है । जीवन को अभिशाप समझना, चरस, गाँजा, और शराब की दुनिया में बन्द कर देना इसी का परिणाम है । नेहरूजी का कथन युवा पीढ़ी की इस नाज़ुक स्थिति को व्यक्त करता है । "..... हमारे पास न तो पुराने आदर्श है न नवीन और हम बिना यह जाने हुए बहते जा रहे हैं कि हम किधर को या कहाँ आ रहे हैं । नयी पीढ़ी के पास न तो कोई माप दण्ड है न कोई दूसरी चीज़ जिससे वह अपने चिंतन या कर्म को नियंत्रित कर सके ।"[2]

युवा पीढ़ी की इस दिशा हीनता और मूल्यहीनता के कारण स्त्री पुरुष के आपसी संबन्धों में बहुत अधिक परिवर्तन दृष्टि गोचर होने लगा है घर के कालिख भरे कमरे में जीनेवाली, पति परायणा, चारित्रशील नारी की

---

2. संस्कृति के चार अध्याय - रामधारी सिंह दिनकर - नेहरूजी की प्रस्तावना पृ.16

परंपरा का अब ह्रास हो रहा है । इसके स्थान पर भारतीय नारी आर्थिक दृष्टि से स्वावलबिनी, पुरुष की समानाधिकारिणी हो गयी है । "अभी तक व्यक्तित्व की विराटता एवं विशिष्टता के जो सर्वाधिकार पुरुषों के पास था, वह सही अर्थों में नारियों तक भी पहुंचा और पहली बार इनके स्वतंत्र चेता मानस एवं स्वाधीन व्यक्तित्व की नयी प्रवृत्तियां दृष्टिगोचर हुई । सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनीतिक पुनर्जागरण के इस काल में नारियां कहीं भी कोने में पडी रहनेवाली मैले कपडों की गठरी नहीं सिद्ध हुई और प्रत्येक क्षेत्र में उनका स्पष्ट योगदान सामने आया । इससे मानव मूल्यों को नयी अर्थवत्ता प्राप्त हुई और दोनों वर्गों के बीच समानता की भावना सर्वथा नये परिप्रेक्ष्य में उपस्थित हुई[3] ।"

भारतीय नारी दासता की जंजीरों से मुक्त हो गयी है । "आधुनिक परिवार में स्त्री पुरुष की आराधना करनेवाली नहीं है बल्कि समान अधिकारों से युक्त समभागी है[4] ।"

आधुनिक समाज विवाह को अर्थ पर आधारित एक व्यक्तिगत समझौता मात्र समझता है । विवाह में अर्थात् स्त्री-पुरुष संबन्धों में प्रेम की पवित्रता, चारित्रिक विशेषता आदि भावनायें प्राय: लुप्त हो गयी हैं । आधुनिक युग में नारी इतनी स्वतंत्र बन गयी है कि अवैध संबन्ध स्थापित करती, विवाहिता होते हुए भी अन्य व्यक्ति से प्रेम करती, श्रृंगार करती दीख पडती इस प्रकार स्त्री भी पुरुष के समान मुखौटा धारण करके जीने लगी है । उसके इस दुहरे व्यक्तित्व के कारण स्त्री-पुरुष संबन्धों की पवित्रता नष्ट हो गयी है

---

3. हिन्दी उपन्यास उपलब्धियां - लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय - पृ.125

4. In Modern family the woman is not the devotee of man, but equal partner in life withequal rights.
In Introduction to sociology - Vidhya Bhushan Sachide
p.272

न वह पूर्ण रूप से घर का दीपक बन सकती है नगली का चिराग । हमारी परंपरागत मान्यताओं को नकारनेवाली स्त्री की यह स्थिति समाज केलिए सचमुच खतरनाक बन गयी है । नारी की इस नयी भूमिका ने समाज में उसके स्थान को पुनर्निर्धारित करने केलिए पुरुष को विवश कर दिया है । इस कारण एक ओर नयी समस्यायें बनीं तो दूसरी ओर कई समस्यायें सुलझ गयीं । नारी की इस नयी चेतना ने एक ओर बहु विवाह को बन्द कर दिया तो दूसरी ओर विधवा विवाह को प्रोत्साहित भी किया । इस तरह एक शक्ति के रूप में समाज के सामने पुराने मूल्यों को चुनौती देती हुई वह खडी हो गयी । आधुनिक परिवार में व्यक्तिवादिता का उदय,आर्थिक स्वतंत्रता एवं नारी की नयी भूमिका ने जो समस्यायें पैदा की है , वह भारतीय समाज पर व्याप्त युग संकट को व्यक्त करती है । नैतिक आचरणों से लोगों का विश्वास उठ गया है ।

धन की प्रभुता के कारण जीवन का क्षेत्र कलुषित हो गया है । आज जीवन के हर क्षेत्र में प्रतियोगिता इतनी बढ़ गयी है कि हर किसी को इस प्रतियोगिता में सफलता नहीं मिलती । समाज में योग्यता का मापदण्ड अर्थ बन गया है । परिणाम स्वरूप किसी भी प्रकार धन कमाने की चिंता व्यक्ति व्यक्ति में बनी रहती है । धन के अभाव में आधुनिक मनुष्य अपने जीवन को अभिशप्त समझने लगा है । "आज का भारतीय समाज व्यापक विघटन का शिकार है । प्रत्येक धरातल पर स्वार्थ का ताण्डव हो रहा है, नैतिक, राष्ट्रीय, सामाजिक, सांस्कृतिक सभी प्रश्नों को राजनीति केकेंद्रम में खींचकर उनके यादृच्छिक समाधान प्रस्तुत किये जा रहे हैं और इन सबके पीछे एक मात्र प्रेरणा कार्यशील है - स्वार्थ सिद्धि की[5] ।" इस स्वार्थ पूर्ण

---

5. हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण - महेन्द्र चतुर्वेदी - पृ.।8।

मनोवृत्ति ने समाज में अनेक समस्याओं को जन्म दिया है । संयुक्त परिवार का विघटन, शहरों का विकास, राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार आदि सारी समस्यायें स्वार्थ के प्रभाव स्वरूप ही जन्मी हैं ।

सामाजिक विघटन का रूप शहरों के परिवेश में भी स्पष्ट दृष्टिगत होता है । सच्ची सामाजिक भावनाओं की जन्मभूमि ग्रामों में भी अनास्था, अजनबीपन जैसे नये भावोच्छ्वासों का विषैला प्रभाव दिखाई देने लगा है । गाँव में शहरीपन के घुस आने से, नये समाज बोध उभरते प्रतीत होते हैं । "धर्म के स्थान पर अर्थ, भाईचारा के स्थान पर पार्टि बन्दी और प्रतिष्ठा के स्थान पर नंगई आदि के भाव गाँव के नये समाज बोध के रूप में उभरे हैं[6]।" समाज के बहुत सारे मूल्य परिवर्तित होते जा रहे हैं । जो अर्थ पहले कल्पित था वह लुप्त हो गया है । सत्य, अहिंसा आदि गुण परिवर्तन के कालजयी प्रवाह में तितर बितर हो गये हैं । अर्थ के बढ़ते प्रभाव के कारण भ्रष्टाचार समूचे समाज में एक अभिशाप के रूप में व्याप्त हो गया है । गरीब और अमीर के बीच की आर्थिक असमानता ने ही भ्रष्टाचार को जन्म दिया है । "स्वतंत्रता के बाद वर्ग वैषम्य की खाई का पट जाना अपेक्षित था, परंतु वह और भी चौडी हो गयी । शोषण गति नयी नयी शक्लों में और भी तीव्र हो गयी । गरीबों की गरीबी में अभिवृद्धि हुई । अन्याय और अत्याचार वृत्ति के रूप में पनप उठे - धार्मिक अनुशासन के साथ सामाजि अंकुश भी गिर गया । अभिजातवर्ग में एक सर्वथा नये प्रकार की नंगई और निर्लज्जता आयी । समाज में जो कुछ निंदनीय और विग्रहणीय था उसके होते लोग प्रशंसा पात्र और संपूज्य बने दीखने लगे । कुल मिलाकर एक नये सामाजिक मूल्य उभरा भ्रष्टाचार[7]।"

---

6. स्वतंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य और ग्राम जीवन - विवेकीराय - पृ.368

7. वही - पृ.317

भ्रष्टाचार को स्वार्थमूर्ति का अच्छा माध्यम मानकर लोग जीने लगे हैं । भ्रष्टाचार न केवल अभिजात वर्ग में है और न केवल निम्नवर्ग में है ; पूरे समाज ही अपनी स्वार्थसिद्धि केलिए भ्रष्टाचार को अपनाये हुए है ।

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज में सब कहीं भ्रष्टाचार ही भ्रष्टाचार दिखाई पड़ता है । लोगों के बीच का वह रिश्ता टूट गया जो पहले सुदृढ़ रूप में विद्यमान था । इस संबन्ध विघटन के कारण व्यक्तियों के बीच का फासला बढ़ आया है जो सामाजिक शिथिलता का कारण बन गया है । व्यक्ति पूर्वाधिक आत्म केन्द्रित और स्वार्थी बन गया । अत: हम स्वाधीनोत्तर भारत की बदली हुई परिस्थिति पर सुरेश सिन्हा के अभिमत से सहमत हो सकते हैं कि "आज की सामाजिक स्थिति में काफी तनाव है, विषमताओं का जंजाल है और कठिनाईओं एवं असमानताओं का तनाव है, जीवन के संबन्ध में सभी मापदण्ड आज परिवर्तित हो चुके हैं[8]।"

राजनीतिक परिस्थिति

भारतीय राजनीति का प्रारंभ कांग्रेस की स्थापना से ही माना जाता है । स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए आत्म बलिदान को संबल मानकर मानव कल्याण का लक्ष्य सामने रखते हुए भारत के राजनीतिज्ञों की प्रथम परंपरा निकल पडी थी । विदेशी शासन से देश को मुक्त करने केलिए इन नेताओं ने जितना कष्ट सहन किया , वह इसलिए अधिक महत्वपूर्ण है कि अहिंसा ही इस संग्राम में आधारभूत मार्ग निदेशित सिद्धांत था ।

8· हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास - सुरेशसिन्हा - पृ·52।

लोगों के हृदय में कांग्रेस पार्टी को इसलिए स्थान मिला था कि पार्टी का लक्ष्य भारत को आज़ाद बनाना और गुलामी के जंजीरों से बंधी हुई भारतीय जनता को स्वतंत्र बनाकर उसकी सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक सुरक्षा करना था । अन्य दल जैसे कम्युनिस्ट पार्टी, सोशलिस्ट पार्टी, फारवेड ब्लाक, मुस्लीम लीग आदि ने भी इस देश के लोगों के मन में प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली थी । अंग्रेज़ों को इस देश से भगाने का एक मात्र लक्ष्य सभी दलों में विद्यमान था । सत्ता और अधिकार से रहित होने के कारण भ्रष्टाचार और स्वार्थ की भावना स्वतंत्रता प्रप्ति तक के कांग्रेस का और अन्य पार्टियों के इतिहास में दिखाई नहीं पड़ती है ।

आज़ादी की प्राप्ति के बाद सत्ता और अधिकार को प्राप्त करने की भागदौड में सुरक्षित मूल्य भ्रष्टाचार और स्वार्थ की आग में जलकर भस्मीभूत हो गये । भारतीय राजनीति के क्षेत्र में स्वजन वाद, भ्रष्टाचार, स्वार्थ जातिवाद, साम्प्रदायिकता, दल-बदल आदि का प्रवेश होने लगा । और पिछले तीस वर्षों के अन्दर देश की राजनीति इतनी दूषित हो गयी कि सत्य, ईमान्दारी और क्षमता इस क्षेत्र से बिलकुल गायब हो गयी । जिस पद क गांधीजी, गोखले, तिलक, आज़ाद जैसे महान नेताओं ने सजाया था, वह और भी छोटे कद के नेताओं के हाथ में आ गया था । नेहरू तो देश की भलाई चाहते थे, परंतु उनकी नीति कम व्यावहारिक रही । इसके कारण देश में महान नेताओं की एक दूसरी कतार खड़ी नहीं बन पायी । नेहरू के बाद इंदिरा गाँधी का प्रवेश परंपरावादी राजसत्ता की यादों को ताज़ा बनाने वाली बात बन गयी । फिर से राजनीति कुछ जातियों एवं गुटों की इच्छा के अनुसार बनने बिगडने लगी । देश के भविष्य के निर्धारण में दक्षिण को जो स्थान मिलना चाहिए था वह नहीं मिल पाया । उसी तरह कई

राज्यों के प्रति किये जानेवाले केन्द्र के अन्यायपूर्ण व्यवहार ने प्रांतीयता, भाषाई कट्टरता आदि को राजनीति में उपविष्ट कराया । इस तरह दक्षिण में द्र•मु•क• की स्वतंत्र द्रविड स्थान की मांग से लेकर उत्तर में स्वतंत्र आसाम, खालीस्थान की मांग तक की समस्यायें खडी होने लगीं । खेद की बात यह है कि विभिन्न राजनीतिक दलों के नेताओं ने अपने महत्व को उद्घोषित करने केलिए ही देश की अखंडता एवं एकता के साथ खिलवाड किया ।

गांधीजी के सत्य, अहिंसा आदि आध्यात्मिक आदर्श आज के संदर्भ में खोखले शब्द बन चुके हैं । राजनीतिज्ञ असत्य एवं हिंसा के पथ पर अग्रसर होने लगे हैं । असत्य और हिंसा बहुत मामूली बात हो गयी है । भारतीय राजनीति में "संकुचित स्वार्थों केलिए प्रांतीयता, जातीयता, साम्प्रदायिकता का विष फैलाया गया है और परस्पर सौहार्द के स्थान पर संदेह एवं मनोमालिन्य बढ़ा है[9]।" राजनीति इतनी भ्रष्ट हो गयी है कि दल-बदल सामान्य राजनीतिक धर्म हो गया है, स्वार्थपूर्ति राजनीतिक लक्ष्य बन गयी है । "पुराने सामंत भले ही न रह गये हो किन्तु नेताओं के रूप में नये सामंत पैदा हो गये हैं, जो जन सेवा की आड में ऐयाशी करते हैं, नारे लगाये जाते हैं, जनता की सेवा के, लेकिन सेवा सब लोग अपनी अपनी कर रहे हैं[10]।" स्वतंत्रता संग्राम में जिन्होंने देश सेवा के मार्ग को प्रशस्त किया था, उनकी स्मृति लोगों की स्मृति पटल से ओझल हो गयी है । "जिन्होंने राष्ट्रीय संग्राम में अपना सब कुछ उत्सर्ग किया ; उनमें अधिकांश तो उपेक्षित रह गये हैं और किसी विचित्र प्रक्रिया वश जिन्होंने कभी बलिदान का एक पाठ भी नहीं सीखा, वे सत्तारूढ़ हो गये हैं[11]।" इन सत्ताधारियों की राजनीति

9• हिन्दी उपन्यास ऐतिहासिक अध्ययन - शिवनारायण श्रीवास्तव - पृ•273

10• द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास-लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय - पृ•42

11• हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण - महेन्द्र चतुर्वेदी - पृ•181

स्वार्थसिद्धि की राजनीति बन चुकी है । उनके आदर्शवाद धन का आदर्शवाद हो गया है । जनसेवा आत्म सेवा बन गयी है । नेहरूजी का निम्न लिखित वक्तव्य इस संदर्भ में उल्लेखनीय प्रतीत होता है । नेहरू जी ने कहा था - राजनीति और अर्थशास्त्र की दुनिया में सत्ता की खोज प्रमुख हो गयी है और जब सत्ता प्राप्त होती है तो बहुत सारे मूल्य नष्ट हो गये होते हैं[12] ?

भारत की राजनीति जनतंत्र पर आधारित है "स्वतंत्रता के बाद की राजनीति को जनतंत्र की राजनीति कहा गया है । वस्तुत: यह चुनाव, वोट और मंत्री गिरी की राजनीति है । धन यहाँ भी महत्वपूर्ण है । धन है तो चुनाव जीतना कठिन नहीं है। यह स्थिति जहाँ चुनाव जीतने वालों के पतन की साक्षी है वहाँ मतदाता के मानसिक पतन का भी प्रमाण है[13] ।" राजनीतिक नेताओं ने साधारण जनता को अपना खिल्लौना बना दिया है "पूजीवादी सामंतवादी जनतंत्र में सामान्य जन का राजनीतिक शोषण होता है । चालाक नेता और उनके दल परस्पर विरोधी विचार धाराओं के उपदेश देते हुए भीडों को बहका ले जाते हैं । किन्तु नेतृत्व का मुख्य उद्देश्य येन केन प्रकारेणा सत्ता पर अधिकार करना होता है । सत्ता हथियाने के इस खेल में न कोई मूल्य होते है, न आदर्श[14] ।" भारतीय राजनीति में सत्ताधारी दल, राज्यों की विपक्षीय सरकारों को गिराता है, मुख्यमंत्रियों को बदलाता है । भारत में विपक्षी दल छोटे छोटे पार्टियों का समूह है । इनमें परस्पर मेल न होने के कारण विपक्षी दल सत्ताधिकारी दल के आगे अपनी समर्थ भूमिका निभा नहीं पाते । इसलिए विपक्षी दल के विघटन से लाभ उठाकर सत्ताधारीदल अपना मन मानीपन दिखाता है ।

---

12. Today in the world of politics and Economics there is a searc for power and yet when power is attained much else of value has gone. Political trickery and Intrigue take the place of idealism and cowardice and selfishness in the place of dis-interested courage. The Discovery of India-Nehru, p.595

13. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास मूल्य संक्रमण - हेमेश पानेरी - पृ·239

14. समकालीन कविता की भूमिका - विश्वभरनाथ उपाध्याय - पृ· 21

"मुख्य मंत्रियों और तथा कथित अन्य महत्वपूर्ण व्यक्तियों को उठाना गिराना भी केन्द्र से होता है और इस प्रकार लोक तंत्र की आड में डिक्टेटर शिप को प्रश्रय दिया जा रहा है और मज़ा यह है कि सब चुप है । पत्रकार तक भी भण्डा फोड करने में डरते हैं[15]।"

राजनीति आधुनिक भारत में एक पेशा बन गयी है "सारा देश इन पेशेवर राजनेताओं, दल पतियों और दलदल में फंस गया है[16]।" राजनीतिज्ञों में सेवाभाव, ईमान्दारी, चारित्रिक एवं नैतिक दृढ़ता का अभाव परिलक्षित होता है । दुनिया भर के अन्य देशोंमें इतने बडे पैमाने में दल बदली नहीं होती जितनी भारत में होती हैं । आजकल नेता खरीदा जाता है, पैसे की लालच एवं आदर्शहीनता के कारण भारतीय राजनीतिज्ञ भ्रष्ट हो गये हैं । राजनीतिज्ञों की शक्ति इतनी बढ़ गयी है कि धर्म, नैतिकता आदि का नियंत्रण एवं निर्धारण उनके हाथों में आ गया है । धर्म पर, ईश्वर पर विश्वास न करनेवाला राजनीतिज्ञ धार्मिक संस्थाओं का नियंता बन गया है । क्रांति का मार्ग अपनानेवाले, मज़दूर वर्ग की सरकार की कामना करने वाले मार्क्सवादी मज़दूर संघों की सहायता से जनता का शोषण एवं आत्मपोषण कर रहा है । कहने का तात्पर्य यह है कि कांग्रसियों की तरह मार्क्सवादी राजनीति भी भ्रष्ट हो गयी है ।

भारतीय राजनीति में जाति और धर्म का विशेष महत्व रहा है । समाज में जाति की संकुचित भावना इतनी प्रबल हो गयी है कि पढ़े लिखे व्यक्ति में भी जाति भावना के अंकुर स्पष्ट दिखाई पडने लगे हैं ।

---

15. द्वितीय महा युद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास - लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय - पृ.45

16. समकालीन कविता की भूमिका - विश्वंभरनाथ उपाध्याय - पृ.2।

लोगों की आत्मीयता को नष्ट करनेवाले जातिवाद के प्रभाव के कारण लोगों के मानस की विशालता नष्ट होती नज़र आती है । यह तो विदित हैकि जाति भारत की राजनीति की एक नियामक शक्ति बन गयी है । लोक नायक जयप्रकाश नारायण ने जाति की शक्ति के बारे में अपनी राय प्रकट की है "आज कल की चुनाव प्रणाली में जाति सबसे बडी पार्टि बन गयी है[17]।" राजनीति के आदर्शों को जातिवाद एवं धर्मवाद ने तहस नहस कर दिया है । जाति या धर्म के नाम पर पार्टियों की स्थापना होती है । इन पार्टियों का लक्ष्य अपने धर्म या जाति की संकुचित स्वार्थों की पूर्ति मात्र रह गया है । "स्वतंत्रता के इतने वर्षों बाद भी भारत में न धर्मवाद कमज़ोर हुआ है और न जातिवाद । चुनाव या प्रतिनिधिकरण की भ्रष्ट व्यवस्था ने समाजवाद विरोधी शक्तियों को बढ़ावा दिया है । भारत में मुस्लीम लीग, जनसंघ, हिन्दु महा सभा, राष्ट्रीय स्वयं सेवा संघ जैसी संस्थायें और दल वामपंथी चेतना को उभरने नहीं दे रहे हैं और आज देश के सामने इन साम्प्रदायिक दलों से जितना खतरा है उतना अन्य किसी से नहीं है[18]।"

जाति और धर्म के अतिरिक्त राजनीति को भ्रष्ट करने में काला बाज़ारियों का, मज़दूर संघों का, विशेष हाथ रहा है । इनमें सबसे प्रभावकारी एवं सक्रिय दल ब्लैक मार्केटियरों का है क्योंकि वे ही हमारे देश की अर्थ-नीति का नियंता है । वे ही राजनीतिक पार्टियों की आर्थिक सहायता करके, चुनाव लड़ते हैं और जीते हैं और अपने स्वार्थों की पूर्ति करते हैं । यह तो अतिरंजित बात नहीं है कि भारतीय राजनीतिज्ञों की सहायता एवं आर्शीवाद से यहाँ काले धन की समानांतर आर्थिक व्यवस्था की नीव डाली गयी है ।

---

17. South Asian politics and Religion - Donald E Smit - p.36-37
    It is now recognised that caste is an important factor in political behaviour in almost all parts of India..... Jayaprakash Narayan declared in 1960 that under the present system of elections caste has become the strongest party in India.

18. समकालीन कविता की भूमिका - विश्वंभर नाथ उपाध्याय - पृ.19

राजनीति शोषण का एक मुख्य साधन बन गया है "जब जहाँ जिसे मौका मिलता है । वह कहीं दूसरों का शोषण कर लेता है और जिसे मौका नहीं मिलता वह शोषित हो जाता है । शोषण का अर्थ भी व्यापक है । भावनात्मक, राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक और सांस्कृतिक हर स्तर पर शोषण होता है हमारे ····· शोषण के व्यापक अर्थ में सारी समस्यायें आ जाती हैं।[19]"

शोषण की समस्यायें गाँव में ही अधिक होती हैं । राजनीतिक भ्रष्टाचार ने गाँव के सौहार्दपूर्ण एवं शांतिपूर्ण वातावरण का अंत कर दिया है । गाँवों में संप्रदाय, जाति, वर्ग एवं राजनीतिक पार्टियों का दुष्प्रभाव तीव्र होता जा रहा है । गाँव के आत्मीयता पूर्ण जीवन के स्थान पर वैमनस्य एवं विरोध का भाव दृष्टिगोचर होने लगा है ।

राजनीतिज्ञों की सबसे बडी कमी यह होती है कि उनकी कथनी और करनी में बहुत अंतर होता है । इसका कारण यह होता है कि राजनीतिज्ञों में ईमान्दारी जैसे मूल्यों का बिलकुल अभाव सा हो गया है । इस प्रसंग में समुचे राजनीतिज्ञों के संबन्ध में क्रूश्चेव द्वारा कही गयी बात अधिक उपयुक्त लगता है - "राजनीतिज्ञ एक जैसे होते है - वे वहाँ पर पुल बनाने का वादा करते हैं जहाँ कोई नदियाँ ही नहीं होतीं।[20]" राजनीतिज्ञों का ईमान्दार होना अत्यंत महत्वपूर्ण चीज़ है । "राजनीति में अर्थात् मानवी संबन्धों के उस क्षेत्र में जिसका संबन्ध व्यक्तियों से नहीं बल्कि दसियों लाख लोगों से होता है, ईमानदारी का मतलब यह होता है कि कथनी और

---

19. साम्प्रतिक कहानी - सं.परमानन्द गुप्त-दिनेश पालिवाल का कथन - पृ.235

20. Politicians are the same all over. They promise to build a bridge where there is no river - Krushehev
International Dictionary of thoughts - John P. Bradley p.564

करनी इस तरह अनुरूप हो कि उसकी सच्चाई की आसानी से जांच की जा सके[21]।"

महात्मा गांधीजी की दृष्टि में राजनीति का अत्यंत महत्व है। वे राजनीति का महत्वपूर्ण अंग धर्म समझते हैं। सदाचार के नियमों को वे राजनीति पर भी लागू मानते हैं। सदाचार-प्रिय एवं धार्मिक व्यक्ति ही उनकी दृष्टि में सच्चा राजनीतिज्ञ है। उन्होंने कहा है - "जो लोग यह कहते हैं कि धर्म का राजनीति के साथ कोई संबन्ध नहीं है, वे नहीं जानते हैं कि धर्म का अर्थ क्या है, उन्होंने और भी कहा है कि वैयक्तिक आचरण और राजनीतिक आचरण में कोई विरोध नहीं है। सदाचार का नियम दोनों पर लागू है[22]।"

इसमें संदेह नहीं है कि आज की राजनीति में सदाचार का बिलकुल अभाव है - समाज में जो स्थान धर्म और नैतिकता को है। वही स्थान राजनीति में भी नैतिकता एवं धर्म को मिलना चाहिए। "सामाजिक और राजनीतिक संबन्धों का नैतिकीकरण मानव संस्कृति की रक्षा का मूल सूत्र है। अन्यथा पाशविकता, शक्तिवाद और एषणावाद का अतिरंजित रूप हमारे सामने आ जायेगा। प्रजातंत्र, समाजवाद, शांतिवाद और विश्व मानव एकतावाद आदि सिद्धांतों के अभ्युदय में नैतिक श्रेयों का महत्वपूर्ण स्थान है[23]।"

दरअसल भारतीय राजनीति में मौका परस्ती, रिश्वतखोरी दल-बदली आदि "महनीय" शब्दों को प्रतिष्ठा मिली है। राजनीति का आधार पहले सत्य, ईमानदारी था अब राजनीति का आधार अर्थ बन गया है और

---

21. कम्यूनिस्ट नैतिकता - रमेश सिन्हा - पृ.69
22. गांधी साहित्य - गांधी विचार रत्न - मोहनदास करमचंद गांधी-पृ.
23. राजनीति और दर्शन-विश्वनाथ प्रसाद शर्मा - पृ.507

राजनीति अर्थ के प्रभाव से मूल्यच्युत होती जा रही है । जातिवाद की विभीषिका, ब्लैक मार्केटियरों का नेतृत्व आदि के कारण सच्ची राजनीतिक चेतना का अंत हो चुका है ।

आर्थिक परिस्थिति

आधुनिक युग में अर्थ मानव की प्रतिष्ठा का, सामाजिक श्रेष्ठता का मापदण्ड हो गया है । मानव के सभी क्रिया कलापों की, अच्छे-बुरे की कसौटी नैतिकता न होकर अर्थ बन गया है "आज जीवन और जगत के सभी मूल्य अर्थ में सिमिट आये हैं और आर्थिक मूल्य एक मात्र जीवन मूल्य बन बैठे है[24]।" उनकी इच्छा के अनुसार देश की आर्थिक स्थिति करवटें बदलने लगती है ।

आज की राजनीति,आज के समाज एवं संस्कृति से संबन्धित परिवर्तनों के मूल में अर्थ का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगा है । अर्थ के इस बढ़ते, प्रभाव के फलस्वरूप, प्राचीन वर्ण व्यवस्था का स्थान नये युग में वर्गों ने ले लिया है "आर्थिक क्षेत्र में वर्ग से अभिप्राय मानव के उस समूह से है जिनके आर्थिक हित समान हो । अर्थात् किसी समूह विशेष के आर्थिक हितों में असमानता का अभाव उन्हें एक वर्ग भावना से बाँधता है । इस वर्ग में सामूहिक भावना अर्थात् विचार धारा की एकता रहती है[25]। अर्थ के आधार पर उच्च वर्ग , मध्यवर्ग, निम्नवर्ग जैसे आर्थिक श्रेणियाँ भारतीय समाज में उभरने लगी हैं । इन आर्थिक श्रेणियों में निम्न वर्ग की अपेक्षा अधिक पीड़ित है मध्यवर्ग । उच्च शिक्षा प्राप्त मध्यवर्गीय युवक को अपनी मनोकामना के अनुसार नौकरी नहीं मिलती, समाज में उचित स्थान या सम्मान नहीं मिलता है

---

24. साहित्यिक साक्षात्कार - रणवीर रांग्रा - पृ.57
25. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास - मूल्य संक्रमण - हेमेन्द्र पानेरी - पृ.204

वे निलंबन की स्थिति में हैं न वे उच्चवर्ग के स्तर पा सकते हैं और न निम्नवर्ग के लोगों में जा सकते हैं अर्थात् वे आर्थिक दबाव से अधिक पीड़ित हैं ।

स्वतंत्रता प्राप्त भारत की इस आर्थिक विषमता ने नये वर्गों को जन्म दिया था, संयुक्त परिवार की कल्पना को नष्ट कर दिया था । अर्थ के प्रभाव स्वरूप खेती प्रधान देश भारत के काश्तकार वर्ग मज़दूर वर्ग में, ज़मीन्दार वर्ग पूँजीपति वर्ग में परिणत हो गये । पुराने ज़माने से लेकर गाँव शोषण का मुख्य क्षेत्र था । अर्थ की गरिमा संपन्न अवस्था के इन दिनों में गाँवों का शोषण और भी तीव्रतर होता गया । गांवों के शोषण के साथ ही साथ नगर का विकास द्रुत गति से होता गया । अत: भारत में नगरों की सीमायें बढ़ने लगी हैं और आसपास के गाँव भी उसकी सीमा के अन्दर कैद होने लगे हैं । देहातों की सादगी और सौहार्द्र से भरपूर जीवन शहरीपन के घुस आने से नष्ट होने लगा है ।

नगरों औद्योगीकरण एवं नगरों के विकास ने मज़दूर संघों का निर्माण किया । मज़दूर वर्ग के श्रम की महत्ता को आदर्श रूप देने वाले मार्क्सवाद ने मज़दूर वर्ग के भाव एवं विचारों को नया रूप दिया । मज़दूर वर्ग के जीवन स्तर को ऊपर उठाने में, श्रम को गरिमा प्रदानकरने में, उनको एकताबद्ध करने में मार्क्सवाद का विशेष हाथ रहा है,लेकिन आज मध्यवर्गीय मज़दूर वर्ग महंगाई एवं आमदनी की कमी के कारण आर्थिक विषमता का शिकार बन चुके हैं । निम्नवर्गीय समाज आर्थिक असंतुलन एवं अभावों के परिणाम स्वरूप विसंगतियों से भरपूर जीवन बिताने लगे हैं । "आवश्यकता की अपूर्ति की वेदना, अस्तित्व की अन्य वेदनाओं की बुनियाद में होती है । क्योंकि प्राथमिक आवश्यकताओं की अपूर्ति किसी जन समूह के अस्तित्व को कुंठित कर

देती है । उसमें पल्लवन और फलन हो नहीं सकता क्योंकि मनुष्य या उसके समूह सिर्फ जीने केलिए तरसकर मर जाते हैं[26] ।

आवश्कताओं की पूर्ति केलिए समाज में व्यक्ति संघर्ष करता है और इस संघर्ष का चरम लक्ष्य होता है अर्थ । समाज के बिंबों को आर्थिक विषमता ने नया रूप दिया । "भौतिक मूल्यों ने जहाँ एक ओर व्यक्तिवादी दृष्टिकोण की सृष्टि की, वहीं दूसरी ओर नैतिकता की दीवारें गिराते हुए व्यक्ति चेतना से समाज नामक संस्था के बिंब को विकृति में बदलकर उसके स्थान पर वर्गवादी आर्थिक विषमता को प्रतिष्ठित किया ..... सर्वोपरि व्यक्ति के संघर्ष का चरम लक्ष्य है अर्थ[27] ।"

आधुनिक युग के मानव धन के पीछे पागल है क्योंकि धन आधुनिक युग में डिग्रियाँ पाने की, राजनीतिक नेताओं को खरीदने की सक्षम वस्तु बन गया है । "भारतीय जनजीवन में आर्थिक विषमता के कारण ही मंत्री से लेकर मज़दूर तक बिकने केलिए असमर्थ दीख पड़ते हैं । यहाँ तक नर नारियाँ लज्जा और शील, तन और मन सब कुछ बेचने केलिए बाध्य हो जाती है । इस युग में आर्थिक विषमता अपनी सीमा पर पहुँच गयी है[28] ।"

इन नयी परिस्थितियों में उलझे आधुनिक नवयुवक दिशा-हीनता, मूल्यहीनता के कारण विद्रोही व्यक्तित्ववाले बन गये हैं । लेकिन उनके विद्रोही व्यक्तित्व का समाजोन्मुख विकास अभी तक नहीं हो पाया । स्त्री पुरुष संबन्धों में उच्छृंखलता की स्थिति आयी है । विवाह एक आर्थिक समझौता मात्र रह गया है । स्त्री और पुरुष के बीच के आदर्शात्मक संबन्ध, परिवार और उसका अस्तित्व टूटकर तितर बितर हो गया है ।

---

21. व्यक्ति चेतना और स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास - पुरुषोत्तम दुबे-पृ.।
28. भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में युग चेतना - बैजनाथ प्रसाद शुक्ल - पृ.।
26. समकालीन कविता की भूमिका - विश्वंभरनाथ उपाध्याय - पृ.2

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत के विभिन्न क्षेत्रों में विकास तो अवश्य हुआ है । लेकिन विकास की संपूर्णता दृष्टिगत नहीं हो पायी है । अर्थात् जिन लोगों के जीवन स्तर को ऊपर उठाना था, उन लोगों के प्रति न्याय नहीं बरता गया । अमीर और भी अमीर बनते गये और गरीब और भी गरीब होते गये । महंगाई, जन संख्या में वृद्धि, बेकारी की समस्या आदि के कारण भारतीय युवा मानस कुंठित होता जा रहा है ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कई वर्ष तो बीत गये । पंच वर्षीय योजनायें अनेक बनी फिर भी भारतीय समाज में जो उन्नति आनी चाहिए थी वह नहीं आ पायी । "भारत की आर्थिक विपन्नता एवं पंचवर्षीय योजनाओं की असफलता के कारण भारत की नकली समाजवादी नीति है । समाजवाद की आर्थिक नीति वस्तुत: बहुत भ्रामक रही है । पूंजीवादी अर्थशास्त्री औसत आय के भ्रामक सिद्धांत का शिकार रहा है । देश की औसत आय इतने से इतनी हो गयी, इस बिन्दु के अलावा यह नहीं सोचा गया कि किस वर्ग को कितना लाभ या हानि हुई[29] । केवल भारत ही एक मात्र देश है जहाँ नकली समाजवाद को अपना आदर्श मान लिया है । भारत का समाज वाद इसलिए नकली है कि - "यहां समाजवाद के नारे लगाकर उद्योग पति और भूमति समाजवाद का समर्थन करते दीख पड़ते हैं[30]।" यह सही अर्थों में एक रहस्यात्मक विडंबना प्रतीत होता है ।

मूल्य में वृद्धि और महंगाई भारतीय जीवन का अभिशाप बन गये हैं । इस मूल्य वृद्धि को क्यों हमारी अर्थ व्यवस्था रोक नहीं पाती ? इसका कारण यह होता है कि चोर बज़ारी, मुनाफाखोरी, तस्करी से कमाया

29· समकालीन कविता की भूमिका - विश्वंभर नाथ उपाध्याय - पृ·11

30· ..... The crisis of Indian Society is what has been called the crisis of hyprocritical socialism. No where else has the capitalist class so explicitly supported socialism as it did in India.

India in crisis - J.D. Sethi - p.1

जानेवाला काला धन एक समानांतर अर्थ व्यवस्था की सृष्टि कर गया है । इसी के कारण सरकारी नियम समाज में कार्यगत परिवर्तन नहीं ले आ पा रहे हैं । छिपे तौर पर राजनैतिक दलों का भी इसमें योगदान है । क्योंकि राजनैतिक नेतायें इस काले धन की रखवाली करनेवालों के सेवक होते हैं ।

आर्थिक क्षेत्र में भ्रष्टाचार की काली छाया व्याप्त हो गयी है । भ्रष्टाचार के मायाजाल से कोई भी मुक्त नहीं है । लोगों के मन में शासन कर्ताओं के प्रति अतृप्ति की भावना जाग उठी है । भ्रष्टाचार भारतीय जीवन का एक धर्म सा हो गया है । शासन सत्ता जिन लोगों के हाथ में है, वे अपनी कर्तव्य भावना भूलकर अपने निजी स्वार्थों के समक्ष जनता का कल्याण तृणवत् समझने लगे हैं । भ्रष्टाचारियों की कतार में साधारण सरकारी कर्मचारियों से लेकर मंत्रियों तक, मठ के महंतों से लेकर बडे बडे धार्मिक आचार्यों तक शामिल हो गये हैं । काला धन का प्रभाव भारतीय आर्थिक व्यवस्था पर इतने ज़ोर का है कि बडे बडे देश स्नेही राजनीतिज्ञ भी चोर बाज़ारियों का सहायक होने लगे हैं । दरअसल स्थिति यह है कि भ्रष्टाचार भारतीय समाज पर पूर्ण रूप से व्याप्त हो गया है और कालाधन कमाने वाला व्यक्ति भारतीय अर्थ व्यवस्था का नियंता बन चुका है । "काला धन हमारे आर्थिक, राजनीतिक और प्रशासकीय भ्रष्टाचार का आर्थिक भाव अवश्य ही है ।"[31] भारतीय समाज में आर्थिक अपराध करनेवालों की संख्या बढ़ गयी है । लोग जीने के लिए और सुख सुविधायें प्राप्त करने के लिए आर्थिक अपराध करने लगे हैं । कुछ इने गिने लोग काले धन की सहायता से आडंबरपूर्ण जीवन बिताने लगे हैं । "आजकल भारतीय समाज के सामने अनेक समस्यायें उठी हैं । इनमें प्रमुख है जनता के विरुद्ध किये

---

31. Black money is nothing but a financial expression of the degree of economic, political and administrative corruption

India in Crisis - J.D. Sethi, P.67

जानेवाला आर्थिक अपराध । यह आर्थिक अपराध रिश्वत लेने और देने से लेकर कर टाल देना, गुप्त संपत्ति, आडंबरपूर्ण जीवन, तस्करी, विदेशी मुद्रा में धोखा धडी तक व्याप्त हो गया है।[32]"

दलितों के जीवन स्तर को ऊपर उठाकर, उनकी आर्थिक विषमता को मिटाकर समाजवाद की स्थापना केलिए जो परिश्रम शासन की ओर से किया जाता है, उसमें ईमानदारी का अभाव है, दिखावे की भावना है। दलितों के कल्याण केलिए सामुदायिक विकास विभाग से जो धन दिया जाता है, जो घर बनाकर दिया जाता है, वह दर असल दलितों को नहीं मिलता, संपन्न किंतु पतित व्यक्ति उनसे वह हड़प लेता है। "समाज विरोधी एवं राष्ट्र विरोधी तत्वों ने सुनियोजित विकास कार्यक्रमों की नयी संपति को लुक छिपकर अपनी जेबों में भर दिया है। सार्वजनिक जीवन में भ्रष्टाचार को उन्होंने बढ़ावा दिया है।[33]"

भारतीय, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक वातावरण में कृत्रिमता की छाया व्यापी हुई है। जीवन की इस कृत्रिमता की झलक साधारण व्यक्ति से लेकर उंचे अफसरों, मंत्रियों, नेताओं तक मिल सकती है। राजनीतिज्ञों की कथनी और करनी के बीच का फासला, गाँवों में उभरते नये जीवन बोध, क्रांतिकारियों तक के जीवन की कृत्रिमता एवं ~~अदर्श~~ आदर्शहीनता अर्थ के बुरे प्रभाव को सूचित करते हैं। इस तरह आधुनिक अर्थ

---

32. One of the biggest problems the government faced in recent years was the mounting volume of economiccrimes committed against the people. These ranged from the simple act of giving and taking bribes and evading taxes toconcerling wealth, Luxurious living, large scale smuggling and racketeering in foregn exchange.
    Emergency in India - Trevor Drieberg, Sarala Jagmohan,P.

33. Antisocial and antinational elevents surreptitiously diverte a conserable portion of the new wealth created by planned developmental activity intotheir own pockets. This provided the basis for the growth of a parellel black money economics along with it an enormous ballooning of curruption in public life.
    Ibid p.87

व्यवस्था ने एक ओर संबन्धों को तोडा है और राजनीति को मोडा है तो दूसरी ओर सामाजिक मूल्यों को विघटित भी कर दिया है । वैसे सैद्धांतिक रूप में देश की आर्थिक नीतियों को परिवर्तित करने की शक्ति राजनीतिक दलों में होनी चाहिए । दुर्भाग्यवश भारत की राजनीतिक पार्टियाँ कभी भी इस लक्ष्य की ओर अग्रसर होती नहीं दिखाई पडती । समसामयिक आर्थिक व्यवस्था की पकड में वे सब जकडी हुई लगती है । हमारी समूची प्रजातंत्र नीति कौडियों के दाम बिकने लगी है । आज अर्थशक्ति के बल पर मतदाता बिकते हैं, विधायक बिकते हैं,: निर्वाचन क्षेत्रों में चुनाव होते रहते हैं।अर्थशक्ति के बल पर, आया राम गयाराम के बल पर सरकारें बनती है और गिरती है । इसका मतलब यह है कि अर्थशक्ति ने राजनीति को अपनी दासी बना दिया है । साम्यवादी, कांग्रेसी और क्रांतिकारी सब इसकी आग के सामने पिघलने वाले पुतले लगते हैं ।

खोखली धार्मिकता को उभारकर अर्थ ने धर्म पर अपने विराट स्वरूप को प्रतिष्ठित किया है । इसी कारण भारत में ऐसे तथाकथित धार्मिक संप्रदाय कुकुरमुत्तों के समान उभर आये हैं । जिनकेलिए आवश्यक धन अमेरिका देश की सी॰आई॰ए॰ जैसी ऐजेंसियाँ जुडाती रही हैं । आनन्दमार्गी से संबन्धित आश्रम और रजनीश जैसे व्यक्तियों के आश्रम और उनके कार्यकलाप यह सिद्ध करते हैं कि धर्म भी अर्थ की बदौलत बिक सकता है ।

सांस्कृतिक परिस्थिति

संस्कृति वह तत्व है जो हमारे जीवन को परिष्कृत, विवेक संपन्न, उदार और सर्जनशील बनाता है[34] । संस्कृति, नैतिकता और धर्म आपस में जुडे हुए हैं । धार्मिक दृष्टि के अभाव में संस्कृति खोखली बन जाती है ।

34॰ साहित्य समीक्षा और संस्कृति बोध - देवराज - पृ॰3

संस्कृति दरअसल परंपराओं की मान्यताओं से प्राप्त विचार समुच्चय है । धर्म जो कहता है वह जब मानव कर दिखाता है, तब संस्कृति का स्वरूप बन जाता है ।

"समाज या राष्ट्र के जीवन में आध्यात्मिक ऊंचाई और भावनात्मक गहराई की अभिव्यक्ति ही उस समाज या राष्ट्र की संस्कृति की आधार शिला है । यह संस्कृति स्थिर या गतिहीन तत्व नहीं है । जिस प्रकार समाज या राष्ट्र का चिंतन करवट बदलता है उसी तरह संस्कृति भी करवट बदलती है और आगे बढ़ जाती है । जीवंत समाज और गतिमान राष्ट्र की संस्कृति भी विकासमान रहेगी । विकास का निरंतर प्रवाह ही संस्कृति की सरिता है[35]।"

संस्कृति की इस धारा को गतिहीन बनाने की कोशिश जब की जाती है तब संस्कृति की धारा दूषित हो जाती है । "जब सांस्कृतिक मूल्य बिखेरते हैं तो एक समूचा संचित सत्य-तंत्र खंडित हो जाता है । जब भी व्यक्ति को अपना सत्य टूटता हुआ दिखाई देता है तो एक बौखलाहट, अनास्था उग्रता का आलम उस पर सवार हो जाता है । और यही विघटन की वह खतरनाक स्थिति है जो मानवीय मूल्यों को उखाड फेंकने का खतरा देती है[36]।"

धर्मप्राण भारतीय संस्कृति की विचारधारा का मूल स्त्रोत आध्यात्म है । इस "भारतीय संस्कृति का मुख्य ध्येय है आत्मानां सिद्धि अर्थात् अपने को जानो । भारतीय संस्कृति की सबसे बडी विशेषता सत्य का अनुसंधान करने का प्रयत्न है[37]। भारतीय संस्कृति समन्वयात्मक एवं अहिंसा

---

35. आंचलिकता से आधुनिकता बोध - भागवतीप्रसाद शुक्ल - पृ.80
36. साम्प्रतिक हिन्दी कहानी - सं.परमानंद गुप्त - निरुपमा सेवती का कथन पृ.235
37. मेरे जीवन के विचार स्तंभ - गोविन्द दास - पृ.16

मिश्र संस्कृति रही है । विभिन्न संस्कृतियों के संपर्क में आने पर भारतीय संस्कृति क्षीणकाय नहीं बनी बल्कि अधिक जीवंत बन गयी । आर्य, अनार्य, मुस्लिम और पाश्चात्य संस्कृति के संपर्क ने हमारी संस्कृति को नया रूप दिया । आधुनिक भारतीय संस्कृति को रूपायित करने में चार प्रमुख तत्वों का प्रभाव परिलक्षित होता है । विज्ञान की प्रगति, राष्ट्रीयता तथा जनतंत्रीय भावना, धर्म निरपेक्षता तथा औद्योगिक, आर्थिक व्यवस्था, इनके साथ ही साथ हुए विभिन्न धार्मिक आन्दोलनों ने भारतीय संस्कृति को रूप और भाव देने केलिए महत्व पूर्ण योग दिया है । इन विभिन्न धार्मिक आन्दोलनों ने धर्म की असली व्याख्या की और धर्म का स्वरूप निर्धारित किया । "आधुनिक भारत के नव आलोक में धार्मिक भावना से उद्भूत सांस्कृतिक आन्दोलनों का सूत्रपात हुआ जिससे भारतीय संस्कृति की, पाश्चात्य संस्कृति के आक्रामक रूप से रक्षा हुई और जड़ता के बन्धनों से बंधे रूढ़िवादी संस्कृति में फंसे समाज को मुक्ति मिली । इन सांस्कृतिक आन्दोलनों की विशेषता यह है कि उन्होंने धर्म के वास्तविक स्वरूप को निर्धारित किया । यही धर्म, व्यक्ति तथा समाज के सामाजिक और व्यावहारिक जीवन में सक्रिय होकर संस्कृति का रूप ले लेता है[38] ।

भारतीय संस्कृति में कम से कम दो भिन्न धारायें परिलक्षित होती हैं । एक वह धारा है जो शिक्षित एवं उच्च विचार रखनेवाले लोगों की है । दूसरी वह धारा है जिसमें अशिक्षित लोगों की नहीं बल्कि चिंतन की दृष्टि से पिछडे हुए लोगों की है । आर्थिक दृष्टि से समाज में उभरे विभिन्न वर्गों ने भारतीय संस्कृति को नया रूप दे दिया । इस प्रकार आधुनिक भारतीय समाज की सांस्कृतिक स्थिति में एक रूपता नहीं दीखती, लेकिन वह

38• भगवती चरण वर्मा के उपन्यासों में युग चेतना - बैजनाथ प्रसाद शुक्ल पृ•276

अन्तर्विरोधों से ग्रस्त है । "सांस्कृतिक दृष्टि से आधुनिक भारतीय समाज विविध प्रकार के अन्तर्विरोधों से ग्रस्त है । गाँव में, रहनेवाला, विपुल समाज प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक आदर्शों और मानदण्डों से जकडबद्ध है । पुराने धार्मिक विश्वासों ने नयी लहर से उन्हें वंचित कर रखा है यूरोपीय शिक्षा और सभ्यता से प्रभावित वैज्ञानिक प्रगतियों से अभिभूत नगर निवासियों का बहुत हिस्सा पाश्चात्य संस्कृति की भौतिकता, बौद्धिकता और वैज्ञानिकता को जीवन केलिए आवश्यक मानता है[39]।

पाश्चात्य शिक्षा का प्रचार एवं प्रसार ने हमारी सांस्कृतिक भावना को बहुत बडी सीमा तक प्रभावित किया था । पाश्चात्य संस्कृति की खूबियों ने, उसकी स्वच्छंदता ने लोगों को आकर्षित किया, जीवन में स्वच्छंदता का आग्रह करनेवाले नगरवासियों की संस्कृति का रूप पाश्चात्य संस्कृति के रंग में रंग गया । पाश्चात्य संस्कृति व्यक्ति प्रधान है । पाश्चात्य संस्कृति भारतीय संस्कृति की तुलना में समाज की उपेक्षा करती है । पाश्चात्य शिक्षा ने सांस्कृतिक भावनाओं को प्रभावित करने के साथ ही साथ नैतिक, धार्मिक मान्यताओं की जडों को हिला दिया है । "पाश्चात्य शिक्षा दीक्षा ने भारत में शिक्षित अशिक्षित दो भिन्न सांस्कृतिक वर्गों का निर्माण किया । एक ओर भौतिक साधनों से संपन्न शहरों में रहनेवाले और आधुनिक कहे जानेवाले शिक्षित वर्ग की संस्कृति का विकास हुआ तो दूसरी ओर साधन हीन गांवों के कठोर जीवन, अंध विश्वास, भौतिक असुविधाओं में पलनेवाले अशिक्षित वर्ग की सांस्कृतिक चेतना विकास न कर सकी । इस प्रकार मोटे तौर पर दो वर्गों की सांस्कृतिक चेतना ग्राम्य संस्कृति और नगर संस्कृति के रूप में विभाजित हो गयी[40]।"

---

39. आंचलिकता से आधुनिकता बोध - भगवतीप्रसाद शुक्ल - पृ.82
40. भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में युगचेतना - बैजनाथप्रसाद शुक्ल-पृ.272

ग्राम्य संस्कृति आधुनिकता की अभिशापों से मुक्त है । जाति प्रथा, मूर्तिपूजा, कर्मफल के सिद्धांत आदि भावनाओं की ओर गाँववाले अधिक उन्मुख है । शहर में गाँवों की तरह भिन्न जातियों का भरमार नहीं है वहाँ आर्थिक दृष्टि से भिन्न वर्गों में समाज खंडित हो चुका है । इन विभिन्न वर्गों में आर्थिक असमानता के कारण वैमनस्य की भावना अधिक प्रबल है । धर्म-नैतिकता के प्रति नागरिकों की आस्था बिलकुल नष्ट होती दिखाई पड़ती है । उनका धर्म अर्थसम्मत एवं अर्थ संचालित बन चुका है । नैतिकता अर्थ की नैतिकता बन चुकी है । धन के पीछे पागल नागरिकों का मन इतना स्वार्थपूर्ण हो गया है कि उन लोगों की धर्म और नैतिकता की मान्यतायें अलग अलग दिखाई पड़ती हैं । परंपरागत दृष्टि से ग्रामीण और नगरीय संस्कृति में यद्यपि अंतर है ; फिर भी आधुनिक संबन्ध गाँव और नगरों को इतने पास ले आये हैं कि गाँव की परंपरा सांस्कृतिक मूल्यों से च्युत होने लगी है । इस प्रकार भारतीय समाज की सांस्कृतिक भावना विशेष स्थिति की ओर उन्मुख हो रही है जिसमें भौतिकता के प्रति विशेष आग्रह है और आध्यात्मिकता नकारी जाने लगी है ।

इस तरह समुचे देश की संस्कृति परिवर्तनोन्मुख होती जा रही है । एक ओर शहर भौतिकांध जीवन के शिकंजे में फंस गये हैं और नगर की संस्कृति परंपरा से दूर निरी भौतिकता में डूब गयी है तो दूसरी ओर गाँव की संस्कृति परंपरागत ग्रामीण मान्यताओं को तिलांजलि देने लगी है । गाँवों के पास पनपने वाले शहरों ने अपनी संस्कृति के प्रभाव को गाँवों पर डाला है । परिणामत: ग्राम्य संस्कृति भी नगर की सांस्कृतिक मलिनता से कलंकित होने लगी । इस तरह आज़ादी के उपरांत का समय मूल्य संक्रमण की स्थिति को सांस्कृतिक क्षेत्र में भी लागू कर गया ।

नयी पीढ़ी अपने को पश्चात्य संस्कृति के रंग में रंग देना चाहती है । शहरों में रहनेवाले धनी मां-बाप के बेटे-बेटियां धन का उपभोग इस ढंग से करना चाहते हैं कि वे अपने यौवन का पूरा आनंद लूट सकें। पाश्चात्य देशों की जो नयी पीढ़ी है वहां की परिस्थितियों के कारण निराशाग्रस्त मनस्थिति से पीड़ित है । भारत की नयी पीढ़ी उन्हीं का अनुकरण करना चाहती है । नशेबाज़ी, गांजा, अफीम आदि के उपयोग ने नयी पीढ़ी की सर्गात्मक चेतना को धक्का पहुँचा दिया तो दूसरी ओर उन्मुक्त भोग की लालसा ने वासना को जाग्रत कर नैतिक मूल्यों को च्युत कर दिया । इस तरह भारत की नयी पीढ़ी का एक हिस्सा रुग्ण मानस्किता और दिशाहीनता से पीड़ित होकर कर्महीन बन गया है ।

आधुनिक समाज में अर्थ और काम की महत्ता है । धर्म और मोक्ष के संबन्ध में लोग चिंता ही नहीं करते । भारतीय संस्कृति की अहिंसा-प्रियता, सत्यशीलता, आध्यात्मिकता, आदि गुण मानव के विकास के मार्ग में नष्ट होते नज़र आते है । "गोविन्द दास का मन्तव्य इस संदर्भ में समीचीन प्रतीत होता है । "धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष जो हमारी संस्कृति के चार प्रमुख कर्तव्य थे । उनमें धर्म का विकृत रूप हो गया । और मोक्ष की ओर कोई ध्यान नहीं रहा । अर्थ और काम दो ही जीवन के कर्तव्य हो गये । सच्चे धर्म और मोक्ष की ओर दृष्टि रखे बिना अर्थ और काम का रूप पाप मय हो जाता है और जहां पाप आया वहां बरकत समाप्त हो जाती है । अत: अर्थ जीवन का उद्देश्य बन जाने पर देश निर्धन हो गया और कामवृत्ति अनैतिकता लायी[41] ।

---

41. मेरे जीवन के विचार स्तंभ - गोविंददास - पृ.56

धार्मिक परिस्थिति

धर्म और नैतिकता एक दूसरे के पूरक जान पड़ते हैं । धर्म जो आचरण पद्धति का निर्धारण समाज केलिए करता है वही नैतिकता होती है । भारत की जनता विभिन्न धर्मों को मानती है । इस धर्म विभेद के कारण जितनी समस्यायें भारतीय समाज में उठी है उतनी अन्यकिसी देश में न उठी होगी । हिन्दुधर्म, बौद्ध धर्म, जैन धर्म, इस्लाम धर्म एवं ईसाई धर्म भारत के विशिष्ट धर्म रहे हैं । और इन धर्मों के बीच सामंजस्य के स्थान पर अलगाव की स्थिति उत्पन्न हो गयी है । गांधीजी की दृष्टि में इन धर्मों के बीच अनमेल भावना की कोई सार्थकता नहीं है । क्योंकि "सब धर्म एक ही स्थान पर पहुँचने के अलग अलग रास्ते हैं यदि हम एक ही लक्ष्य पर पहुँच जाते हैं तो अलग अलग रास्ते अपनाने में क्या हर्ज है ? वास्तव में जितने मनुष्य हैं उतने धर्म हैं"[43] ।

धर्म के परंपरावादी दृष्टिकोण का वैयक्तिक धर्म में परिवर्तन व्यक्ति चेतना के उदय को सूचित करता है । "धर्म के परिवर्तित स्वरूप का विवेचन किया जाय तो स्पष्ट होगा कि परंपरागत धर्म जो अलौकिक तत्व अर्थात् ईश्वर, देवी, देवता पर आधारित था, उसे रूपांतरित स्थिति में मानवीय आधार मिला । धर्म के परंपरागत भावात्मक रूप की अब बौद्धिक व्याख्या प्रस्तुत की जाने लगी है । ..... वर्तमान स्थिति में धर्म की रूढ़िगत स्थिति का बहिष्कार किया जा रहा है"[44] ।

---

43. गांधी साहित्य - गांधी विचार रत्न - मोहनदासकरमचंद गांधी-पृ.9
44. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास - मूल्य संक्रमण - हेमेन्द्र पानेरी - पृ.266

धर्म के नाते राष्ट्र पिता महात्मा गांधीजी की मृत्यु हो गयी । धर्म के नाते भारत का विभाजन हुआ । यह तो स्वतंत्रता के समय भारत में हुई धर्म संबन्धी घटनायें थीं । विभाजन के साथ ही साथ हिन्दु एवं इस्लाम धर्मानुयायियों के बीच घोर वैमनस्य का बीजारोपण हुआ । धर्म विभेद की इस धधकती आग को बुझाने में संविधान असफल ही रहा । धर्म के नाम पर किये गये भारत विभाजन ने लोगों के मन की विशालता को भंग किया । इसके फलस्वरूप अनेक सामाजिक समस्यायें उठ खडी हुई । जातिवाद भारतीय समाज में एक नियामक शक्ति के रूप में उभरने लगा है ।

धर्म के प्रति जनता की आस्था और अनास्था एक प्रत्यावर्तित भावना ही सिद्ध होती है । छुआछूत की भावना, सतीप्रथा पहले धार्मिक थी अब वह अधार्मिक बन गयी है । छुआछुत एवं सतीप्रथा सविधानिक दृष्टि से नष्ट हो चुकी हैं । आज छुआछुत की प्रथा न सही फिर भी लोगों के बीच, आर्थिक या धार्मिक असंमजस्य के कारण उत्पन्न अलगाव की भावना मौजूद है ।

अर्थ का बुरा प्रभाव अन्य क्षेत्रों की तरह धार्मिक क्षेत्र पर भी पडा है । बडे बडे आचार्यों तक भी अर्थ के पूजारी बन गये हैं । उनमें असली धार्मिक भावना न होने का बराबर है । विभिन्न धर्मों के लोगों के मन में अनमेल भावना को जाग्रत करके वे समाज में साम्प्रदायिकता या जातीयता के विष फैलाने का प्रयत्न करते हैं । बडे बडे धार्मिक आचार्य पापाचार में, स्वार्थ पूर्ति में डूबे हुए हैं । "पादरियों, पोपों एवं धर्म प्रचारकों ने नैतिकता का झंडा खडा करके, धन, पद, यश संग्रह किया और धार्मिक आवरण में पापाचार किया ।"[45] मात्र धार्मिक आचार्यों से नहीं धर्म से लोगों का विश्वास नष्ट होता जा रहा है ।

---

45. आधुनिक निबंध - ओम प्रकाश वर्मा - पृ.22

जातीयता एवं धार्मिक भिन्नता की भावना को नष्ट करने का प्रयास तो हो रहा है, सरकार एवं सामाजिक संस्थाओं की ओर से । सरकार की ओर से एक ऐसे वर्ग की स्थापना हुईजिसको हम हरिजन वर्ग कहते हैं । समाज में उनकी बुरी आर्थिक स्थिति से फायदा उठाकर ईसाई पादरियों ने उसको ईसाई धर्म में परिवर्तित करने का प्रयास किया था । मिसोराम, मध्यप्रदेश जैसे स्थानों में हरिजन इतना शोषित हो रहे हैं कि वे ईसाई धर्म को अपना रक्षा स्थान समझने लगे हैं ।

स्वाधीनोत्तर उतर भारत के कई राज्यों में हिन्दू राष्ट्रवाद के प्रति जोश पैदा हुआ । जनसंघ, राष्ट्रीय स्वयंसेवा संघ जैसे राजनीतिक धार्मिक दलों ने हिन्दू राष्ट्र वाद को बढ़ावा दिया । यहाँ उन्होंने जब देखा कि आदिवासियों का धर्मपरिवर्तन होने लगा हैं, इसका भी विरोध करने लगे । इस तरह धर्म की अधुनातन स्थिति को देखने से पता चलता है कि धर्मों के बीच आजकल प्रभुता केलिए संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो गयी है । पहले हिन्दू राष्ट्रवाद के लोग मुसलमानों को अपना शत्रु समझते थे तो आज़ादी के उपरांत ईसाई धर्म के प्रचारकों के प्रति भी उसका विद्वेष उभर आया है । उधर हिन्दू धर्म के अन्दर ही प्रचलित कुरीतियों को समाप्त करने की माग भी युवा पीढ़ी ने प्रस्तुत की है । इस तरह संघर्ष-रत धार्मिक परिस्थिति सब कहीं विद्यमान है । इसी बीच एक ऐसी युवा-पीढ़ी का भी विकास हुआ है जो इनमें से किसी भी धर्म की मान्यताओं को स्वीकारती नहीं और धर्म को मानवता के अधीन समझकर चल पडी है । उस तरह स्वतंत्रोत्तर काल की धार्मिक परिस्थितियां एक ओर पाश्चात्य दर्शन से प्रभावित है तो दूसरी ओर आंतरिक नैतिक आवश्यकताओं की सीमाओं से जकडी हुई है ।

वैसे देखा जाय तो आजकल लोग धर्म की मूलभूत प्रेरणाओं को स्वीकार नहीं करते । आडंबर और दिखावे के पक्ष ही उनको लुभाते दिखाई पड़ते हैं । एक ओर हिन्दू राष्ट्र वाद की कट्टरता ने अपना स्वर उठाया तो दूसरी ओर गरीब और पीड़ित आदिवासियों की निस्सहायता का लाभ उठाकर ईसाई पादरियों ने भी काफी धर्मपरिवर्तन किया है । यहाँ विश्वास के स्थान पर आर्थिक लोभ ही कार्य करता दिखाई पड़ता है । इस तरह स्वातंत्र्योत्तर कालीन परिस्थितियों में लोगों ने चंद चांदी के टुकड़ों केलिए अपने विश्वास को, अपनी धार्मिक आस्था को, आध्यात्मिक लक्ष्यों को धूमिल कर दिया है, क्योंकि धन के लोभ से कोई भी व्यक्ति स्वतंत्र नहीं ।

तीसरा अध्याय

पचास के पूर्व के उपन्यासों में नैतिक मूल्य

तीसरा अध्याय

पचास के पूर्व के उपन्यासों में नैतिक मूल्य

पचास के पूर्व लिखे गये हिन्दी उपन्यासों में नैतिक भावबोध को ढूंढ़ना उतना आसान काम नहीं है । फिर भी परीक्षा गुरू से लेकर प्रेमचन्द के गोदान तक जिन उपन्यासों का सृजन हुआ था उनमें नैतिक भावबोध सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों से बंधा हुआ एक विशेष प्रक्रिया के रूप में परिलक्षित होता है । यद्यपि प्रेमचन्द युग के आसपास के समय में नैतिक मूल्यों में और उनके चित्रण में रूचि प्रदर्शित की गयी है । फिर भी सही अर्थ में एक समस्या के रूप में उसका प्रस्फुटन स्वातंत्र्योत्तर काल में ही हुआ है । वैसे पचास के पूर्व लिखे गये 'शेखर एक जीवनी' जैसे उपन्यास को छोडा नहीं जा सकता । फिर भी प्रवृत्तिगत अध्ययन की दृष्टि से स्वातंत्र्योत्तर काल नैतिक मूल्यांकन केलिए उचित समय लगता है ।

पचास के पूर्व लिखे गये सारे के सारे उपन्यास उद्देश्य प्रधान रहे हैं । "अधिकांश सामाजिक एवं ऐतिहासिक उपन्यासों का उद्देश्य समाज कल्याण रहा । इन उपन्यासों में कहीं व्यक्ति विशेष को लक्ष्य करके कर्तव्यानुकूल आचरण की शिक्षा दी गयी तो कहीं समाज को सन्मार्ग की ओर ले जाने का आग्रह है । किन्हीं उपन्यासों में उपदेशों को अत्यंत सुव्यवस्थित उदाहरणों से पुष्ट किया गया है तो किन्हीं उपन्यासों में मनोरम ढंग से कथा कहकर निष्कर्ष स्वरूप नीति सूक्तियों को गुंफित किया गया है[1] ।

हिन्दी के प्रारंभिक उपन्यासों की नैतिक भाव भूमि

हिन्दी के प्रारंभिक उपन्यास मानव जीवन के मनोवैज्ञानिक चित्रण से वंचित रहे हैं। जनता को नैतिक शिक्षा देना, या जनता का मनोरंजन करना यही इन प्रारंभिक उपन्यासों का लक्ष्य रहा है । इसलिए मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं का यथातथ्य चित्रण इन उपन्यासों में नहीं मिलता । हिन्दी के प्रथम उपन्यासकार श्रीनिवासदास के 'परीक्षा गुरु' में नीति वचनों का भरमार है । श्रीनिवासदास जैसे प्रारंभिक उपन्यासकारों ने जीवन की वास्तविकता से कोसों दूर कल्पना के सहारे उपन्यासों की सृष्टि करके, नीति-वचनों के माध्यम से समाज को नैतिक शिक्षा देने का प्रयास किया है ।

बालकृष्ण भट्ट के "नूतन ब्रह्मचारी" में "सौअजान एक सुजान" में नीति वचनों से, पथभ्रष्ट व्यक्तियों को सुधारने का प्रयत्न मिलता है । 'नूतन ब्रह्मचारी' उपन्यास बालकों को नैतिक शिक्षा देने केलिए लिखा गया है तो 'सौ अजान एक सुजान' में धन की विकृतियों का चित्रण करके लेखक ने सत्संग की महिमा का वर्णन किया है ।

---

1. वृन्दावन लाल वर्मा के उपन्यासों में नैतिकता-कमलेश माथुर - पृ•20

देवी प्रसाद शर्मा उपाध्याय का 'सुन्दर सरोजनी' एक प्रेम कहानी है। प्रेम के असली स्वरूप का वर्णन करके उपाध्याय जी ने धर्म का यश गाया है ।

किशोरीलाल गोस्वामी के 'त्रिवेणी' या 'सौभाग्य श्रेणी', 'लीलावती' या 'आदर्श सती', 'मालती माधव' वा 'मदन मोहिनी', 'अंगूठी का नगीना' आदि उपन्यासों में उन्होंने धर्म और अधर्म का वर्णन करके ईश्वर प्रेम के आधार पर संयमित जीवन बिताने का उपदेश दिया है । लज्जाराम शर्मा के 'बिगडे का सुधार', 'आदर्श हिन्दू' जैसे उपन्यासों का शीर्षक उन उपन्यासों के उद्देश्य को व्यक्त करता है । "बिगडे का सुधार" में पतिव्रता पत्नी अपने पथभ्रष्ट पति को सन्मार्ग पर लाती है । 'आदर्श हिन्दू' में धर्म की श्रेष्ठता, कुशिक्षा और कुसंगति के परिणाम को व्यक्त करके सन्मार्ग की ओर अग्रसर होने का उपदेश उपन्यासकार ने दिया है ।

गंगाप्रसाद गुप्त का 'लक्ष्मी देवी' पाश्चात्य शिक्षा के बुरे प्रभाव को व्यक्त करनेवाला उपन्यास है । टीकाराम चौधरी के "पुष्पकुमारी" में नारी और गृहस्थ के आदर्शों की अभिव्यक्ति मिलती है । श्रीकृष्ण लाल वर्मा के चम्पा में वृद्ध विवाह समस्या को उठाया गया है । ब्रजनंदन सहाय के 'राधाकांत' में भारत के आचार विचार की, रीति रिवाज़ों की, नीति पद्धति की श्रेष्ठता का समर्थन है तो मन्नन द्विवेदी के 'रामलाल और कल्याणी' में उपदेशात्मकता की अपेक्षा सामाजिक जीवन का विश्लेषण अधिक महत्वपूर्ण हुआ है ।

हिन्दी के प्रारंभिक काल के उपन्यासों में ऐतिहासिक उपन्यास की परंपरा की नींव भी डाली गयी थी । इन ऐतिहासिक उपन्यासों में कल्पना के सहारे ऐतिहासिक घटनाओं में आदर्शों को व्यक्त करने का प्रयास तो

दीखता है । इन उपन्यासों में भी नीतिवचनों को सजा कर रखा है । मथुरा प्रसाद शर्मा का 'नूरजहाँ बेगम' वा जहाँगीर', व्रजनंदन सहाय का 'लाल चीन' और मिश्रबन्धु का 'वीरमणि' भी नीति का उपदेश देनेवाली ऐतिहासिक औपन्यासिक रचनायें हैं ।

उपर्युक्त विश्लेषण से पता चलता है कि हिन्दी के प्रारंभिक उपन्यासों का स्वरूप अत्यधिक आदर्शात्मक एवं नैतिक भाव बोध से प्रभावित रहा है । यहाँ नैतिकता की अन्दरूनी समस्याओं को न स्वीकार कर उसके बाहरी पक्ष पर ज़ोर देते हुए आचरण संहिता का एक आदर्श स्वरूप प्रस्तुत करना मात्र लेखकों का लक्ष्य रहा है । इस दृष्टि से जिस अर्थ में हम आधुनिक नैतिकता को व्याख्यायित करते हैं, उनकी समस्याओं पर प्रकाश डालते हैं, वह दृष्टि इन में थोडी भी नहीं मिलती । संक्षेप में कहा जाय तो उपर्युक्त रचनायें स्थूल उपदेशात्मकता को ही नीति का आधार मानती चली हैं और उनकी नैतिकता, आचरण की महत्ता और धार्मिक जीवन की सफलता आदि पर ही बल देती नज़र आती है ।

उसके बाद लिखे जानेवाले तिलस्मी, ऐयारी उपन्यासों में नैतिकता का पुट नहीं दिखाई पडता । उसके स्थान पर मनोरंजन और कौतूहलता दिखाई पडती हैं । वैसे बाबू देवकी नंदन खत्री जी ने हिन्दी के तिलस्मी ऐयारी उपन्यासों का सूत्रपात किया था । उनके उपन्यास 'चन्द्रकांता', 'चंद्रकांता संतति', 'भूतनाथ' में साहसिक कार्यों, घटनाओं का वर्णन बहुत खूबी के साथ हुआ है । खत्री जी की तिलस्मी परंपरा को गोपाल राम गहमरी ने अपनी रचनाओं के माध्यम से आगे बढ़ाया । देवीप्रसाद शर्मा, मदन मोहन पाठक, विश्वेश्वर प्रसाद वर्मा, रामलाल वर्मा आदि लेखकों ने भी तिलस्मी रचनाओं की सृष्टि करके उपन्यास को जनता के मनोरंजन का माध्यम बनाया था

वैयक्तिक नैतिकता का सवाल इन उपन्यासों में पैदा नहीं होता, क्योंकि इन उपन्यासों में चित्रित नैतिकता समूह की आचरण-व्यवस्था मात्र रह गयी है ।

दहेज, सास-बहु संबन्ध, वृद्ध विवाह आदि से उत्पन्न होनेवाली समस्यायें नैतिक जीवन के बाहरी पक्षों पर प्रकाश डालती हैं, कुछ इने गिने सामाजिक उपन्यासों में सास-बहु समस्या, वृद्ध विवाह समस्या, वेश्या समस्या, दहेज की समस्या आदि का वर्णन करके उपन्यासों को एक आदर्शात्मक परिवेश भी दे दिया गया है । गोपाल राम गहमरी का 'सास पुतोहु', कामता प्रसाद गुरू रचित 'पार्वती और यशोदा', चण्डीप्रसाद हृदयेश का 'मनोरमा', लाला देवराज - 'कर्कशा सास', गंगाप्रसाद सिंह - 'मृग मरीचिका, चन्द्रशेखर पाठक - 'वारांगना रहस्य या स्त्री वैचित्र्य', मुंशी हज़ारीलाल-'दो स्त्री का पति' आदि उपन्यासों में इन समस्याओं की यथासंभव अभिव्यक्ति मिली है ।

उपन्यास के विकास का यह प्रारंभिक चरण था और यहाँ नैतिकता एक विशेष समस्या बनकर नहीं उभर पायी थी क्योंकि परंपरागत मूल्यों के आधार पर ही उपन्यासकार रचनायें करते रहे थे । इस कारण सूक्ष्मता से वंचित ये औपन्यासिक रचनायें स्थूलता को प्रश्रय देती हुई मनोरंजन के धरातल पर मात्र खडी हुई थीं । अंग्रेज़ी शिक्षा की प्राप्ति से विकास का दूसरा दौरा शुरू होने लगता है । शिक्षित साहित्यकारों का उपन्यास के क्षेत्र में प्रवेश करना और अंग्रेज़ी शिक्षा से प्राप्त जानकारी को रचना के क्षेत्र में ले आना एक महान घटना है । बंगाल से अनूदित किये गये उपन्यास और अंग्रेज़ी में लिखे गये उपन्यास आदि ने एक ओर उनकी मानसिकता को विकासोन्मुख बनाया तो दूसरी ओर प्रगतिवादी विचारों को लेकर होनेवाली रूस की क्रांति ने भी नया उन्मेष भरने में सहायक सिद्ध हुआ । इन्हीं प्रभावों के परिणाम स्वरूप उपन्यास में तिलस्मी और ऐयारी क्षेत्रों से बाहर निकलने की क्षमता धीरे धीरे पैदा होने लगी ।

रूस में होनेवाले परिवर्तन तभी तक स्वीकारे गये मूल्यों को परिवर्तित करने केलिए अवश्य सूचनायें देनेवाले थे । शोषण और शोषण पर आधारित समाज को जहाँ नैतिक और वैध समझा गया था ; उसी स्थान पर इन्हीं दोनों को अनैतिक और अवैध घोषित करने की क्षमता जनता में लाने का श्रेय इसी विप्लव को है । इन महापरिवर्तनों की लहरें भारत की सीमाओं पर भी आ पहूँची और परिणाम स्वरूप धीरे धीरे यहाँ के लेखकों ने भी नैतिकता के नये संदर्भों पर विचार करने का भार अपने कंधों पर उठाया । औपन्यासिक क्षेत्र में इस प्रयास का सार्थक परिणाम प्रेमचंद के उपन्यासों में देखा जा सकता है ।

उपन्यास कला की प्रस्तुत यात्रा में कई अन्य लेखकों ने भी अपना महान योगदान दिया था । जयशंकर प्रसाद काल की दृष्टि से यद्यपि प्रेमचन्द के समकालीन माने जाते हैं, फिर भी रचना की आत्मवत्ता की दृष्टि से प्रसाद को प्रेमचन्द का समानवर्ती नहीं कहा जा सकता । प्रसाद ने यद्यपि अपने उपन्यासों में यथार्थवादी दृष्टि को प्रश्रय दिया था फिर भी उनका यथार्थवाद दलित वर्ग के जीवन गाथा से जुडा हुआ यथार्थ न रहकर कुछ सीमाओं के अन्दर बन्द हो जाता है । 'तितली', 'कंकाल' आदि उपन्यासों में यही दृष्टि-कोण प्रतिबिंबित होता है ।

प्रेमचंद युग के उपन्यासों में नैतिक मूल्य

प्रसाद के उपन्यासों में नैतिक मूल्य

भारतीय संस्कृति के आध्यात्मिक पक्ष को श्रेष्ठ माननेवाले, मानव की समता की व्याख्या करनेवाले प्रसादजी के उपन्यास साहित्य ने "नैतिक आदर्शों की प्रतिष्ठा के बजाय नैतिक ढोंग के उद्घाटन को तथा समाज द्वारा पुनीत समझनेवाले आदर्शों की महिमा गान के बजाय इनकी चीरफाड को प्रमुखता देकर हिन्दी उपन्यास रचना की नयी परंपरा की नींव डाली,[2] अत: कहा जा सकता है कि प्रसाद ने अपने काल के नैतिक आदर्शों की शल्य क्रिया की है ।

2. हिन्दी उपन्यास और नैतिकता - सुखदेव शुक्ल - पृ.89

अपने दो उपन्यास 'कंकाल' और 'तितली' के माध्यम से प्रसाद जी ने समाज के खोखले आदर्शों की यथार्थता को व्यक्त करने का प्रयास किया है जिनमें प्रसाद की स्वच्छंद यथार्थवादी दृष्टि की अभिव्यक्ति ~~प्रयास किया है~~ ~~जिनमें प्रसाद~~ परिलक्षित होती है । उनका 'कंकाल' समाज की जर्जर स्थिति को व्यक्त करनेवाला और उसपर कठोर व्यंग्य करनेवाला उपन्यास है । 'कंकाल' में धर्म के नाम पर समाज में चलनेवाले, धर्म के नाम पर पवित्र समझनेवाले अनेक घटनाओं को स्वच्छंदता की धाग में पिरोया गया है । देवी निरंजन स्वेच्छा से सन्यासी नहीं बनता है । लेकिन परिस्थिति वश उसको सन्यासी बनना पड़ता है । किशोरी तो उसकी बाल प्रेमिका थी । श्रीचंद के साथ विवाहिता होने पर भी देवी निरंजन से शारीरिक संबन्धों में वह जुट जाती है । देवी निरंजन का संयम तो नष्ट हो चुका था फिर भी वह लोगों के सामने प्रतिष्ठित सन्यासी के रूप में घूमता फिरता है । इस पर प्रसाद जी व्यंग्य करते हैं -

धर्म के ठेकेदार मंदिरों में बैठे मौज उडाते हैं[3] ।

उपन्यास की स्त्रियाँ, यमुना, घण्डी आदि अनेक अत्याचारों को सहती, दुःख झेलती, दुर्गतियों का शिकार बनती नज़र आती हैं । "प्रसाद इस उपन्यास में हिन्दू समाज के कंकाल की ओर पाठकों का ध्यान बरबस खींचते हैं । यहाँ मठों में दुराचार और व्यभिचार हुआ करता है । जिनकी कोटि कोटि जन पूजा करते हैं । वे पशुओं से भी गये बीते जघन्य व्यक्ति है । अनेक बाहरी आडंबरों से लिपटा हिन्दू समाज का रुग्ण मृतप्राय शरीर पडा सिसक रहा है । अबलाओं की यहाँ पग पग पर दुर्गति होती रहती है । निम्न वर्गों को धर्म के नाम पर निरंतर ठुकराया जाता है । इस दुर्गन्धपूर्ण पंक में फंसी धर्म की अन्त सलिला को उभारने का प्रयत्न इस उपन्यास में प्रसाद ने किया है[4] ।

---

3. कंकाल - प्रसाद - पृ.99
4. आज का हिन्दी साहित्य - प्रकाशचंद्र गुप्त - पृ.58

समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार को प्रसाद जी ने अपनी औपन्यासिक रचनाओं में व्यक्त किया है । "अस्पताल में ..... दूध कभी कभी मिलता था क्योंकि अस्पताल जिन दीनों केलिए बनते हैं, वहाँ उनकी पूछ नहीं, उसका लाभ भी संपन्न ही उठाते हैं। जिस रोगी के अभिभावक से कुछ मिलता है, उसीकी सेवा अच्छी तरह होती । दूसरों के कष्टों की गिनती नहीं[5] ।

प्रसाद जी ने जीवन की यथार्थता को समझकर तदनुरूप धर्म एवं नैतिकता की व्याख्या करने की कोशिश की है । प्रसाद डाकुओं के जीवन का वर्णन करके, उनके नैतिक पक्ष पर विशेष बल देते हुए भारतीय सभ्यता के खोखलेपन पर व्यंग्य करते हैं - 'कंकाल' में डाकुओं की नैतिकता की अभिव्यक्ति मिलती है - डाकू बदन गूजर के शब्दों में - हम लोग डाकू है । हम लोगों को माया ममता नहीं, लेकिन हमारी निर्दयता भी अपना निर्दिष्ट पथ रखती है । धन लेने का दूसरा उपाय हम लोग काम में नहीं लाते । दूसरे उपायों को हम लोग अधम समझते हैं । धोखा देना, चोरी करना, विश्वासाघात करना, यह सब जो तुम्हारे नगरों के सभ्य मनुष्य की जीविका के सुगम उपाय हैं । हम लोग उनसे घृणा करते हैं[6] ।

इस तरह नैतिक मूल्यों के विघटन की तस्वीर प्रसाद के उपन्यासों में दृष्टिगत होती है । शहर के सभ्य लोग मुखौटे धारण करके लोगों को चूसते हैं उस दृष्टि से उनका और डाकुओं का पेशा एक जैसा है । आचरण की दृष्टि से दोनों समान है ।

---

5. कंकाल - जयशंकर प्रसाद - पृ.99

6. वही - पृ.181

उस समय के समाज के झूठे आदर्शों की विवेचना निम्नलिखित पंक्तियों में परिलक्षित होती है । "कंकाल में उन्होंने समाज के प्रचलित विश्वास, उसकी कार्य प्रणाली, उसके अनर्थकारी बंधन एवं उसकी सार हीन नैतिकता की पोल खोलकर व्यक्ति की विवशता के चित्रण को प्रमुखता दी है । निरंजन देव, मि॰ बाथम के झूठे धार्मिक आचरण के पीछे छिपी कामूकता और साम्प्रदायिकता की निकृष्ट भावना, पाप एवं पुण्य संबन्धी प्रचलित नैतिक विश्वासों की निस्सारता, तथा श्रीचंद, किशोरी मंगल देव की कुलीनता के झूठे गर्व की पोल दिखाने केलिए ..... कंकाल का विषय बनाया है[7] ।

कंकाल में धर्म को हृदय से आचरित तथ्य मानने वाले प्रसाद तितली में आते आते महंतों की झूठी धार्मिक भावना को, सामंतीय समाज व्यवस्था की क्षयोन्मुखता एवं संयुक्त परिवार की समस्याओं को व्याख्यायित करने का प्रयास करते हैं ।

धामपुर के ज़मीन्दार बैरिस्टरी करके विलायत से शैला नामक एक अंग्रेज़ी युवती को साथ लेकर आता है । ज़मीन्दार की माता उस संबन्ध को अनैतिक समझती है । अनवरी नामक डाक्टर और बहन माधुरी के षड्यंत्र से ईन्द्र देव के संयुक्त परिवार में घुटन एवं विघटन की स्थिति जन्म लेती है । माधुरी के पति श्यामलाल का चित्रण सामंतीय वर्ग की बुराईयों, उनकी कामुक मनोवृत्तियों के प्रतीक के रूप में हुआ है । वह घर की नौकरानी के साथ बलात्कार करता है । अनवरी के साथ अनैतिक संबन्ध भी जोड़ता है । शेरकोट का नाम मात्र ज़मीन्दार, मधुबन का विवाह तितली से हो जाता है । मधुबन की विधवा बहिन राजकुमारी को महंत के यहाँ उसकी कामुक मनोवृति का परिचय मिलता है । सरल मनोवृतिवाले, सामंतीय संस्कारों का

7॰ हिन्दी उपन्यास का विकास और नैतिकता - सुखदेव शुक्ल - पृ॰94

अवशिष्ट मधुबन को अपनी जीवन यात्रा में बहुत अधिक परेशानियाँ झेलनी पड़ती हैं। उसकी पत्नी तितली में भोलेभाले, कर्तव्य निष्ठ एकव्रता भारतीय नारी का प्रतीकात्मक चित्रण मिलता है। रामजस जैसे निम्न वर्गीय लोगों के विवशता पूर्ण जीवन की झलक भी उपन्यास में दृष्टिगत होती है।

यहाँ धार्मिक च्युति और अवैध संबन्धों से उत्पन्न स्थिति का बोध कराके प्रसाद ने नैतिक समस्या को जीवंत बनाया है। इससे यह व्यक्त होने लगता है कि तत्कालीन मठ और वहां के मठाधिपति धार्मिक आचरण से भ्रष्ट हो चुके हैं और कामुकता के शिकार बन गये हैं।

इस प्रकार प्रसाद के उपन्यासों की नैतिकता पर विचार करते समय यह व्यक्त होता है कि उन्होने धर्म, अर्थ और काम के क्षेत्र में प्रचलित अनैतिकता का अंकन करना चाहा था। तभी तो उनके पात्र कह बैठते हैं - "ज़मीन्दार इन्द्रदेव - मैं तो अपने धर्म और संस्कृति से भीतर ही भीतर निराश हूँ। मैं सोचता हूँ कि मेरा सामाजिक बंधन इतना विशृंखल है कि मनुष्य केवल ढ़ोंगी बन सकता है सुना है आप धर्म में प्राणि मात्र की समता देखते हैं, किंतु वास्तव में कितनी विषमता है। सब लोग जीवन में अभाव ही अभाव देख पाते हैं[8]।

इस तरह सशक्त लेखनी के धनी प्रसाद ने प्रेमचन्द के पूर्व उपन्यासों में नैतिकता को उचित स्थान देने का प्रयास किया था। और

---

8. तितली - जयशंकर प्रसाद - पृ, 129-130

जोशीजी के उपन्यासों की नैतिक भावभूमि

इलाचंद जोशी ने मनोविज्ञान के आधार पर मानव मन की विश्लेषण अपने उपन्यासों में किया है । उन्होंने यह सिद्ध किया है कि मानवता की विजय वैयक्तिक अहं के उन्मूलन से ही संभव है । जोशीजी की औपन्यासिक दृष्टि सुधारवादी रही है। उन्होंने अपने उपन्यासों के ज़रिए जन कल्याण की भावना को अभिव्यक्ति दी है । नैतिक समस्याओं को लेकर गहरा विचार विमर्श प्रस्तुत करने में जोशी सबके आगे हैं । नैतिकता की समस्या को उन्होंने विभिन्न कोणों से देखा है और इस कारण जोशी के विचार बहुत महत्त्वपूर्ण बन जाते हैं । जोशीजी की नैतिक मान्यताओं से अवगत होने केलिए उनके उपन्यासों की विवेचना करना आवश्यक है ।

जोशीजी का 'लज्जा' उपन्यास उच्च वर्गीय जीवन की आकांक्षाओं और यथार्थताओं को चित्रित करने के साथ ही साथ पुरानी और नयी सामाजिक मान्यताओं को भी स्वर देता है । लज्जा का विलासमय, उच्छृंखल जीवन उसके घर की स्वच्छ वातावरण को कलुषित करता है । लज्जा की कामुक मनोवृत्ति उसका भाई राजू पसंद नहीं करता । राजू उसमें भारतीय नारी के आदर्शमय रूप को देखना चाहता है । डाक्टर से बहन की उच्छृंखलता और वासनामय व्यवहारों से पीड़ित होकर राजू आत्महत्या करता है । उधर जोशीजी ने माधवी दीदी के माध्यम से भारतीय, पतिपरायणा, धर्म परायणा नारी का चित्रण किया है । राजू के द्वारा भारतीय धार्मिक परंपरा पर आस्था रखनेवाले भारतीय युवक का चित्रण प्रस्तुत किया है ।

इस उपन्यास की प्रमुख समस्या अविवाहित स्त्री का पर पुरुष संबन्ध की वैधता को लेकर खडी होती है । स्त्री को विवाह से पूर्व अन्य पुरुषों से शारीरिक संबन्ध स्थापित करने की छूट हमारी मान्यतायें नहीं देतीं ।

जब इस तरह किया जाता है तब वह भारतीय परंपरा के अनुसार अनैतिक माना जाता है । जोशी ने तत्कालीन सामाजिक मान्यताओं के प्रकाश में स्त्री के नैतिक आचरण को समाज सापेक्ष मानने का प्रयास किया है। स्त्री कहाँ तक उच्छृंखल हो सकती है और उसकी नैतिकता की सीमा क्या है ? यह सवाल हमेशा उठाया जाता रहा है । जोशी ने भी नैतिकता और उच्छृंखलता के बीच के संबन्ध को व्यक्त करने का प्रयत्न किया है ।

'सन्यासी' में जोशी जी ने एक व्यक्तित्वहीन पुरुष के शंकालु मन की विवेचना की है । शाँति, जयन्ती जैसे नारीपात्र नंद किशोर के कुण्ठाग्रस्त जीवन का शिकार बनते हैं । नंद किशोर के प्रेम में अपने को धन्य समझने वाली शाँति केवल अशांति एवं असफलता को मोल लेती है । शाँति के पवित्र प्रेम को तृणवत् करके नंद किशोर जयंती से विवाह संबन्ध जोड़ता है और जयंती के जीवन की सारी स्वस्थता नष्ट कर देता है ।

समाज में ऐसे व्यक्ति होते हैं जो प्रेम को आत्मोल्लास की वस्तु समझते हैं। नंद किशोर ऐसे व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करता है ।

यहाँ उपन्यासकार ने पुरुष की स्वच्छंद मनोवृत्ति का परिचय देकर स्त्री पर किये जानेवाले अमानुषिक अत्याचार पर अधिक गंभीरता के साथ विचार किया है । बहुत पुराने ज़माने से ही स्त्री पुरुष के अधीन, अस्वतंत्र, सब तरह के अत्याचार की शिकार होकर, सब कुछ सहने केलिए तैयार खड़ी दीखती है । पुरुष उच्छृंखल बन सकता है । लेकिन स्त्री कभी उच्छृंखल नहीं हो सकती । स्त्री के उच्छृंखल होने से बनी बनायी नैतिकता का स्वरूप नष्ट हो जाता है । समाज की नैतिकता के आचरण संबन्धी इस एकांकी दृष्टिकोण को उपन्यासकार ने अभिव्यक्ति दी है । समाज की यह नैतिकता पुरुष द्वारा निर्धारित नैतिक संहिता है । पुरुष द्वारा निर्धारित नैतिकता की अवैज्ञानिकता को यहाँ पर स्वर देने का प्रयास उपन्यासकार ने किया है ।

"पर्दे की राणी" उपन्यास एक ओर पुरुष की कामुक मनोवृत्ति का परिचय देता है तो दूसरी ओर वेश्या श्यामा के जीवन के चित्रण के द्वारा वेश्याओं की विलासिता और उससे जन्मी अनैतिक बातों की व्याख्या भी करता है । निरंजना के कौमार्य को खंडित करने की अदमनीय इच्छा से पत्नी शीला की हत्या करने केलिए भी तैयार हो जानेवाला इंद्र मोहन, वेश्या की पुत्री होने से निरंजना में भी वेश्यापन ढूँढ निकालने की; उसको वेश्या बनाने की कोशिश में रत मन-मोहन आदि पात्र नैतिकता के सामने प्रश्नचिह्न खड़ा कर देते हैं । विलासिता में डूबने केलिए फिर से वेश्या जीवन में चली जानेवाली श्यामा जैसे चरित्र समाज केलिए कितने अहित कार्य कर रहे हैं इसका वर्णन बहुत खूबी के साथ इस उपन्यास में मिलता है । नैतिकता को परंपरागत दृष्टि से देखने के साथ साथ उच्छृंखल मनोवृत्तिवाले कामुक रसिक पुरुष एवं स्त्रियों के कारण समाज को जो नुकसान पहुँचता है उसका प्रभावात्मक चित्रण भी जोशी यहाँ प्रस्तुत करते हैं ।

'प्रेत और छाया' में अपने को जारज पुत्र समझने वाले पारसनाथ की कुण्ठा ग्रस्त जीवन को अंकित करने का प्रयास मिलता है । पारसनाथ का जीवन यह सूचित करता है कि घर के वातावरण का कितना गहरा प्रभाव व्यक्तियों पर पड़ता है और व्यक्ति का मन कितना कलुषित हो जाता है । पारसनाथ को जारज पुत्र कहकर, उसकी माता पर वेश्या का लाञ्छन लगाकर पिता ने पारसनाथ के जीवन को कुंठा ग्रस्त बना दिया था । इस कारण पारसनाथ स्त्रियों से नफरत करता है और अनेक स्त्रीयों को धोखा देकर वह असमाजिक कार्यों में जुट जाता है ।

तीखे अनुभवों के आधार पर नैतिक सीमाओं को जानबूझ कर तोडनेवाले ऐसे पात्र भोग ग्रस्त मनोवृत्ति के शिकार हैं । इनके द्वारा किये जाने वाले कार्य नैतिक पतन के आधार बन जाते हैं ।

'निर्वासित' उपन्यास के द्वारा आणुबम की नाशकारिता एवं अहिंसा के आदर्श की महानता, शोषण की समस्याओं को नये आलोक में देखने का प्रयास लेखक ने किया है । संपत्ति की ओर हर मनुष्य आकर्षित हो जाता है । लेकिन संपत्ति और संतोष दोनों साथ साथ नहीं चलते । लक्ष्मीनारायण सिंह की संपन्नता के कारण ही नीलिमा उसके प्रति आकर्षित हो जाती हैं और अनेक कष्टों को झेलने केलिए बाध्य हो जाती है । लक्ष्मी नारायण सिंह के चरित्र चित्रण द्वारा विलासी, कामुक पुरुष के बीभत्स एवं कुरूप चित्र हमारे सामने जीवन्त लगते हैं । लक्ष्मीनाररयण सिंह का अनैतिक जीवन नीलिमा, प्रतिमा, महीप आदि सत्चरित्रों के जीवन की असफलता का कारण बन जाता है । असामाजिक कार्य करनेवाले लक्ष्मी नारायण सिंह के राक्षसीय व्यक्तित्व के पर्दाफाश के साथ महीप जैसे झूठे आदर्श प्रेमी व्यक्तियों का पोल खोलकर लेखक ने तत्कालीन समाज की कुरूपता एवं विसंगतियों का सफल चित्रण किया है ।

समाज में स्त्री, शिक्षिता हो या अशिक्षिता पुरुष के कामुक व्यवहार का शिकार हमेशा बनती आयी है । पुरुष के अमानवीय व्यवहार से उत्पन्न मानसिक यंत्रणाओं को सहनेवाली नारी, समाज की नैतिक संहिता के निर्धारक पुरुष के सामने सवाल प्रस्तुत करती, मानवीय व्यवहार की प्रार्थना करती दीखती है । पुरुष प्रधान समाज में पुरुष द्वारा पथभ्रष्ट होकर अकुलीन होनेवाली नारियां अंत में कैसे अनैतिकता की शिकार बन जाती हैं, इसका उदाहरण इस उपन्यास में जोशी ने प्रस्तुत किया है ।

'मुक्ति पथ' उपन्यास का नायक राजीव वर्मा विधवा नारी सुनंदा का उद्धार करके उसे अपना जीवन साथी बनाता है । जनकल्याण की भावना से प्रेरित होकर राजीव वर्मा व्यक्तिगत सुख एवं पारिवारिक चिंताओं से मुक्त रहता है । सुनंदा को राजीव वर्मा से वैवाहिक सुख नहीं मिलता । अपने स्त्रीत्व की अवहेलना उससे सहा नहीं जाता और वह राजीव से अलग हो जाती है ।

राजीव वर्मा सुनंदा का उद्धार करता है, नवजीवन देता है। विधवा नारी का विवाह करके नव जीवन एवं नयी स्फूर्ति देना नैतिकता की दृष्टि से अत्यंत उचित ही दीखता है । लेकिन सुनंदा के अंतर की अपूरित आकांक्षाओं को अनदेखा करके यौन आकर्षणों से निवृत्त होना तो अत्यंत अनुचित कार्य ही सिद्ध होता है । यहाँ यौन तृप्ति से वंचित नारी के असामाजिक कार्य करने की, पथभ्रष्ट बन जाने की संभावना तो रहती है इसलिए राजीववर्मा का व्यवहार अनुचित एवं अनैतिक आचरण की ओर प्रेरित करनेवाला बन जाता है, इस कारण वह अनैतिक ही कहा जा सकता हैं ।

राजीव वर्मा के चरित्र की परख करने पर यह बात मालूम होती है कि वह पुरुषोचित गुणों से वंचित है। आद्यंत उसके चरित्र में नपुंसकत्व का भाव देखा जा सकता है । इसी कारण उसकी पत्नी उससे रिश्ता तोड़कर चलने केलिए विवश हो जाती है । पुरुष की यह पुरुषत्व हीनता नैतिकता के सामने फिर से प्रश्न खड़ा कर देती है और स्त्री की असहाय स्थिति का स्पष्ट स्वरूप झलका देती है ।

" जिप्सी " अयथार्थ घटनाओं से संपन्न एक उपन्यास " हैं। रंजन, मनिया को गलियों से उद्धार करके अपनी जीवन संगिनी बनाता है । मनिया के आग्रह से रंजन ईसाई धर्म स्वीकार करता है। कलकत्ते में क्रांतिकारी वीरेन्द्र की मृत्यु हो जाती है और मनिया क्रांतिकारियों के से परिचित होकर रंजन उसकी पत्नी शोभना के प्रति भी आकर्षित हो जाता है । वीरेन्द्र की मृत्यु हो जाती है और मनिया क्रांतिकारियों के तेजाब के प्रयोग से कुरूप हो जाती है। क्रांतिकारी दल की सदस्या के रूप में मनिया बहुत अधिक सफल कार्य करती है । बंगाल के अकाल के समय रंजन अपनी कोठी पर अस्पताल खोलता है । शहर से आयी मंजुला नामक नर्स पर रंजन मुग्ध हो जाता है । मंजुला स्वयं मनिया थी जिसने प्लैस्टिक सर्जरी के द्वारा अपने मुख को सुन्दर बनाया था ।

रंजन के चरित्र चित्रण के द्वारा लेखक ने पुरुष का एक से अधिक स्त्रियों से होनेवाले लगाव को नैतिकता की दृष्टि से देखने की कोशिश की है । शोभना जैसे चंचल, अतृप्त, व्यभिचारी नारी का चित्रण करके उपन्यासकार ने स्त्री के अंदर सोई हुई अतृप्त भावनाओं की शल्य क्रिया करने का प्रयास किया है ।

जोशीजी के उपन्यासों में नैतिक मूल्य

जोशीजी ने अपने उपन्यासों में नैतिकता के स्वरूप को प्रचलित मानदण्डों के आधार पर आंकने की कोशिश की है । उनके उपन्यासों में कामातुर पुरुषों की भीड एक ओर दिखाई पडती है तो दूसरी ओर नपुंसक पुरुष और वेश्या स्त्रियाँ भी मिल जाती हैं । सौम्य नारियों के चित्रण करने के साथ साथ परिस्थितिवश उच्छृंखल हो जाने वाली कामाक्रांता स्त्रियों का भी स्वरूप उनके उपन्यासों में दिखाई पडता है । नैतिकता को उन्होंने विशेष दृष्टि से देखा है । पुरुष प्रधान समाज हमेशा नैतिकता के हथकंडे को लेकर स्त्री पर प्रहार करता आया है और युगों से स्त्री इस पीडा को चुपचाप सहन करती आयी है । वैज्ञानिक दृष्टि से पुरुष प्रधान समाज द्वारा निर्धारित स्त्री के आचरण संबन्धी संहिता अस्वीकार्य है क्योंकि यह समता के आधार पर नहीं परंतु गुलामी के आधार पर बनी हुई है । कहीं कहीं उपन्यासकार ने यह सूचित किया है कि नैतिक आचरणों को तोडने पर स्त्री जितना अधिक दंडनीय मानी जा सकती है । उतना ही दंड भोगने की जिम्मेदारी पुरुष को भी है । कुल मिलाकर नैतिक मान्यताओं में परिवर्तन की कामना जोशी जी की रचनाओं में मुखरित होती है ।

जोशी जी ने अपने उपन्यासों में धर्म की विभिन्न मान्यताओं को स्वर दिया है । "साधारणत: सभी सामाजिक व्यक्ति धर्म को जिस अर्थ में ग्रहण करते हैं, उसके अनुसार धर्म एक सामाजिक लिबास के अतिरिक्त कुछ नहीं है । ऐसे आदमी कितने हैं जो चाहे कोई भी धर्म स्वीकार क्यों न करें उसके मर्मगत सत्य को ही आंतरिक निष्ठा से अपनाये रहना चाहते हो[9]।"

धर्म की सही पहचान कोई व्यक्ति अभी तक नहीं कर सका है इसलिए धर्म केवल लेबल मात्र रह गया है । यदि कोई व्यक्ति धर्म के मर्म को अपनाने में सफल होता है , उसके जीवन में धर्म विभेद का कोई स्थान न रहेगा । लेकिन दरअसल होता यह है कि धर्म के बाहरी रूप की पहचान लोग करते हैं उसके आंतरिक मर्म को आत्मसात् न कर सकने के कारण उनकी धार्मिक दृष्टि संकुचित रहती है ।

भारतीय समाज धर्म पर, परलोक एवं कर्मसिद्धांत पर अंधा विश्वास करता है । विधवा नारी सुनंदा का अन्य व्यक्ति से बातें करना तो निषिद्ध है । "सुनंदा केलिए इस लोक के हित से भी अधिक पर लोक के हित की आवश्यकता है[10]।" भारतीय नारी चाहे विधवा हो, पत्नी हो इन केलिए समाज ने कुछ नियम बनाये हैं । विधवा सुनंदा का यौवनयुक्तजीवन किसी जन्मांध विश्वास के आचरण स्वरूप नष्ट हो रहा है । राजीव इसी पर आलोचना करता है । "इन धर्म ध्वजियों ने और उनके पूर्वजों ने सदियों से सरल विश्वास परायण समाज को बहकाकर, उनके मन पर परलोक का आतंक जमा रखा है आज के युग में भी समाज में उस जीर्ण संस्कार का अनुसरण अंधभाव से किया जा रहा है । असहाय विधवाओं को मानवीय अधिकारों से वंचित किया जा रहा है - अंधे समाज एक विशिष्ट रूप धारण किये हुए है[11]।

---

9. जिप्सी - इलाचंद्र जोशी - पृ.142
10. मुक्तिपथ- इलाचंद्र जोशी - पृ. 43
11. वही - पृ.44

भारतीय नारी इसलिए अपने जीवन के चारों ओर चक्कर काट रही है । उसको स्वच्छंदता की वायु उपलब्ध नहीं । आज के विकास-मान युग में भी स्त्री पुरुष की पुतली मात्र रह गयी है ।

भारतीय समाज में सब क्रियाकलापों के पीछे धर्म की समस्या खडी हो जाती है । पाप और पुण्य की चिंता, कर्मवाद आदि मानवीय आदर्श धर्म से जुडे हुए हैं । धर्म अधर्म की जो रूप रेखा समाज ने तैयार कर रखी हैं, उसके अनुसार समाज में आचरण संहिता बनायी गयी है । लेकिन यूरोप वासी जीवन के सब पहलुओं को स्वीकार करके, जीवन की वास्तविकता की जानकारी प्राप्त करके, बहुत मस्ती एवं सुख के साथ जीवन बिता रहे हैं । वे लोग जीवन को केवल जीवन केलिए ही स्वीकार करते हैं - "लोग केवल कर्म केलिए कर्म करते हैं । धर्म अधर्म और पाप पुण्य के पचडे में पडकर पग पग पर द्विविधा का सामना करते हुए निश्चेष्ट और निष्क्रिय बनने की फिलासफी उनकी नहीं है ।"[12]

जोशीजी ने अपने उपन्यासों में धर्म परिवर्तन की समस्या को वाणी दी है । अंग्रेज़ी मिसनरियों के प्रयत्नों से, धन के लोभ से और उच्च वर्ग के निर्दय व्यवहारों से पीडित बहुतेरे लोगों ने अपना धर्म परिवर्तन किया है । "जिप्सी" की सिलविया ईसाई धर्म की विशेषताओं की ओर मनिया का ध्यान आकर्षित कराती है । रंजन इसके संबन्ध में सोचता है - "वह {सिलविया} केवल इस उद्देश्य से उसे {मनिया को} बहकाना चाहती है कि ईसाई संसार में एक ईसाई की संख्या और बढ़ जाय ।"[13] गरीबों केलिए धर्म की चिंता उतनी नहीं है जितनी होनी चाहिए । वे उस धर्म को स्वीकार करते हैं जिस धर्म में उनको मनुष्यों की तरह गणना मिलें और जीवन यापन हो ।

---

12. मुक्तिपथ - इलाचंद्र जोशी - पृ.49-50
13. जिप्सी - इलाचंद्र जोशी - पृ.110

"पादरी से पूछना । अगर वह रूपया दे तो मैं भी बाल बच्चों के साथ क्रिश्चन बन जाऊं । मेरी जिन्दगी भर केलिए मेरी और बाल बच्चों की रोटियों का ठिकाना लगा दे तो बस, फिर क्या है[14] ।

जोशी जी ने भारतीय धर्म की "विशेषताओं" की ओर समाज का ध्यान बरबस खींचा है । भारतीय धर्म की संकुचित मनोवृत्ति और उससे जन्मी हुई धर्म परिवर्तन की समस्यायें भारतीय धर्म के खोखलेपन को व्यक्त करती हैं । इस मिथ्या धर्म की झांकी उपन्यासकार ने अपने उपन्यासों में प्रस्तुत की है ।

स्त्री-पुरुष संबन्धों की नैतिकता

भारतीय नारी अब भी शोषण की शिकार रही है । अब भी स्त्री के प्रति सामंतीय दृष्टिकोण रखा गया है, जिसके अनुसार स्त्री केवल भोग एवं विलास की वस्तु है । स्त्री को अपने जीवन में सब कुछ सहना पड़ता है और पुरुष की तुलना में स्त्री का व्यक्तित्व समाज में नगण्य है। 'जिप्सी' की मनिया रंजन के प्रति विरोध प्रकट करती है "तुम्हारे वर्ग में जो अनेक गुण है , उनमें एक यह भी है कि नये नये रोमानी उपकरणों को जुटाते चले जाना । तुम लोग स्त्री पुरुष का संबन्ध केवल वहीं तक निभाना अपना कर्तव्य समझते हो जहां तक अपर पक्ष में रोमानी रस अवशिष्ट रहे । इस रस के समाप्त होते ही तुम उसे मिट्टी के उच्छिष्ट पात्र की तरह फेंककर पटक देते हो । इसलिए मेरे साथ तुम्हारा जो व्यवहार रहा है । उसमें न कोई नयापन है, न कोई आश्चर्य की बात है न दु:ख की[15]। यहाँ मनिया ने पुरुष के नैतिक आदर्शों की व्याख्या प्रस्तुत की है ।

---

14. जिप्सी - इलाचंद्र जोशी - पृ.159

15. वही - पृ.476

भारतीय पुरूष स्त्री में सभी तरह के गुण देखना चाहते हैं और अपनी प्रेमिका के तन और मन को अपने अधिकारों के अंदर सुरक्षित रखना चाहते हैं । "पुरूष यह चाहते हैं कि उनकी प्रेमिका अपने तन के अतिरिक्त आजीवन अपने संपूर्ण मन और आत्मा को भी उन्हें अर्पित किये रहें और उन दोनों को आदर्श की सुदृढ़ लोह पिटारी में बन्द करके उसकी कुंजी भी उन्हीं को सौंप दें, ताकि दूसरा कोई पुरूष कौतूहल वश उस अमूल्य धन की ओर झांकने तक की सुविधा न पा सके ।[16] पुरूष की यह मनोवृत्ति दरअसल पूंजीवादी मनोवृत्ति है । उक्त प्रसंगों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि जोशी जी ने स्त्री की नैतिक मान्यताओं को पुरूष द्वारा निर्धारित दंडनीति का परिणाम माना है । स्त्री की विवशता और उसकी परतंत्रता पर भी लेखक ने प्रकाश डाला है । इससे यह व्यक्त होने लगता है कि जोशी जी स्त्री केलिए एक नयी नैतिक संहिता का विकास करना चाहते हैं ।

जोशीजी विवाह की मान्यताओं की परख करते हैं । "जो विवाह समाज की मर्यादा की रक्षा पूरी नहीं कर पाता वह चोरों का विवाह है ।"[17] जिसका यह अर्थ होता है कि सामाजिक मान्यता के अभाव में विवाह का नैतिक स्वरूप ठहर नहीं पायेगा और ऐसी अवस्था में स्त्री पुरूषों के मिल कर रहना अनैतिक कार्य ही कहलाया जायेगा । यह विवाह का नैतिक पक्ष है । जोशी जी प्रेम को भी सामाजिक सीमाओं के अंदर सुरक्षित रखना चाहते हैं । सामाजिक बंधन के बिना किसी प्रेम की कोई सार्थकता ही नहीं है । इसका मतलब यह नहीं है कि वे प्रेम का निराकरण कर रहे हैं । "दो हृदयों का सच्चा प्रेम किसी भी हालत में, किसी भी परिस्थिति में अपने आप में महत्वपूर्ण है ..... पर इस पर समाज की मुहर लगने से उसकी महत्ता एक सुन्दर शालीन और व्यवस्थित रूप धारण कर लेती है । मेरा तो यह विश्वास है

---

16. जिप्सी - इलाचंद्र जोशी - पृ.136
17. सन्यासी - इलाचंद्र जोशी - पृ.259

मनुष्य ने सभ्यता और संस्कृति के विकास से जितने भी सामाजिक नियमों का आविष्कार किया है, उन सब में विवाह की व्यवस्था श्रेष्ठ है[18]। जोशीजी ने विवाह के अत्यंत आधुनिक स्वरूप को एक दूसरी दृष्टि से देखने की कोशिश भी की है। विवाह के संबन्ध में आधुनिक विचार 'प्रेत और छाया' के पारसनाथ व्यक्त करता है। "सच पूछो तो मैं विवाह प्रथा को ढ़ोंगियों और सफेद पोश बदमाशों की प्रथा समझता हूँ। जहाँ सच्चा प्रेम नहीं है, जहाँ दो पक्षों के पार्थिव स्वार्थ की कानून रक्षा का प्रश्न ही सबसे बडा प्रश्न है वहीं विवाह की आवश्यकता है। इस प्रकार की प्रथा, मनुष्य को केवल सामाजिक विधि-निषेधों का दास या कठपुतला बनाने के सिवा और कोई भी उपयोगिता नहीं रखती। जो सामाजिक विधान व्यक्ति को पूरी स्वतंत्रता नहीं देता, वह जाय चुल्हे में - उसकी तनिक भी परवाह करना समझदार व्यक्ति का काम नहीं है[19]।

कुल मिलाकर जोशीजी ने स्त्री और पुरुष के संबन्धों के बीच उभरनेवाली नैतिकता के विभिन्न पक्षों पर अलग अलग कोणों से प्रकाश डाला है। और नैतिकता के बदलते स्वरूप पर ज़ोर दिया है। इससे यह व्यक्त होने लगता है कि नैतिकता कहीं कहीं सापेक्ष सत्य के रूप में उभरती है।

अर्थ और स्वार्थ

अर्थ आधुनिक जीवन में सबसे शक्तिशाली बन गया है। अर्थ का जो प्रभाव समाज पर पडा है इसकी व्याख्या जोशीजी ने अपने उपन्यासों में प्रस्तुत की है। उनकी अर्थ संबन्धी मान्यता यह है कि आर्थिक विषमता को

---

18. प्रेत और छाया - इलाचंद्र जोशी - पृ.175
19. वही - पृ.175

दूर करने से ही दीन दलितों का उद्धार संभव है । अर्थ ही सभी बुराईयों की जड है "मानवता के सब सिद्धांत और समस्त आदर्श, शुष्क, धूलि कणों की तरह उड जाते हैं, जब सब प्रश्नों का मूल प्रश्न आर्थिक प्रश्न-वज्रस्तंभ की तरह बीच में आकर खडा हो जाता है[20] ।

आधुनिक दुनिया की सभी सामाजिक, राजनीतिक विषमताओं की जड में अर्थ का दुष्प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है । अर्थ के इस दुष्प्रभाव के कारण समाज में, राजनीति में भ्रष्टाचार की काली छाया व्याप्त हो गयी है । सामाजिक नैतिकता को बनाये रखते हुए धन इकट्टा करना असंभव बात है । धनार्जन करते समय व्यक्ति का आचार भ्रष्ट हो जाता है । जो व्यक्ति धनार्जन की इस होड में अपने आदर्शों को ईमान्दारी के साथ सुरक्षित रखना चाहता है वह मूर्ख बन जाता है । आर्थिक दबाव और जीने की लालसा के कारण ईमान्दार व्यक्ति भी असामाजिक कार्य करने में लग गये हैं । यहाँ व्यक्ति की नैतिकता समाप्त होने लगती है । समाज के निचले से ऊपरी सतह तक व्याप्त स्वार्थ की भावना से व्यक्ति व्यक्ति के बीच के संबन्धों में ढ़ीलापन की स्थिति आ गयी है ।" आधुनिक जीवन की इस स्वार्थ भावना ने जीवन को पूर्ण विनाश की ओर अग्रसर किया है ।

नैतिक पतन की बढ़ती सीमायें

जोशीजी ने आधुनिक भारत के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक भ्रष्टाचार का खुल्लं खुल्ला चित्रण अपने उपन्यासों में प्रस्तुत किया है । "सब खटमल है सब गिरहकट है । सारा समाज इस भ्रष्टाचारी युग में खटमलों और गिरहकटों से भरा पडा है । ऐसे ऐसे विकट कि खुले आम भ्रष्टाचार और चोर बाज़ारी में लिप्त पाये जाते हैं । और अधिकारियों की

---

20. सन्यासी - इलाचंद्र जोशी - पृ.25।

पकड में आते आते साफ फिसलकर अपने अपने पूर्ण सुरक्षित छिद्रों में जा छिपते है[21]। जोशी जी के विचारों में नैतिकता के अभाव में आर्थिक अपराध घटित होने लगते हैं और अपराधी नियमों के चंगुल से फिसलकर सुरक्षित स्थानों में जा छिपते हैं। आर्थिक क्षेत्र में नैतिक आचरण इतना ही अनिवार्य है जितना कि किसी अन्य क्षेत्र में।

समाज को सुगठित रूप देने केलिए, समाज में व्याप्त बुराईओं को खतम करने केलिए अनेक संस्थायें काम कर रही हैं। लेकिन वे केवल ज़ोर से भाषण देते हैं, प्रस्ताव पास करते है यहीं तक उनके सुधारवादी प्रयत्न सीमित है। "इंडियन वीमन्स लिबर्टी लीग' की सदस्या रमला गिडवानी कहती है "हमारी जो बहनें गुलामी की जंजीरों से जकडी हुई हैं, उन्हें मुक्ति का पाठ पढ़ाना ही हमारी संस्था का उद्देश्य है ....हमारी संस्था प्रतिवर्ष प्रस्ताव पास करती रहती है। सामाजिक या राजनीतिक क्षेत्रों में जो अन्याय हमारे स्त्री समाज पर होते रहते हैं, उन्हीं के विरोध में भाषण देना, विरोध सूचक या खेद प्रकाशक प्रस्ताव पास करना और उन प्रस्तावों की सूचना अधिक से अधिक पत्रों में छपवाना ही हमारा काम है[22]।" भारतीय समाज के विकास केलिए कार्यरत सामाजिक संस्थाओं के खोखलेपन का विशद विवेचन उपर्युक्त शब्दों के ज़रिए जोशी जी ने किया है।

नैतिक आचरण-राजनीति के क्षेत्र में

राजनीतिक दलों के ध्वंसकारी रूप का चित्रण जोशी जी ने बहुत सूझी के साथ किया है। भारत के राजनीतिकदल एक दूसरे का विरोध कर रहे हैं। वास्तव में इन राजनीतिक दलों का ध्येय समाज में मंगल की कामना है। लेकिन "प्रत्येक दल अपने को समाज में व्यापक कल्याण के आदर्श की

21. मुक्तिपथ - इलाचंद्र जोशी - पृ.125-126
22. वही - पृ.255

स्थापना का एक मात्र ठेकेदार मानता हुआ दूसरे दलों को गालियाँ देता रहता है । सर्वत्र केवल व्यक्तिगत और संगठित धूर्तता, पारस्परिक दोषारोपण और परस्पर प्रताड़न का जाल बिछा हुआ है[23] ।

'मार्क्सवादी राजनीतिक दलों की नीति की, इलाचंद्र जोशी ने हंसी उडायी है । "इन सब दलों की सारी शक्तियाँ एक दूसरे के अस्तित्व को मिटाने के प्रयत्नों में खर्च हो रही हैं । यह पारस्परिक संघर्ष ही जैसे सभी दलों का मुख्य ध्येय बन गया है और जो मूल लक्ष्य था अर्थ और संपत्ति का सम विभाजन - वह गौण हो उठा है[24] । फलत: मार्क्सवादी दलों पर लोगों की आस्था नष्ट होती जा रही है । जोशीजी की दृष्टि में, समाज और संस्कृति राजनीति के चंगुल में आ फंसे हैं । "सांस्कृतिक वर्ग इतने दुर्बल और क्षीण पड गये हैं कि विभिन्न राजनीतिक गुटों के नक्कार खाने के ऊपर अपनी आवाज़ उठाने में एक दम असमर्थ हैं और किसी न किसी राजनीतिक या आर्थिक गुट के साथ अपने को संबद्ध किये रहते हैं[25] । राजनीति के इस अतिशय प्रभाव के कारण, जीवन के सभी क्षेत्रों में अराजकता की स्थिति उत्पन्न होने लगी है । भ्रष्टाचार के वातावरण की सृष्टि करने में समाज को पदच्युत करने में राजनीतिज्ञों का बहुत बडा हाथ रहा है ।

इस प्रकार इलाचंद्र जोशी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से नैतिकता के कई पक्षों पर प्रासंगिक रूप में विचार प्रकट किये हैं । उनके उपन्यास अधिकतर नैतिक समस्याओं के दायरों से संबद्ध रहे हैं । पात्र एवं विचार इस बात को सूचित करते हैं कि नैतिक मूल्य बोध में परिवर्तन की आवश्यकता है ।

---

23. मुक्तिपथ - इलाचन्द जोशी - पृ.126
24. वही - पृ.292
25. जिप्सी - इलाचंद्र जोशी - पृ.293

क्योंकि नैतिकता संबन्धी नियम सब पूर्व कल्पित धारणा के आधार पर बने हुए है । समय की मांग के अनुसार इनमें हेर फेर करना समाज के कल्याण केलिए अत्यंत आवश्यक है ।

जैनेन्द्र के उपन्यासों की नैतिक भावभूमि

जैनेन्द्र ने व्यक्ति पर केन्द्रित समस्याओं को अपने उपन्यासों का विषय बनाया है । व्यक्ति की नैतिकता का विश्लेषण एवं विवेचन जैनेन्द्र जी ने किया है । जैनेन्द्र का दार्शनिक व्यक्तित्व उनके उपन्यासों में पूर्ण रूप से छाया हुआ है । जैनेन्द्र केलिए "नैतिक शब्द प्रिय है, नैतिकता का वह कायल है ।"[26] फिर भी नैतिक शब्द के प्रयोग से वह बचे रहना चाहते हैं ।

फिर भी जैनेन्द्र जी पोथी बन्द नैतिकता को बडे काम की चीज़ मानते हैं । "यह जो जोडियाँ है, अच्छा या बुरा, नीचा-ऊंचा इत्यादि---- इनका भेद बना रहता है तभी तक स्थिति बनी रहती है । स्थिति पालन की दृष्टि से यह पोथी बन्द नैतिकता बडे काम की चीज़ है, उससे अनुशासन बना रहता है और स्थिति भंग नहीं होती ।[27]

'परख' उपन्यास में जैनेन्द्र जी ने अस्थिर मनोवृत्तिवाले सत्यधन नामक व्यक्ति का चरित्र चित्रण किया है । कभी झूठ नहीं बोलने की प्रतिज्ञा लेने के कारण वकालत पास करने पर भी सत्यधन वकील नहीं बन पाता । कट्टो से वह प्रेम करता है लेकिन अमीर परिवार की गरिमा को वह पत्नी के रूप में स्वीकारता है । फिर भी कट्टो अपने मास्टरजी का सुख चाहती है ।

---

26. परिप्रेक्ष्य - जैनेन्द्र - पृ.89
27. वही - पृ.90

कट्टो का विवाह बिहारी से हो जाता है और दोनों सेवा कार्य केलिए चले जाते हैं । यहां जैनेन्द्र जी सत्यधन और कट्टो के संकल्प-विकल्पों की कथा अंकित करके, चंचल मनोवृत्तिवाले लोभी सत्यधन, त्याग एवं नैतिक आदर्शों पर आस्था रखनेवाले कट्टो एवं बिहारी को जीवंतता प्रदान करते हैं । प्रेम और धन के बीच में द्वन्द्व होता है। उसमें प्रेम की हार और धन की जीत होती है । यहां उपन्यासकार ने मन की स्वाभाविक वृत्ति को धन के सामने हारती हुई दिखाकर आचरण की नैतिक संहिता पर आदेश खडा किया है ।

'त्याग पत्र' में जैनेन्द्र जी ने असहाय स्त्री मृणाल के जीवन को अभिव्यक्ति दी है । परिस्थितिवश मृणाल का शांत जीवन नष्ट हो जाता है और वह असहाय जीवन बिताने केलिए विवश हो जाती है । अपनी सहेली शीला के भाई से प्रेम करने वाली मृणाल को बडी आयु के एक व्यक्ति के साथ विवाहित होना पडता है । कुछ ही दिनों के अंदर पति उसका तिरस्कार करता है और उसे एक बनिये के साथ जीवन बिताना पडता है जज प्रमोद (मृणाल का भतीजा) मृणाल को अपने घर ले जाने की कोशिश करता है । लेकिन मृणाल उसके साथ चलने केलिए तैयार नहीं होती ।

प्रमोद केलिए डॉक्टर के घर से विवाह का सुझाव आता है । जब लडकी को देखने केलिए डाक्टर के घर प्रमोद आता है तब वहां उसकी मुलाकात मृणाल से होती है । डाक्टर के सामने प्रमोद यह स्पष्ट करता है कि डाक्टर के बच्चों को पढ़ानेवाली मृणाल उसकी बुआ है । इस रहस्योद्घाटन के फल स्वरूप डाक्टर के घर से प्रमोद का विवाह संपन्न नहीं हो पाता । अपनी बुआ की असहाय स्थिति में सहायता न दे सकने के कारण प्रमोद जज के पद से त्यागपत्र देकर वैराग्य जीवन बिताने लगता है ।

यहाँ रूढ़िगत नैतिकता का रूप हमें प्राप्त होता है । डाक्टर मृणाल को उपेक्षिता और भली औरत समझकर, अपने बच्चों को पढ़ाने का काम देता है । लेकिन असहाय नारी मृणाल प्रमोद की बुआ है यह बात उसे अखरती है और इसी कारण प्रमोद को वह जामाद के रूप में स्वीकार नहीं कर पाता । इस उपन्यास में सामाजिक मान्यता एवं खोखले आचरण के बीच जो अनदेखा रिश्ता जुड गया है ; उसीकी समीक्षा जैनेन्द्र ने की है । आदर्श के नाम पर अनैतिक कार्य करनेवाला डाक्टर आचरण पर आधारित नैतिकता के खोखलेपन को उजागर करने में ही सहायक सिद्ध होता है ।

'सुनीता' में जैनेन्द्र ने स्त्री पुरूष संबन्धों की नयी व्याख्या प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । श्रीकांत, हरिप्रसन्न और सुनीता अस्वाभाविक पात्र लगते हैं । फिर भी उनका चरित्रांकन अत्यंत सशक्तता के साथ हुआ है । क्रांतिकारी हरिप्रसन्न का सुनीता एवं श्रीकांत के जीवन में आना सुनीता उन दोनों के एकरसता पूर्ण जीवन में नयी स्फूर्ति देनेवाली घटना बन जाती है । हरिप्रसन्न को क्रांतिकारी जीवन से विमुक्त करके नया जीवन देने का परिश्रम श्रीकांत अपनी पत्नी सुनीता के माध्यम से करता है ।

जैनेन्द्र का यह उपन्यास बिलकुल अस्वाभाविक ही लगता है । दोस्त को क्रांतिकारी जीवन से विमुख करने केलिए अपनी पत्नी सुनीता को नियुक्त करना, हरिप्रसन्न की सारी इच्छाओं की पूर्ति केलिए सुनीता को आदेश देना बिलकुल अयथार्थ लगता है । सुनीता को जंगल में ले जाना वहां सुनीता का हरिप्रसन्न के सामने नंगी खडी रहना अश्लील एवं अस्वाभाविक घटना लगती है ।

यहां तो जैनेन्द्र जी ने स्त्री की एवं पारिवारिक जीवन की नयी व्याख्या प्रस्तुत की है । पति और पत्नी का संबन्ध भारतीय परंपरा के

अनुसार अत्यंत पवित्र है । इसमें किसी अन्य व्यक्ति का आ घुसना उस संबंध की पवित्रता को क्षति पहुंचाता है । श्रीकांत और सुनीता नये नैतिक आचरण को प्रस्तुत करते हैं , जहाँ स्त्री शरीर की पवित्रता नाम की चीज़ की कोई सार्थकता नहीं है ।

इस उपन्यास में नैतिकता का जो स्वरूप उभारा गया है वह क्रांतिकारी लगता है । प्रचलित मान्यताओं की जडें काटनेवाली सुनीता का आचरण केवल एक काल्पनिक सत्य ही हो सकता है । फिर भी एक पहेली के रूप में समूची स्थिति का स्वरूप प्रस्तुत करके उपन्यासकार ने नैतिक आचरण की सीमा की ओर हमारा ध्यान खींचा है । पाप और पुण्य, नैतिकता और अनैतिकता, ये सब प्रश्न हैं जिनका आधार वैयक्तिक आचरण ही हो सकता है - समाज का - उसपर कोई अंकुश नहीं हो सकता । उपन्यासकार ने उक्त विचारों को अपने पात्रों के माध्यम से व्यक्त कराया है

जैनेन्द्र जी ने "कल्याणी" उपन्यास में भी पारिवारिक जीवन के नये पहलुओं के उद्घाटन करने का प्रयास किया है । डॉ॰ असरानी और कल्याणी के बीच का मनमुटाव आधुनिक अर्थ संपन्न भारतीय पारिवारिक जीवन की अर्थहीनता को व्यक्त करता है । पति और पत्नी दोनों साथ साथ रहते हैं लेकिन केवल समझौते पर । कल्याणी का विकासमय जीवन यह सूचित करता है कि आधुनिक नारी कई व्यक्तियों से प्रेम कर सकती है और कई व्यक्तियों से शारीरिक संबन्ध जोड भी सकती है । कल्याणी असरानी के साथ जीवन बिताती है लेकिन रायसाहब डॉ॰ भटनागर जैसे व्यक्तियों से अवैध संबन्ध स्थापित करती है ।

प्रीति और एक सीमा तक जैनेन्द्र की "कल्याणी" मानसिक विकारों के अनियमित आवेग की शिकार प्रतीत होती है । यह कहने में अत्युक्ति नहीं है कि जैनेन्द्र ने व्यक्ति चेतना के विकास को अपने उपन्यासों का विषय बनाया है और वैयक्तिक नैतिकता की व्याख्या की है ।

नैतिकता की दृष्टि से कल्याणी हमारे सम्मुख एक सवाल खडा कर देती है । स्त्री अपने शरीर को किसी के सामने भी अर्पित कर सकती है । यद्यपि समाज के नैतिक नियम उसे उसकी छूट नहीं देते।विवाहिता होने पर भी विवाहेतर संबन्ध जोडना कल्याणी केलिए बुरा कार्य नहीं लगता । वैयक्तिक आचरण की विशेषता के रूपमें ही कल्याणी के कार्य कलाप उपन्यासकार ने दिखाया है । इस कारण कल्याणी की उच्छृंखलता और कामातुरता उपन्यासकार केलिए एक वैयक्तिक प्रक्रिया मात्र है ।

जैनेन्द्र जी के उपन्यासों में नैतिक मूल्य

जैनेन्द्रजी ने उपन्यासों के ज़रिए अपने नैतिकता संबन्धी विचारों को व्यक्त किया है । कल्याणी उपन्यास में परम्परागत नैतिकता का समर्थन मिलता है । "सामाजिक नियमों का उल्लंघन उदासीन होकर नहीं देखा जाता, मर्यादाओं की रक्षा आवश्यक है[28]।" उपन्यास के सारे के सारे पात्र समाज की मर्यादाओं का विरोध नहीं करते । लेकिन अपनी वैयक्तिक इच्छा के फलस्वरूप जन्मी वैयक्तिक नैतिकता की गरिमा का बखान करते हैं ।

'परख' उपन्यास में आधुनिक भारत की सेवा संस्थाओं पर उनका विचार दृष्टिगत होता है । लोग भक्ति का मुखौटा धारण करके धर्म का झूठा आचरण कर रहे हैं और स्त्रियां भक्ति और संत सेवा के नाम पर व्यभिचार करती हैं । "लोग भक्ति की आड में सेवा, धर्म के लिबास में अत्याचार कर रहे हैं ..... उन लीचड औरतों से घृणा है जो भक्ति और संत सेवा के नाम पर व्यभिचार करती हैं[29]।" धार्मिक आचरणों की आड में जो अनैतिक आचार किया जाता है उसकी आलोचना उपर्युक्त पंक्तियों में दृष्टिगत होती है ।

28. कल्याणी - जैनेन्द्र - पृ. 84
29. परख - जैनेन्द्र - पृ.148

जैनेन्द्र ने नारी की असहायावस्था पर भी प्रकाश डाला है । घर से परित्यक्ता नारी को रंडी बन जाना पड़ता है । रंडी बन जाने से, परिवार से बहिष्कृत हो जाने से स्त्री का कोई मूल्य नहीं रह जाता । लेकिन पतिता नारी जब सन्यासिनी बन जाती है तो सन्यासिनी की सेवा करने केलिए भक्तिभाव से लोग इकट्ठे होते हैं । "परमेश्वरी माता को तो तुमने देखा ही है । दो बच्चों को छोड़कर बेचारी को सन्यासिनी बननी पडी । इसलिए कि व्यभिचारिणी बताकर उसकी ससुरालवालों ने निकाल दिया । रंडी बनकर आगरा के कोठों पर रह आयी ..... सन्यासिनी बनी..... और आज हालत यह है कि उसी को लोग माता माता कहते हैं ।[30]

वैसे नैतिक आचरण का स्वरूप विभिन्न संदर्भों में भिन्न भिन्न सा होने लगता है । सन्यासिनी का वेश धारण करनेवाली वेश्या समाज केलिए कैसे स्वीकार्य हो सकती है, यह एक पेंचीदा सवाल है । एक ही व्यक्ति अपने कार्य क्षेत्र को बदलने लगता है तो उसकी मान्यता बढ़ती है या घटने लगती है। यह प्रश्न समाज की अदूर दृष्टि के कारण ही उठ खडा होता है । वास्तव में व्यक्ति का आचरण ही उसकी महत्ता का आधार बन सकता है । इस दृष्टि से वैयक्तिक नैतिकता में विशेष महत्व परिलक्षित होता है ।

वैयक्तिक नैतिकता और सामाजिक नैतिकता दो और छोर हैं, जिनके बीच से स्वच्छ समाज अपना रास्ता तैयार करता है । इस कारण नैतिक नियमों को बनाये रखने में न वैयक्तिक नैतिकता स्वीकार्य हो सकती है न आदर्शात्मक सामाजिक नैतिकता । उनके बीच में कहीं एक तीसरा रास्ता खोलना ही हितकर लगता है ।

---

30. परख - जैनेन्द्र - पृ.167

कुल मिलाकर जैनेंद्रजी के उपन्यासों में नैतिकता की चर्चा वैसे तो बहुत कम मिलती है, जहाँ कहीं भी नैतिकता की समस्या खड़ी होती है, वहाँ इसके दो स्वरूप नज़र आते हैं - वैयक्तिक नैतिकता और सामाजिक नैतिकता । कल्याणी जैसे पात्रों के माध्यम से एक ओर व्यक्ति को अपने इच्छानुसार नैतिक आचरण चुनने की आज़ादी उपन्यासकार देते हैं तो दूसरी ओर यह भी सिद्ध करते हैं कि अपनी उच्छृंखलता को छिपाकर समाज की आंखों में धूल झोंककर महत्व की इच्छा करना घोर अनैतिकता है । क्योंकि जब तक व्यक्ति अपनी नैतिकता को महत्व नहीं देगा तब तक समाज से भी उसे महत्ता नहीं प्राप्त हो सकेगी ।

यशपाल के उपन्यासों की नैतिक भाव भूमि

प्रगतिवादी लेखक के रूप में यशपाल ने नैतिक समस्याओं को एक अलग दृष्टि से देखने की कोशिश की है । पचास के पूर्व लिखे गये उनके उपन्यासों में इस दृष्टि का प्राथमिक स्वरूप दिखाई पड़ता है। 'देश द्रोही' 'पार्टी कामरेड, 'मनुष्य के रूप' आदि उपन्यासों में नैतिकता का एक दूसरा स्वरूप झलकने लगता है ।

विधवा नारी सोमा के जीवन के उतार चढ़ावों की अभिव्यक्ति के साथ सम्मिलित कुटुम्ब की समस्या एवं क्रांतिकारी दलों के कार्यक्रमों का बहुत ही सफल वर्णन यशपाल ने 'मनुष्य के रूप' उपन्यास में प्रस्तुत किया है ।

विधवा नारी सोमा अपने घर की विषम परिस्थितियों से ऊबकर धन सिंह नामक ट्रेक ड्राईवर के साथ भाग जाती है । रास्ते में पुलिस के अत्याचार का पात्र बन जाती है । सोमा को लाला ज्वाला सहाय के यहाँ जगह मिल जाती है । अपने आचरण की महत्ता के कारण सोमा, लालाजी के

घर की सदस्या जैसी बन जाती है । यौवन की अपूरित आकांक्षाओं की आग में तड़पनेवाली सोमा बाद में लालाजी के पुत्र जगदीश की रखैल सी बन जाती है । क्रांति पर विश्वास करनेवाली मनोरमा (लालाजी की पुत्री) क्रांतिकारी दलों से संबन्ध स्थापित करती है । जगदीश की भाभियों के षड्यंत्र से सोमा लालाजी के घर से बहिष्कृत हो जाती है । वह बरकत नाम्क ड्राईवर के साथ बंबई भाग जाती है और 'पहाड़न' नाम से फिल्मी दुनिया में मशहूर हो जाती है । मनोरमा क्रांतिकारी भूषण से प्रेम करती है । लेकिन घर में मनोरमा का जीवन अत्यंत विषम परिस्थितियों से गुजरता है । मनोरमा अकेली घूमती है और क्रांतिदलों के कार्यक्रमों में भाग भी लेती है । इसलिए मनोरमा की भाभियाँ उसके विरुद्ध उच्छृंखलता का आरोप करती हैं । मनोरमा भाभियों के विद्रोह की प्रतिक्रिया के रूप में सुतलीवाला से विवाह करती है । सुतलीवाला मनोरमा को शारीरिक सुख देने में असमर्थ रहता है । फलत: उन दोनों का संबन्ध टूट जाता है । सुतलीवाला ' सोमा को अपनी पत्नी के रूप में स्वीकारता है ।

इधर धनसिंह सेना में भर्ती हो जाता है । वहाँ से वह सोमा को ढूँढते हुए बंबई आता है । मनोरमा के निर्देशानुसार भूषण धनसिंह की सहायता करने केलिए मज़बूर हो जाता है ।वह धनसिंह को साथ लेकर 'पहाड़न' के यहाँ पहुँच जाता है । वहाँ एक दुर्घटना में भूषण की मृत्यु हो जाती है । क्रांतिकारी नेता भूषण की मृत्यु एक अभिनेत्री के यहाँ हो जाने पर क्रांतिकारी दल पर अनैतिक आचरण की शिकायत होती है । सोमा धनसिंह का तिरस्कार करती है ।

इस उपन्यास में यशपाल ने मनुष्य के विविध रूपों का अंकन बहुत सफलता के साथ किया है । सोमा का अनैतिक जीवन, धनसिंह-बरकत जैसे निम्नवर्गीय लोगों की आस्था, अनास्था, कामुकमनोवृत्ति, जगदीश

जैसे उच्च वर्गीय व्यक्तियों का रहस्यमय एवं विलासी जीवन, भूषण जैसे क्रांतिकारियों का नैतिक जीवन आदि के चित्रण के द्वारा समाज की बुराईयों और अच्छाईयों को यशपाल ने वाणी दी है ।

इस उपन्यास में नैतिकता की समस्या स्त्री-पुरुष संबन्धों के विशेष संदर्भ में प्रकट होती है । संबन्धों की वैधता पर आंच लगानेवाली परिस्थितियां उपन्यास में उभर आती हैं । शारीरिक तृप्ति के बिना सोमा कई पुरुषों से संबन्ध जोडती है तो मनोरमा को भी पति बदलना पडता है । लेखक ने स्त्रियों की अतृप्त काम वासना का, और नैतिक सीमाओं को तोडने का चित्रण प्रस्तुत कर, पाठकों का ध्यान आकर्षित कर वैयक्तिक नैतिकता के खोखलेपन पर प्रकाश डाला है । साम्यवादी होने के कारण उनकी दृष्टि उपयोगितावादी रही है। सेक्स को केवल एक शारीरिक आवश्यकता के रूप में ही यशपाल ने देखा है ।

'पार्टी कामरेड' में यशपाल जी ने स्वतंत्रता संग्राम की पृष्ठ भूमि में साम्यवादी दलों के एवं साम्यवादी विरोधी दलों के आदर्शों की टकराहट का अंकन किया है । गीता साम्यवादी आदर्श पर अडिग विश्वास करती है । वह साम्यवादी आदर्शों का प्रचार अपने जीवन का लक्ष्य समझती है । साम्यवादी विचारों के प्रचार करने से, अकेली घूमने से, पुरुषों के बीच घुल मिल जाने से गीता को लोकापवाद सहना पडता है । फिर भी वह लोकापवाद को तुच्छ समझकर साम्यवादी कार्यक्रमों में सक्रिय भाग लेती है । भावरिया जैसा बदनाम व्यक्ति भी गीता के आचार और व्यवहार के कारण परिवर्तित हो जाता है ।

लेखक ने साम्यवादी दुनिया की सच्चाई का चित्रण करके साम्यवादी आदर्शों के प्रति हमें सचेत बनाने का प्रयास किया है ।

गीता पर पडे आरोपों का वर्णन करके यशपाल जी ने स्त्री के आचरणों पर समाज की कडी दृष्टि का परिचय देकर, मिथ्या अफवाहों के सामने न झुकने वाली, अपने आदर्शों पर अडिग साम्यवादी नारी का चित्रण किया है ।

यशपाल जी का दादाकामरेड क्रांतिकारी जीवन की संघर्षात्मक स्थिति को प्रस्तुत करता है । बी.एम. के माध्यम से क्रांतिकारी दलों में काम करने वाले अवांछनीय तत्वों को अंकित करके, उन तत्वों के द्वारा क्रांतिकारी दलों की नैतिक क्षति और आंतरिक विस्फोट एवं कार्य परिणति की असफलता की छानबीन करने का प्रयास यशपाल जी ने किया है । पूर्ण रूप से क्रांतिकारी व्यक्तित्ववाला हरीश, क्रांतिकारी दलों पर आस्था रखने वाली शैलबाला, मजदूरों के हड्ताल की सहायता करनेवाला अकपट,- आशिक्षित लेकिन आदर्श पर अडिग दादा, मार्क्स वाद पर आस्था रखनेवाला राबर्ट, । अप्रत्याशित रूप से क्रांतिकारी दलों की सहायता करने केलिए *अदि* मज़बूर होनेवाली यशोधरा आदि उपन्यास के सशक्त पात्र है ।

मिल मज़दूरों की जीत और हरीश और अख्तर को फाँसी की सज़ा दोनों घटनायें एक साथ होती हैं । इन दो घटनाओं के द्वारा यशपाल जी अर्थ का महत्व एवं क्रांतिकारी दलों के आत्म समर्पण की भावना पर प्रकाश डालते हैं । हरीश से प्रेम करने वाली शैलबाला उससे गर्भिणी बन जाती है, इसलिए उसका, घर से बहिष्कार हो जाता है । वह क्रांतिकारी हरीश की पत्नी एवं बच्चे की माता बन जाती है । यह तो समाज की दृष्टि में अनैतिक बात है । लेकिन शैलबाला इस से संतुष्ट है । यहाँ यशपाल जी शैल बाला के माध्यम से वैयक्तिक नैतिकता की व्याख्या करते नज़र आते हैं । यहां शैल बाला का गर्भिणी बन जाना, स्त्री की नैतिकता और क्रांतिकारी की नैतिकता पर सवाल खडा करनेवाली घटना है । परंतु यशपाल जी ने मार्क्स की दृष्टि को अपनाते हुए शारीरिक संबन्ध को एक महज़ आवश्यकता मानी है इसलिए वैधता अवैधता का सवाल नहीं खडा होता ।

'देश द्रोही'के खन्ना को वज़ीरी लोग हडप लेते हैं फलत: डा॰ खन्ना को अपने जीवन में बहुत अधिक परेशानियाँ झेलनी पडती है । वज़ीरों के माध्यम से खन्ना का धर्म परिवर्तन हो जाता है । इस उपन्यास में लेखक ने विविध रूप वाली स्त्रियों का चित्रण प्रस्तुत किया है । इब्बा, नूरन आदि वासना की पुतलियाँ, पति की काम पिपासा बुझाना ही केवल स्त्री का धर्म समझनेवाली अफगानिस्तानी लडकी नर्गीस, स्वालंबन का जीवन बितानेवाली गुलशाँ, दातुन जैसी सोवियत नारियाँ, घर के चहार दीवारी के अंदर बन्द भारतीय नारी चंदा आदि के माध्यम से यशपाल जी ने विविध देशों की नारियों की मनोवृत्तियों का परिचय दिया है ।

खन्ना की पत्नी राज, खन्ना की मृत्यु की जानकारी प्राप्त होते ही अफीम खाकर आत्महत्या करने की कोशिश करती है । वही नारी बद्रीबाबु के आकर्षण में पडकर उससे विवाह संबन्ध जोडती है । खन्ना जब घर वापस आता है तब पता चलता है कि उसकी पत्नी राज बद्री बाबु की पत्नी होकर रहती है । राज की बहन चंदा से डा॰खन्ना को स्वांत्वना मिलती है । खन्ना के प्रति चंदा की सहानुभूति के प्रदर्शन से राजाराम का मन शंकाकुल हो जाता है ।

भौतिक प्रधान समाज में वैयक्तिक संबन्ध किस सीमा तक विषैला बन जाता है इसका चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में मिलता है । यशपाल ने पात्रों के बीच के संबन्धों को निर्लिप्त भाव से चित्रित किया है । सामाजिक नैतिकता का पक्ष जो कि व्यक्ति की असहाय स्थिति में सहायता पहुँचाने का उपदेश देता है, बिलकुल क्षीण पड गया है ।

यशपाल जी के उपन्यासों में नैतिक मूल्य

स्त्री पुरुष संबन्धों की नैतिकता

यशपाल जी ने अपने उपन्यासों में स्त्री-पुरुष संबन्धों की नयी व्याख्या प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । स्त्री-पुरुष संबन्धों की संकुचित दृष्टि का परिचय देने के साथ साथ मार्क्सवादी नैतिक दृष्टि का परिचय भी उन्होंने प्रस्तुत किया है । मानवीय संदर्भों से जुडनेवाली परिस्थितियों के आधार पर मार्क्सवादी नैतिकता का सही रूप दिखाने की भी कोशिश की है ।

'मनुष्य के रूप में स्त्री के प्रति विकृत दृष्टि का परिचय पर्याप्त मात्रा में मिलता है । लोग अपनी स्त्री को अपने अधिकार के अन्तर्गत ही रखने का प्रयास करते हैं, लेकिन वे दूसरों की औरतों से वासनामय संबंध जोडना चाहते हैं । "अपनी घर की औरत को सह बाट में किसी से बात करते देख लें तो उसका मूँड काट लें और दूसरों की औरतों से खेलना चाहते हैं"[31] ।

पुरुष स्त्री को अपनी संपत्ति मानते हैं । स्त्रियों के तन और मन पर अपना अधिकार जमाना चाहते हैं । "पुरुष उसी स्त्री को प्यार करना चाहता है, उसी स्त्री केलिए अपना जीवन अर्पण कर देना चाहता है जो संसार में केवल उसी केलिए हो जो केवल उसे ही पहचाने । यही बात पुरुष की दृष्टि में स्त्री का प्रेम है"[32] । प्रेम वैयक्तिक इच्छा के आधार पर पनपता है और फूलता है ।

---

31. मनुष्य के रूप - यशपाल - पृ.19

32. वही - पृ.33

'दादा कामरेड' के राबर्ट की दृष्टि में समाज को अव्यवस्था से बचाने केलिए विवाह का बंधन आवश्यक है । "विवाह एक बंधन है, बन्धन उस समय लागू किया जाता है जब अव्यवस्था का डर होता है[33]।"

'देश द्रोही' में मार्क्सवादी नैतिकता के विरुद्ध समाज में व्याप्त झूठी मान्यताओं की अभिव्यक्ति राजाराम के ज़रिए हुई है । "इन कम्यूनिस्टों के लिए पाप-पुण्य कुछ भी नहीं । जिसको, कोई नाम, धर्म कर्म का न मानना हो वह कम्यूनिस्ट बन जाय । स्त्रियों को तो कम्यूनिस्ट होना अच्छा लगेगा ही. न कोई बंधन, न किसी का डर..... जब जिससे मन बहला उसके साथ चल दिये ।[34]" राजाराम की यह दृष्टि बदलते नारी समूह के प्रति समाज के विद्रोह को सूचित करती है । राजाराम स्त्री को अपने अधिकार के अन्तर्गत सुरक्षित रखना चाहता है । यमुना और चंदा का अकेले बाहर जाना, पुरुषों से बातें करना तक राजाराम की दृष्टि में अनैतिक बातें हो जाती हैं ।

कम्यूनिस्टों की दृष्टि में स्त्री पुरुष के समान अधिकारिणी है । उसे स्वतंत्र होकर अपना काम अपने ऊपर संभालना है । 'देशद्रोही' का खन्ना कहता है "चांद, स्त्री की स्थिति ही समाज में ऐसी है । जब तक उसे जीवन के साधन जुटाने का स्वातंत्र अवसर और अधिकार नहीं, प्रेम और आचार सब पुरुष का खिल्लौना है[35]।

---

33. दादा कामरेड - यशपाल - पृ.100
34. देशद्रोही - यशपाल - पृ.224
35. वही - पृ.225

आर्थिक नैतिकता

धन की लालच और उसको जुटाने की कोशिश में लोग नैतिक मान्यताओं को ठुकराते हैं । धन के लोभ के कारण किसी भी जघन्य अपराध करने केलिए लोग नहीं हिचकते । जीवन और जगत में परिवर्तन लाने में कार्यरत क्रांतिकारी दल भी अर्थ के लोभ से मुक्त नहीं है । "देश द्रोही" उपन्यास का क्रांतिकारी दल अपने केन्द्रीय नेतृत्व केलिए पांच हज़ार रुपये देने केलिए प्रतिज्ञाबद्ध बन जाता है, रुपया प्राप्त करने केलिए क्रांतिकारियों का सरल तरीका है - डाका डालना या चोरी करना । समाज की दृष्टि में ये प्रयत्न अनैतिक कार्य होते हुए भी क्रांतिकारियों की दृष्टि में नैतिक कार्य ही हैं । मज़दूरों की हड़ताल तुड़वाकर रुपये इकट्ठे करने को सलाह बी•एम• दादा को देता है । उसकी यह सलाह क्रांतिकारियों के कलुषित व्यक्तित्व का परिचय देता है । वे क्रांति इसलिए करना चाहते हैं कि देश में मजदूरों का शासन हो, शोषण का अंत हो । मज़दूरों के हड़ताल तुड़वाना प्रत्यक्ष रूप से पूंजीपतियों के हाथ के खिल्लौना बनना है। "दादा रुपये केलिए एक तरीका हो सकता है । पांच हज़ार तक हमें आसानी से मिल सकेगी, यदि हम यहां की हड़ताल तुड़वाने में थोडी मदद कर सकें ।"[36]

पूंजीवादी सामाजिकव्यवस्था में धन की प्रमुखता है धन के आगे, आचार-विचार स्त्री पुरुष संबन्धी नैतिक मूल्य सब सर झुकाते हैं । "पूंजीवाद में आचार कुछ नहीं उसका आधार केवल धन का सम्मान है[37]।" नैतिकता और अर्थ के बीच के संबन्धों की व्याख्या करते हुए यशपाल ने यह स्थापित किया है कि पूंजीवादी समाज में अर्थ ही एक ऐसा सत्य है जो समूची

36• दादा कामरेड - पृ•159

37• पार्टी कमरेड - पृ• 23

नैतिकता को अपने चंगुल में फंसा सकता है । सामंतीय सभ्यता में नैतिकता का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं हो सकता क्योंकि पूंजीवादी समाज का ढांचा ही अर्थ पर आधारित है ।

उग्र के उपन्यासों में नैतिक मूल्य

उग्र जी प्रेमचंद युग के सशक्त कथाकार रहे हैं । "उग्रजी के उपन्यासों में भारतीय समाज के भीतर छिपी हुई घृणित वृत्तियों, मदिरालयों आदि की सच्चाई की प्रमुखता रहती है । कथ्य की दृष्टि से उग्र जी के उपन्यासों का भी वही विषय है जो प्रसाद के कंकाल तथा प्रेमचंद के सेवा-सदन का है । धर्म की अधोगति और धर्म की आड में होनेवाले घोर पाखंड तथा निरीह स्त्रियों के प्रति किये जानेवाले अमानुषिक अत्याचार" उपन्यास में स्थान पाते हैं ।[38]

उपर्युक्त कथन के आलोक में यह तो स्पष्ट हो जाता है कि उग्रजी की दृष्टि सुधारवादी रही है । उन्होंने अपने उपन्यासों के ज़रिए समाज के भीतर छिपी, पाशविक मनोवृत्तियों को प्रकाश में लाने का प्रयास किया है । उनके उपन्यास, 'चंद हसीनों के खतूत,' 'सरकार तुम्हारी आंखों में,' 'शराबी,' 'जीजीजी' आदि में उनकी सुधारवादी दृष्टि की झलक मिल जाती है तथा समाज का यथातथ्य चित्रण भी ।

उग्र ने अपनी रचनाओं में यद्यपि प्रमुख रूप से नैतिकता की समस्या को नहीं उठाया है , फिर भी समसामयिकता की दृष्टि से नैतिकता की समस्या स्वयमेव उनके उपन्यासों में स्थान पा गयी है । परन्तु नैतिकता के प्रति उनका जो दृष्टिकोण है, वह तत्कालीन परिस्थितियों से और सामाजिक मान्यताओं से पूर्णत: प्रभावित है ।

---

38. हिन्दी कथा साहित्य - गंगाप्र साद पाण्डेय - पृ.148

उग्रजी का चंद हसीनों का खुतूत प्रेम की महत्ता को अंकित करता है और हिन्दू मुस्लीम वैमनस्य को मिटाने की कोशिश भी करता नज़र आता है । नरगिस और मुरारिकृष्ण के प्रेम तो दिव्य था । दो विभिन्न धार्मिक मतावलंबी होने के कारण उनका प्रेम सफल नहीं हो पाया । हिन्दू युवा से विवाह करना इस्लाम धर्मानुयायियों केलिए अनैतिकता की बात थी । इसलिए नरगिस का प्रेम, मुरारि के बलिदान में परिणत हो गया । साम्प्रदायिकता की आग को भड़काने वाले याकूब जैसे व्यक्तियों का चित्रण करके लेखक ने विभिन्न धर्मानुयायियों के बीच द्वेष की भावना को फैलानेवालों की संकुचित दृष्टि का परिचय दिया है ।

नरगिस और मुरारिकृष्ण का प्रेम वैयक्तिक आकर्षणों के कारण ही हुआ था । उपन्यास यह सिद्ध करता है कि प्रेम एक वैयक्तिक विषय है और इस पर धर्म का अंकुश नहीं होना चाहिए । उग्र के अनुसार प्रेम वैयक्तिक इच्छाओं पर आधारित होकर विकसित होता है। जब वैयक्तिक इच्छायें समाज की निर्धारित रीतियों से मेल नहीं खाती तब संघर्ष शुरू होने लगता है । यहाँ वैयक्तिक नैतिकता सामाजिक नैतिकता से टक्कर लेती है ।

"सरकार तुम्हारी आंखों में" उपन्यास के आमुख में इसके कथ्य के संबन्ध में एक वक्तव्य दिया गया है जो उग्रजी की सुधारवादी दृष्टि का परिचायक है - गलत शिक्षा दीक्षा, गलत सलाहकार वज़ीरों के प्रभाव में धरमपुर के सूर्यवंशी महाराज मदन सिंह विलासिता के सरोवर में डुबकियां लेना अपना अधिकार मानते थे । आखिर यही रास्ता उन्हें सर्वनाश की ओर ले गया[38] ।

---

38. हिन्दी कथा साहित्य - गंगाप्रसाद पाण्डेय - पृ.150

सूर्य वंशी महाराज मदनसिंह के माध्यम से सामंतीय नैतिकता की व्याख्या उपन्यासकार करते हैं । महाराजा और अन्य सामंत नारी को भोग और विलास की वस्तु समझते हैं । अनेक नारियों का रस चूसकर राजा मदन सिंह बिलासमय जीवन बिताता है । आखिर राजा के चंगुल में फिरोसी नामक लड़की आ जाती है । फिरोसी का रस पान करने केलिए राजा कोशिश करता है । इस प्रयत्न में असफल राजा मदनसिंह के सामने रहस्य खुल जाता है कि फिरोसी उनकी ही पुत्री है । आत्मजा से बलात्कार के पाप से भयभीत सूर्यवंशी महाराजा आत्महत्या कर लेता है । यहां उग्र जी राजा की दो भिन्न मनोवृत्तियों की अभिव्यक्ति करते हैं । राजा मदन सिंह के सामंतीय रूप और वैयक्तिक रूप यहां पर प्रकट होने लगते हैं । सामंतीय नैतिकता का विश्लेषण करने से यह बात प्रकट हो जाती है कि स्त्री राजा के भोग की वस्तु है ।इसलिएअनैतिकता का आरोप करना समसामयिक दृष्टि से सार्थक है । लेकिन सामंत कालीन भारत में यह बात अनैतिक नहीं मानी जाती थी । अपनी ही बेटी से बलात्कार करने का जो प्रयास राजाके द्वारा किया जाता है । वह राजा की आत्महत्या में परिणत हो जाता है ।

इस उपन्यास में उपन्यासकार ने सामंतीय नैतिकता का स्वरूप निर्धारित करके यह दिखाया है कि राजा, महाराजाओं की नैतिकता का जन साधारण की नैतिक विचारधारा से कोई मेल नहीं हो पाता ।

'जीजीजी' उपन्यास अनमेल विवाद की समस्या को प्रस्तुत करता है । अत्यंत गुणी औरत प्रभा (जीजीजी) का विवाह दीनानाथ नामक वेश्या गामी लंपट व्यक्ति से होता है । इससे प्रभा का रूप और रंग बदल जाता है । दीनानाथ के अत्याचारों से पीड़ित प्रभा पतिपरायणा नारी के रूप में जीवन बिताती है और कभी न विद्रोह करती दिखाई देती है । जीजीजी अपने आदर्श जीवन के द्वारा समाज की पुरानी मान्यताओं की अभिव्यक्ति देती है ।

यहाँ स्त्री-पुरुष के संबन्धों की व्याख्या करने वाले लेखक समाज द्वारा निर्धारित पुरुष और स्त्री की नैतिकता की अलग अलग मान्यताओं पर परोक्ष रूप से संकेत करते हैं और वेश्यावृत्ति की गंदगी को भी उभारकर रखते हैं ।

शराब जैसे मादक द्रव्यों के प्रयोग से व्यक्ति कितना पतित बनता है । इसका उत्तम उदाहरण प्रस्तुत करता है उग्रजी का शराबी । वेश्यालय और मदिरालय की विषाक्त भूमि के वर्णन के द्वारा उग्र जी ने अनैतिकता की पृष्ठभूमि का परिचय पर्याप्त मात्रा में दिया है ।

पारसनाथ की कुलीनता एवं संपन्नता शराब के प्रभाव स्वरूप नष्ट हो जाती है । फलस्वरूप उसकी एकमात्र लड़की जवाहर को रोटी कमाने केलिए अन्य घरों में नौकरी करनी पड़ी है । शराबी नाम से कुख्यात पारसनाथ की लड़की को पति मिलना दूभर हो जाता है । मतिभ्रष्ट पारसनाथ अपनी पुत्री पर झूठे कलंक का आरोपकरता है । इस आरोप से विवश होकर जवाहर घर से भाग जाती है । अंत में उसको वेश्या बननी पड़ती है । मनिक और हीरा आपस में प्रेम करते हैं । हीरा का विवाह हो जाने पर मनिक का कायापलट हो जाता है । वह भी पथभ्रष्ट हो जाता है । मनिक वेश्या जवाहर को अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार करता है । इस उपन्यास में शराब और वेश्यावृत्ति से उत्पन्न अनैतिक स्थितियों को उग्रजी ने प्रस्तुत करने की कोशिश की है । शराब और वेश्या जीवन को कैसे अनैतिक बनाते हैं, आर्थिक एवं सामाजिक दबाव किस तरह से स्त्री को अनैतिक जीवन बिताने केलिए बाध्य करते हैं । इसी का उदाहरण प्रस्तुत उपन्यास में मिलता है । उसी तरह वेश्या के उद्धार का कार्य यद्यपि नैतिक है फिर भी समाज वेश्या को पत्नी बनाना अनैतिक ही मानता है या कम से कम उसको महनीय नहीं समझता ।

COCHIN UNIVERSITY LIBRARY

इस प्रकार एक सीमा तक उग्रजी ने अपने उपन्यासों में नैतिक समस्याओं का उद्घाटन किया है और उनके विविध पहलुओं पर प्रकाश डाला है । लेकिन उग्र जी का विश्लेषण समसामयिक सामाजिक मान्यताओं से इतना प्रभावित है कि उसमें कोई क्रांतिकारी स्वरूप नहीं दिखाई पड़ता । यथार्थ की पृष्ठभूमि में नैतिकता से संबन्धित समस्याओं को खड़ा कर देना उग्र जी का लक्ष्य लगता है । फिर भी पचास के पूर्व की नैतिक मान्यताओं का स्वरूप एक सीमा तक उग्रजी के उपन्यासों में प्रभावात्मक रूप से विद्यमान है ।

भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में नैतिकमूल्य

भगवतीचरण वर्मा के प्रारंभिक उपन्यासों में (तीन वर्ष, टेढ़े मेढ़े रास्ते में) किसी विशेष नैतिक समस्या को उद्घाटित करने का प्रयास नहीं मिलता है । लेकिन उनका उपन्यास 'चित्रलेखा' नैतिकता की समस्या पर सैद्धान्तिक रूप में विचार करता है । 'चित्र लेखा' में भगवतीचरण वर्मा ने पाप और पुण्य की समस्या को व्याख्यायित करने का प्रयास किया है । भगवतीचरण वर्मा की दृष्टि में पाप और पुण्य नामक कोई वस्तु ही नहीं वह केवल मनुष्य की विषमता का दूसरा नाम है । मनुष्य पाप या पुण्य नहीं करते, वे वही करते हैं जो उनको करना पड़ता है ।

उपन्यास के इस मूल मंत्र को कुमारगिरि, बीजगुप्त के द्वारा अभिव्यक्त करने का प्रयत्न लेखक ने किया है । रत्नाम्बर अपने दो शिष्यों विशाल देव और श्वेतांक को पाप और पुण्य की अलग अलग मान्यताओं से अवगत कराने केलिए योगी कुमार गिरि एवं सामंत बीज गुप्त के पास भेजता है । कुमारगिरि और बीजगुप्त के जीवन अलग अलग दृष्टिकोणों को लेकर चलते हैं । कुमारगिरि अलौकिक सत्ता की साधना में मग्न रहता है

तो बीजगुप्त लौकिक सुखों के पीछे भागता रहता है । राजनर्तकी चित्र-लेखा बीजगुप्त से प्रेम करती है । बाद में कुमारगिरि के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर वह कुमार गिरि से भी प्रेम करने लगती है । लौकिक सुखों को नगण्य समझने वाले कुमार गिरि का संयम धीरे धीरे टूटने लगता है । और एक दिन अपनी साधना को छोड़कर वह वासना को ग्रहण करता है । फलत: वह योगी से भोगी बन जाता है । बीजगुप्त से यशोधरा प्रेम करने लगती है । चित्रलेखा के प्रेम से वंचित बीजगुप्त अपने सेवक श्वेतांक को अपनी संपत्ति और अपनी प्रेमिका यशोधरा को छोड़कर सन्यासी का जीवन बिताने लगता है । उधर चित्रलेखा कुमारगिरि से अलग होकर बीजगुप्त में अपनी रक्षा स्थान पाने की कोशिश करती है । फलस्वरूप बीजगुप्त एवं चित्रलेखा भिखारी एवं भिखारिणी के रूप में खुलेभुवन में यात्रा करने केलिए तैयार हो जाते हैं ।

एक वर्ष बाद श्वेतांक और विशाल देव से रत्नाम्बर पूछते हैं कि बीज गुप्त और कुमार गिरि में कौन पापी है । उत्तर तो भिन्न थे, विशालदेव कुमारगिरि को श्रेष्ठ समझता है तो श्वेतांक बीजगुप्त को त्याग की प्रतिमूर्ति समझता है। योग से भोग की ओर की यात्रा दरअसल पाप है इसलिए अनैतिक कहलाया जा सकता है । लेकिन भोग से योग की ओर मुडना पुण्य है इसलिए नैतिक कार्य बन जाता है ।

ब्रह्मचारी श्वेतांक का जीवन भी योग से भोग की ओर की यात्रा है । वह मदिरापान करता है, चित्रलेखा से प्रेम करता है । चित्र लेखा का चरित्र भी पाप और पुण्य की समस्या को व्यक्त करता है । वह राजनर्तकी है इसलिए अनेक पुरुषों से उसका मिलन और बिछुडन तो बिलकुल स्वाभाविक है । इस दृष्टि से चित्रलेखा के क्रियाकलापों में अनैतिकता का आरोप करना गलत है । राजनर्तकी के जीवन से मुक्त होकर, सब सुख वैभवों को छोड़कर भिखारिणी बन जाना तो नैतिक कार्य ही बन जाता है ।

भावतीचरण वर्मा ने उपर्युक्त पात्रों के माध्यम से पाप और पुण्य की अभिव्यक्ति की है । श्वेतांक और विशालदेव की अलग अलग मान्यताओं के आधार पर यह तो निर्विवादवाद सत्य बन जाता है कि नैतिकता की व्याख्या करना बहुत ही कठिन कार्य है । पाप और पुण्य, अनैतिकता और नैतिकता केलिए कोई निश्चित मान्यता कायम नहीं की जा सकती ।

परिस्थितियों की विवशता के कारण ही लोग पाप या पुण्य करते हैं, अपनी इच्छा से नहीं "हम न पाप करते हैं और न पुण्य करते हैं हम केवल वह करते हैं जो हमें करना पड़ता है[40]।" पाप और पुण्य की धारणा को और भी स्पष्ट करने की कोशिश उन्होंने की है[41]। संसार में पाप कुछ भी नहीं है वह केवल मनुष्य के दृष्टिकोण की विषमता का दूसरा नाम है मनुष्य परिस्थितियों का दास है - विवश है वह कर्ता नहीं है । वह केवल साधन है फिर पुण्य और पाप कैसा[42]।"

पुण्य या अच्छा शब्द समाज सापेक्ष हैं । इसलिए समाज की दृष्टि में जो कार्य अच्छा माना जाता है, वह कार्य नैतिक बन जाता है । इसलिए दूसरों की दृष्टि में जो बात अच्छी है, वह, व्यक्ति केलिए अच्छी बात बन जाती है । "अच्छी वस्तु वही है जो तुम्हारे वास्ते अच्छी होने के साथ ही दूसरों के वास्ते भी अच्छी हो[42]।" कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि चित्रलेखा उपन्यास में पाप और पुण्य की, उचित और अनुचित की व्याख्या परिलक्षित होती है । भोग मय जीवन, बितानेवाली चित्रलेखा, योग से भोग की ओर चले जानेवाले कुमार गिरि जैसे योगी, वासना मय जीवन से परमात्मा की साधना की ओर उन्मुख होनेवाले बीज गुप्त, ब्रह्मचारी जीवन से गृहस्थाश्रम में चले जाने वाले श्वेतांक के ज़रिए भावती चरण वर्मा जी ने पाप और पुण्य की दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत की है ।

---

40. चित्रलेखा - भावतीचरण वर्मा - पृ.177
41. वही - पृ.177
42. वही - पृ. 14

इस उपन्यास में नैतिक मान्यतायें पाप और पुण्य के आधार पर आँकी गयी हैं । वैसे सांसारिकता और आध्यात्मिकता के बीच जो टक्कर होती है, उसीको चित्रलेखा उपन्यास प्रस्तुत करता है । नैतिकता का स्वरूप बदलती दृष्टियों के आधार पर परिवर्तित होता दिखाया ह गया है । भोग और योग के बीच मनमाना खेल खेलनेवाली चित्रलेखा नैतिकता के पहिये को चालित करती दिखाई पड़ती है । वैसे पन्चास के पूर्व लिखे गये उपन्यासों में भोग और सामाजिक नैतिकता को पाप और पुण्य से जोड़कर देखने का सबसे श्रेष्ठ प्रयास इस उपन्यास में परिलक्षित होता है ।

'तीन वर्ष' उपन्यास में धन का महत्व एवं स्त्री पुरुष संबन्धों के आर्थिक आधार को व्यक्त करने का प्रयास मिल जाता है । समाज में स्त्रियाँ अपनी इच्छा से वेश्या नहीं बनती हैं । दरअसल सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों के कारण ही स्त्रियों को वेश्या बननी पड़ती है । अर्थ का अभाव और जीने की लालसा के कारण वेश्या बननेवाली नारी समाज की दृष्टि में घोर पापी बन जाती है । अर्थ के लोभ मात्र से विवाह बंधन को एक आर्थिक समझौता मात्र समझने वाली नारी अपना तन तो पैसे के बदले देती है, लेकिन मन नहीं देती । उपन्यासकार ने प्रभा के माध्यम से स्त्री की इस मनस्थिति का वर्णन किया है । धनाभाव के कारण प्रभा रमेश के प्रेम को ठुकराती है । रमेश उसकी इस मनोवृत्ति के संबन्ध में टिप्पणी देता है । "प्रत्येक संबन्ध में लेन देन का व्यवहार है। स्त्री पुरुष से उसका धन चाहती है और पुरुष उसे धन देता है । सुख देता है अपने धन के बदले पुरुष उसकी श्रद्धा, उसकी शक्ति .... पाने की आशा करता है । लेकिन प्रभा तुम लेने को तैयार हो देना तुम नहीं चाहती तुम पुरुष का धन लेती हो पुरुष को अपना शरीर देने के बदले में । है न ऐसी बात और यह वेश्यावृत्ति है ।[43]

---

43. तीन वर्ष - भगवती चरण वर्मा - पृ.255

समाज में ऐसे विवाह तो हो जाते हैं जहाँ स्त्री पुरुष से एक निष्ठ प्रेम नहीं करती । केवल अपने तन को विवाह में समर्पित करनेवाली नारी दर असल धन के बदले शरीर देनेवाली वेश्या जैसी बन जाती है ।

'तीन वर्ष' उपन्यास में भगवतीचरण वर्मा ने अच्छे और बुरे की भावनाओं की विभिन्नता की व्याख्या प्रस्तुत की है । "हमारे वास्ते वह बात बुरी है जिसे हम नापसंद करते हैं, और एक बात जिसे एक व्यक्ति नापसंद करता है, हम देखते हैं, दूसरा व्यक्ति उसी को पसंद करता है । इसलिए किसी भी बात को बुरा कहना गलत है"[44] । इसका अर्थ यह होता है कि नैतिकता और अनैतिकता के बीच सीमा रेखा खींचना अत्यंत दुष्कर कार्य ही है ।

'टेढ़ेमेढ़े रास्ते' में भगवतीचरण वर्मा ने किसी नैतिक समस्या को उठाया नहीं है। लगता है कि उनकी दृष्टि भारतीय राजनीतिक क्षेत्र के विविध वादों की टकराहट एवं भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के वर्णन पर अधिक लगी है ।

प्रेमचन्द के उपन्यासों की नैतिक भावभूमि

प्रेमचंद ने मानव जीवन के विभिन्न व्यापारों की व्याख्या अपने उपन्यासों में प्रस्तुत की है । पतितों की कथा कहकर, उनकी समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करके प्रेमचंद ने औपन्यासिक जगत में जिस आदर्शात्मक रूप को प्रतिष्ठित किया वह पच्चास के पूर्व के उपन्यास क्षेत्र की एक विशिष्ट घटना थी । उन्होंने अपने उपन्यासों के माध्यम से सुधारवादी

---

43. तीन वर्ष - भगवतीचरण वर्मा - पृ.255

44. वही - पृ.37

आन्दोलन का सुत्रपात किया । इसलिए प्रेमचंद के उपन्यासों में विभिन्न सामाजिक समस्याओं की अभिव्यक्ति मिलती है । उनके सारे के सारे उपन्यासों में पीड़ित नारी की समस्यायें, सामाजिक शोषण की स्थितियाँ और उससे मुक्ति पाने की सूक्तियाँ यथेष्ट मात्रा में मिलती हैं ।

'प्रतिज्ञा' में विधवा विवाह की, 'सेवासदन' में दहेज प्रथा एवं अनमेल विवाह की, 'निर्मला' और 'गबन' में स्त्रियों के आभूषण प्रेम एवं दिखावे की भावना की, अभिव्यक्ति मिलती है तो 'रंगभूमि', 'कायाकल्प' और 'कर्म भूमि' में गांधीवादी दर्शन का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है । प्रेमचंद का अंतिम लेकिन श्रेष्ठ उपन्यास 'गोदान' में प्रेमचंद ने अर्थ की असामानता, आर्थिक शोषण, तज्जन्य कृषकों की समस्याओं को समाज के सामने पेश किया है साथ ही साथ आर्थिक विषमता से उत्पन्न अनैतिकता का भी दर्दनाक चित्रण प्रस्तुत किया है ।

अमृतराय और दीनानाथ के माध्यम से प्रेमचंद ने अपने उपन्यास प्रेमा में विधवा विवाह की समस्या को उठाया है । अमृतराय विधुर है, वह अत्यंत सदाचारी एवं संपन्न व्यक्ति है । इस कारण बदरीनाथ अपनी दूसरी पुत्री प्रेमा से अमृतराय का विवाह करना चाहता है । अमृतराय भी प्रेमा को अपनी पत्नी बनाना चाहता है । लेकिन पंडित अमरनाथ के व्याख्यान के प्रभाव स्वरूप वह कभी न विवाह करने का, देश की सेवा करने का निर्णय कर लेता है ।

प्रेमा का विवाह अमृत राय के दोस्त दीनानाथ से हो जाता है । दानानाथ का मन प्रेमा को चाहता है फिर भी वह प्रेमा को अमृतराय की प्रेमिका समझता है । ईर्ष्यावश दानानाथ अमृतराय के सामाजिक सुधार के प्रयत्नों के विरोध में काम करता है । इस प्रयास में प्रेमा के लम्बट भाई कमला प्रसाद की सहायता भी उसे मिलती है कमलाप्रसाद के यहाँ पूर्णा

नामक विधवा नारी को आश्रय मिलता है । काम से पीड़ित कमलाप्रसाद पूर्णा से बलात्कार करने का प्रयास करता है । पूर्णा अमृतराय के विधवाश्रम में शरण पाती है । पूर्णा के साथ बलात्कार करने के प्रयास में कमलाप्रसाद घायल हो जाता है । कमलाप्रसाद के घायल होने की घटना के संबन्ध में समाज में अफवाहें फैल जाती हैं । फलत: कमलाप्रसाद का स्वभाव परिवर्तित हो जाता है । कमला प्रसाद और पत्नी सुमित्रा के दाम्पत्य जीवन में सुख एवं शांति के वातावरण का निर्माण होता है । दीनानाथ और अमृतराय के बीच में व्याप्त वैमनस्य की भावना नष्ट हो जाती है ।

इस उपन्यास में प्रेमचंद ने विधवा समस्या को ऊपर उठाया है । विधवा नारी पूर्णा का जीवन कितनी बुरी परिस्थितियों के भंवर में डावांडोल हो जाता है, कैसे वह कामुक मनोवृत्तिवाले कमलाप्रसाद जैसे लम्पटों के हाथों का खिल्लौना बन जाती है ; इसका सटीक वर्णन प्रेमचंद ने किया है और अमृतराय के द्वारा विधवाश्रम की स्थापना कराके विधवा समस्या को सुलझाने का प्रयत्न भी किया है । स्त्री पुरुष संबन्धों की व्याख्या करनेवाले प्रेमचंद स्त्री पर होनेवाले अनैतिक व्यवहारों का दायित्व पुरुष पर ही रखते हैं । पुरुष की कामुकता की शिकार बननेवाली स्त्री के प्रति परंपरागत दृष्टि से प्रेमचन्द ने सहानुभूति दिखाई है ।

'वरदान' में प्रतापचंद एवं विरजन की कथा अंकित है । प्रताप चंद का जन्म एक भरे पूरे परिवार में संपन्न होता है । पिता की मृत्यु हो जाने से उसे अपनी माता की छाया में जीवन बिताना पड़ता है । ठेके का काम करनेवाले संजीवनलाल की पुत्री विरजन प्रताप की प्रेमिका बन जाती है । वर्षों के बीत जाने पर डिप्टी साहब श्यामचरण के पुत्र कमलाचरण से विरजन का विवाह संपन्न हो जाता है । इस विवाह के फल स्वरूप प्रतापचंद की दृष्टि बदल जाती है । वह विरजन की चिंता से विमुख होकर, देश सेवा के मार्ग पर प्रवृत्त होता है, सन्यासी बन जाता है । विरजन जैसी अच्छी

लड़की के साथ कमलाचरण का विवाह हो जाने पर कमलाचरण की कुत्सित मनोवृत्तियाँ कहीं गायब हो जाती है। वही कमलाचरण प्रयाग जाकर अपनी बुरी मनोवृत्तिका पुन: परिचय देता है और इस प्रयत्न में उसकी मृत्यु भी हो जाती है। पति की मृत्यु से गृह सुख से वंचिता विरजन कवयित्री बनकर समाज में मशहूर हो जाती है। विरजन कमलाचरण की विवाहिता स्त्री होकर भी अपना बाल प्रेमी प्रताप से प्रेम करती है और अपनी सहेली माधवी को प्रताप की ओर आकर्षित करने की चेष्टा करती है। लेकिन उस प्रयत्न में उसे असफलता मिलती है। प्रताप से प्रेम करनेवाली माधवी भी योगिनी बन जाती है।

अनमेल विवाह से उत्पन्न सामाजिक समस्याओं को चित्रित करने के साथ ही साथ कमलाचरण जैसे पात्र के अनैतिक जीवन और उसके दुखद परिणाम की ओर भी लेखक ने संकेत किया है। कामुक मनोवृत्ति के कारण जन्म लेनेवाली अनैतिकता व्यक्ति को मृत्यु की गोद में ले जाती है। उपन्यासकार ने इस तथ्य को एक चेतावनी के रूप में उभारा है।

'सेवासदन' भी प्रेमचंद की सुधारवादी दृष्टि का परिचय देनेवाला उपन्यास है। उपन्यास की नायिका सुमन के माध्यम से प्रेमचंद ने वेश्या जीवन की बुराईओं को समाज के सामने प्रस्तुत करके उसका हल भी प्रस्तुत किया है। सुमन दारोगा कृष्णचंद्र की पुत्री है। दारोगा कृष्ण चंद्र परिस्थिति से मज़बूर होकर रिश्वत लेता है और उसको काम से हाथ धोना पड़ता है। इस कारण सुमन का विवाह गजाधर नामक गरीब व्यक्ति से हो जाता है। लेकिन निर्धन गजाधर सुमन की आकांक्षाओं की पूर्ति करने में असफल रहता है। सुमन का सौन्दर्य एवं उसकी अभिलाषायें गजाधर के दाम्पत्य जीवन में अड़चनें पैदा कर देती हैं। शंकालु गजाधर सुमन को अपने घर से बहिष्कृत करता है। सुमन पद्मसिंह एवं सुभद्रा के यहाँ शरण पाती है। लेकिन पद्मसिंह को बदनामी से बचाने केलिए सुमन पद्मसिंह के घर को भी छोड़ देती है।

भोली नामक वेश्या का रहन-सहन, आडंबर पर सुमन पहले से भी मोहित थी । फलत: सुमन वेश्याओं के विलासमय जीवन के प्रति आकर्षित हो जाती है । वह वेश्या बनने को तैयार हो जाती है । सदनसिंह जिसका चाचा पद्मसिंह है, सुमन के प्रति आकर्षित हो जाता है । दारोगा कृष्ण चंद्र की पत्नी गंगाजली के भाई उमानाथ शांता का विवाह सदन से कराने की कोशिश करता है । शांता पर वेश्या सुमन की बहन होने का लांछन लगाकर सदनसिंह के लोग गाँव चले जाते हैं । सुमन और पद्मसिंह की प्रेरणा से सदन शांता को स्वीकार करता है । इधर गजाधर गोष्ठियों की सहायता करनेवाला सन्यासी बन जाता है । अंत में सुमन गजाधर के आश्रम में चली जाती है, सेवा सदन की स्थापना होती है ।

इस उपन्यास में प्रेमचंद ने वेश्या समस्या की जड तक का विश्लेषण करके सेवासदन के माध्यम से उस समस्या को सुलझाने का सुझाव भी प्रस्तुत किया है । आज भी भारतीय समाज में वेश्या जीवन की समस्या एक ज्वलंत समस्या बनी हुई है । समाज में वेश्याओं को एक सीमा तक ऊंचा स्थान भी प्राप्त है । भारतीय समाज में कुछ लोग एक ओर वेश्याओं के प्रति अपने कटु वचन बिखेरते रहते हैं तो दूसरी ओर उनका मान और सम्मान भी करते हैं । विवाह जैसे मांगलिक अवसरों पर वेश्याओं का गान एवं विलासमय नृत्य तो होता रहता है । मंदिर जैसे पवित्र स्थानों में भी वेश्या अवश्य वस्तु है । मंदिर में भी उसका तिरस्कार नहीं होता ।

प्रेमचंद ने वेश्यावृत्ति और नैतिकता के बीच के संबन्धों को यद्यपि उजागर नहीं किया है । फिर भी प्रासंगिक रूप में उसपर विचार करने केलिए वे बाध्य हो जाते हैं । हर समाज में वेश्या का जीवन अनैतिक ही माना जाता है । क्योंकि वेश्या, समाज द्वारा निर्धारित वैयक्तिक एवं सामाजिक नैतिकता को चुनौती देती है । सेवा सदन जैसे उपन्यास में नैतिक

प्रमुख नहीं है । परन्तु उससे जुडी हुई वेश्यावृत्ति का परिणाम प्रमुख होकर आता है । अप्रस्तुत रूप में वैयक्तिक नैतिकता की महत्ता पर प्रेमचंद जोर देते हैं और इस दृष्टि से नैतिकता की परंपरावादी व्याख्या को माननीय समझते हैं ।

'प्रेमाश्रम' से लेकर गोदान तक के उपन्यासों में नैतिकता की चर्चा बहुत ही विरले ही मिलती है । उनके उपन्यासों में आनुषंगिक रूप से नैतिकता, सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों से जुडी हुई एक विशेष भावना ही परिलक्षित होती है ।

'प्रेमाश्रम' में प्रेमचंद ने पैशाची व्यक्तित्ववाला जमीन्दार ज्ञान शंकर का अंकन करके उनके जीवन के नैतिक पतन को स्वर दिया है । ज्ञान शंकर की कामुक मनोवृत्ति और धन लिप्सा के परिणाम स्वरूप घर के और गांव के लोगों को बहुत अधिक परेशानियां उठानी पडती है । वस्तुत: प्रेमचंद ने ज्ञानशंकर के माध्यम से असामाजिक कार्य करनेवाले व्यक्तियों का चित्रण करने के साथ काश्तकारों की जिन्दगी की विवशता की अभिव्यक्ति भी की भी प्रस्तुत की है । 'निर्मला' में आकर प्रेमचंद ने अनमेल विवाह की समस्या एवं दहेजप्रथा को ऊपर उठाकर, इससे जन्मी सामाजिक विसंगतियों का चित्रण किया है । यहां पत्नी के सौन्दर्य पर शंकालु बूढ़े पति तोताराम का चित्रण करके प्रेमचंद ने मानसिक एकता एवं पारस्परिक विश्वास को विवाह का सूत्र माना है । 'कायाकल्प' में सामंत कालीन नैतिकता को प्रेमचंद ने वाणी दी है । नये नये भोग विलास की सामग्रियाँ इकट्ठा करने में तन्मय राजविलास सिंह आधुनिक पूंजीपति वर्ग का प्रतीक बन गया है । 'रंगभूमि' के सूरदास अपने गांव में औद्योगिक सभ्यता के विषैले वातावरण का फैलाव नहीं देखना चाहता । औद्योगिक सभ्यता के विकास के साथ लोगों की धार्मिक भावनायें नष्ट हो जाने की, गांव की स्त्रियों की वेश्यायें बन जाने की, शराब की दूकानें की खुल जाने की संभावना सूरदास प्रकट करता है

'गबन' में मध्यवर्ग के दिखावे की भावना, स्त्रियों का आभूषण प्रेम एवं पुलिस के अत्याचारों का खुलकर वर्णन प्रेमचंद ने किया है । सरकारी रकम का गबन करने से उपन्यास का रमानाथ एवं जालपा के जीवन में अडचनें पैदा होती हैं । इस तरह आचरण की नैतिकता पर बल देने वाले प्रसंग गबन में उभरकर आने लगते हैं ।

'कर्मभूमि' में आकर प्रेमचंद ने अछूतों की समस्या, कृषकों की समस्या, मंदिर प्रवेश आन्दोलन को अपने उपन्यास का विषय बनाया है । गोरों के अत्याचारों की, समरकांत जैसे साहूकारों की, मनिराम जैसे लंपट व्यक्तियों के जीवन की कथा कहकर अपने जमाने की सामाजिक नैतिकता को व्याख्यायित करने का प्रयास किया है ।

लेकिन 'गोदान' में शहरी जीवन की फैशन की पुतलियों का चित्रण करने के साथ होरी जैसे शोषित कंकाल रूप का चित्रण प्रेमचंद ने किया है । गोबर और झुनिया, ब्राह्मण मातादीन और चमारिन सिलिया का विवाह समाज की बनी बनायी नैतिक संहिता पर कठोर आघात करते दीखते हैं ।

प्रेमचंद के उपन्यासों में नैतिकमूल्य

यद्यपि प्रेमचंद के उपन्यासों में नैतिकता की समस्या एक विशेष प्रवृत्ति के रूप में दिखाई नहीं पड़ती, फिर भी उनके उपन्यासों में नैतिकता की रूपरेखा धार्मिक एवं सामाजिक परिस्थितियों से बंधी हुई दीखती है । अत: हम प्रेमचंद की धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक दृष्टियों का अध्ययन करके उनकी नैतिकता की भावना को ढूँढ निकालने का प्रयत्न करेंगे ।

प्रेमचंद के धर्म की मान्यता उनके उपन्यासों के पात्रों के ज़रिये हमारे सामने जाहिर हो जाती है । प्रेमचन्द धर्म विभेद को नहीं मानते थे । उनकी दृष्टि में धर्म ही नीति है और विभिन्न संप्रदायों की नीति एक जैसी है । "बुरे हिन्दू से अच्छा मुसलमान उतना ही अच्छा है जितना बुरे मुसलमान से अच्छा हिन्दू। देखना यह चाहिए कि वह कैसा आदमी है न कि यह कि किस धर्म का आदमी है"[45] । धर्म के सीमित दायरे में जो व्यक्ति अपने को बन्द करता है, उसका मानस, साम्प्रदायिक जातीय बातों के प्रभाव से कलुषित हो जाता है । धर्म यदि हमारी दृष्टि को संकुचित करता है तो वह रूढ़िगत धर्म बन जाता है । "धर्म हमारी रक्षा और कल्याण केलिए है । अगर वह हमारी आत्मा को शाँति और देह को सुख नहीं प्रदान कर सकता, तो मैं उसे पुराने कोट की भांति उतार फेंकना पसंद करूँगा ।"[46] प्रेमचन्द जी धर्म को जन कल्याण केलिए उपयोगी संस्था ही मानते हैं। जब उसमें रूढ़ियाँ अधिक जन्म होने लगती है तो उस धर्म का तिरस्कार ही समाज केलिए हितकर है ।

दरअसल लोग जिस धर्म का आचरण करते हैं उसमें स्वार्थ की भावना ही अधिक है । 'रंगभूमि' का जान सेवक धर्म के आचरण को भ्रष्ट करने वाली स्वार्थ भावना को व्यक्त करता है - "क्या तुम समझते हो कि मैं और मुझ जैसे और हज़ारों आदमी जो नित्य गिरजे जाते हैं धर्मानुराग में डूबे हुए है । कदापि नहीं धर्म केवल स्वार्थ संगठन है गिरजा न जाने से अपने समाज में अपमान होगा । उसका मेरा व्यवसाय पर बुरा असर पड़ेगा"[47] । कर्मभूमि में प्रेमचंद ने रूढ़िगत धर्म का वर्णन किया है

---

45. कायाकल्प - पृ.166
46. रंगभूमि - पृ. 88
47. वही - पृ. 80

"धर्म है क्या चीज़..... कभी राम का नाम लिया है ज़िन्दगी में, कभी एकादशी या कोई दूसरा व्रत रखा है। कभी कथा पुराण पढ़ते या सुनते हो तुम क्या जानो धर्म किसे कहते हैं[48]। रामा राम का नाम लेना, एकादशी का व्रत रखना, कथा पुराण पढ़ना यही धर्म का आचरण रहे हैं। राम का नाम न लेना, एकादशी का व्रत न रखना, धर्म का विरोध करना है। समाज उस व्यक्ति को असमाजिक कार्य करनेवाले व्यक्ति ही समझेगा। देहाती वातावरण में जीने वाली जनता धर्म को केवल आचार मात्र मानती है।

धर्म का ठीक आचरण कहीं भी नहीं होता। कर्मभूमि में प्रेमचंद ने धर्म के रूप और लक्ष्य का वर्णन किया है। धर्म की दृष्टि संकुचित है। "मैं चोरी करूँ, धोखा दूँ, धर्म मुझे अलग नहीं कर सकता। अछूत के हाथ से पानी पी लूँ धर्म छुमन्तर हो गया। अच्छा धर्म है"। अछूत के हाथ से पानी पीने से धर्मभ्रष्ट हो जायेगा। अछूत से पानी पीना पाप है। समाज अधर्म्य नहीं कर सकता। लेकिन चोरी करने से धर्म भ्रष्ट न हो जायेगा। न चोरी करना पाप है और न धोखा देना पाप है।

धर्म के इस रूढ़िगत रूप की अभिव्यक्ति के साथ प्रेमचंद ने धर्म की नयी व्याख्या प्रस्तुत की है। वर्ण व्यवस्था के अनुसार ब्राह्मण श्रेष्ठ वर्ण है। ब्राह्मण का धर्म बिगड जाना साधारण सी बात नहीं है। गोदान का माता दीन कहता है - मैं ब्राह्मण नहीं चमार ही रहना चाहता हूँ।जो अपना धर्म पाले वही ब्राह्मण है जो धर्म से मुंह मोडे वही चमार है[49]। धर्म एवं नैतिक आचरण के संबन्धों पर इस तरह विचार प्रकट करनेवाले प्रेमचंद ने व्यक्ति के नैतिक आचरण पर ही अधिक ज़ोर दिया है।यही वैयक्तिक नैतिकता ही धार्मिक आचरण के मूल में निहित होती है। जब तक मनुष्य इस बात को नहीं समझता तो धर्म का कोई मूल्य ही नहीं रह जाता।

---

48. कर्म भूमि - पृ. 93

49. गोदान - पृ.330

नारी संबन्धी नैतिकता

प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में नारी के व्यवहार संबन्धी पहलूओं पर प्रकाश डाला है और उसकी नैतिकता के स्वरूप को भी उभारा है । प्रेमचंद का उपन्यास साहित्य असहाय नारी के मानसिक द्वन्द्वों की, उसकी पीडा की मार्मिक अभिव्यक्ति है । निर्मला से लेकर धनिया तक की भारतीय नारी सब कुछ झेलती है, कभी किसी को अनमेल विवाह करना पड्ता है, कभी वेश्या बननी पड्ती है, दहेज न दे सकने के कारण बूढ़े और दुष्ट व्यक्तियों के साथ जीने केलिए मजबूर होनी पड्ती है । लेकिन यह स्मरण करने योग्य है कि प्रेमचंद की पात्राओं ने कभी अपने विश्वास एवं आदर्श को धोखा नहीं दिया है और विवाह के आदर्शमय रूप को निभाया है ।

भारतीय नारी पुरुष के अधीन अपने को धन्य समझती है । लेकिन पुरुष को यह अधिकार प्राप्त है कि पुरुष जो भी चाहे कर सकता है पर वह स्त्री से सतीत्व की कामना करता है । 'कर्मभूमि' में सुखदा शांति कुमार से कहती है, "मैं आप से बेशर्म होकर पूछती हूँ । ऐसे पुरुष को जो स्त्री के प्रति अपना धर्म न समझे क्या अधिकार है कि वह स्त्री से व्रत धारिणी रहने की आशा रखे[50] । सुखदा का यह प्रश्न स्वाधीन नारी का पुरुष निर्धारित नैतिक आचरण संहिता के प्रति विद्रोह है ।

विवाह संबन्धी नैतिकता भी प्रेमचंद की चर्चा का विषय बनी है । विवाह भारत में एक आर्थिक समझौता नहीं है । हमारे यहाँ विवाह को एक प्रकार की आध्यात्मिक गरिमा प्राप्त है । "हमारे यहाँ विवाह का आधार प्रेम और इच्छा पर नहीं । धर्म और कर्तव्य पर रखा गया

---

50. कर्मभूमि - प्रेमचंद - पृ.220

इच्छा चंचल है क्षण क्षण में बदलती रहती है । कर्तव्य स्थायी है, उसमें कभी परिवर्तन नहीं होता[51] । भारतीय समाज में विवाह धर्म का बंधन है ।

निर्मला से लेकर धनिया तक के विवाह प्रेम और इच्छा पर नहीं हुए थे । लेकिन धर्म के नाते हुए थे । निर्मला से धनिया तक की नारियाँ कर्तव्य परायणा हैं, धर्म पर अडिग है । निर्मला पति के विरुद्ध या समाज के विरुद्ध कभी विद्रोह नहीं करती । लेकिन धनिया में आकर प्रेमचंद की नारियाँ समाज के शोषण के विरुद्ध विद्रोह करती दीखती हैं । गोदान की धनिया पतिपरायणा नारी होकर भी सब कुछ सहनेवाली, पति के अधीन सभी समय चुप रहनेवाली नारी नहीं है । जहाँ अधार्मिक कार्य होते हैं वहाँ धनिया ज़रूर विद्रोह करती है ।

वैसे प्रेमचंद ने वैवाहिक समस्याओं और स्त्री-पुरुष संबन्धों की शिथिलता को सामाजिक समस्याओं के अन्दर ही रखा है । उनकी गहराई में नैतिक दृष्टि से प्रवेश करने का प्रयास नहीं किया है । इस कारण मर्यादित स्त्री और मर्यादित पुरुष ही उनके आदर्श बने हैं ।

अर्थ और नैतिकता

प्रेमचंद के सारे के सारे उपन्यासों में अर्थ एवं उससे जन्मी समस्याओं का चित्रण मिलता है । प्रेमचन्द धन को आधुनिक सभ्यता का आधार मानते हैं । 'गोदान में मालती तंखा से कहती है "इस नयी सभ्यता का आधार धन है । विद्या और सेवा, कुल और जाति सब धन के सामने हेय हैं[52] ।"

---

51. कायाकल्प - प्रेमचंद - पृ. 42

52. गोदान - प्रेमचंद - पृ.137

आज न्याय और कानून धन के सामने हाथ बाँधे खडे हैं। "कानून और न्याय उसका है, जिसके पास पैसा है।"[53] धर्मशालायें और पाठशालायें आदि संस्थायें भी धन के बुरे प्रभावों का शिकार बनी हैं। अर्थात् अर्थ ही सभी समस्याओं की जड है। इसलिए समाज के प्रति जागरूक कलाकार के उपन्यासों में इन समस्याओं का चित्रण होना स्वाभाविक है। प्रेमचंद के उपन्यासों में आद्यंत आर्थिक समस्यायें खडी हुई हैं। अर्थ मनुष्य के नैतिक बोध को किस तरह से कलंकित करता है, इसका चित्रण उन्होंने हर कहीं प्रस्तुत भी किया है। इस कारण उपन्यास की गहराई में प्रवेश करने के बाद ही आर्थिक विषमता एवं नैतिक स्खलन का पेचीदा रंग सामने आता है।

राजनीति और नैतिकता

राजनीति की आलोचना प्रेमचंद के उपन्यासों में दिखाई पडती है। गोदान में प्रेमचंद ने भारतीय राजनीति के खोखलेपन को अभिव्यक्ति दी है। राजनीतिज्ञ वादायें तो बहुत अधिक करते हैं, जनता की आवश्यकताओं पर प्रकाश डालते हुए खूब भाषण देते हैं। लेकिन जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति केलिए उतनी कोशिश नहीं करते जितना ज़ोर भाषण देने में वे किया करते हैं। "मुझे अब इस डेमोक्रसी में भक्ति नहीं रही। ज़रा सा काम और महीनों की बहस हो, जनता की आँखों में धूल झोंकने केलिए अच्छा स्वांग है।"[54] लोग कम्यूनिस्टों की तरह बातें करते हैं, ज़ोर से नारा लगाते हैं, लेकिन अपने उद्देश्य केलिए शारीरिक परिश्रम वे नहीं करते। 'गोदान' का रायसाहब इसकी आलोचना करते हुए कहता है।

---

53. गोदान - प्रेमचन्द - पृ.234

54. वही - पृ.91

"मुझे उन लोगों से ज़रा भी हमदर्दी नहीं है जो बातें तो करते हैं कम्यूनिस्टों की सी । मगर जीवन है रईसों का सा, उतना ही विलासमय, जितना ही स्वार्थ से भरा हुआ ।"[55]

प्रेमचंद ने राजनीति के क्षेत्र में अनैतिकता का जो प्रभाव है, उसी की ओर भी संकेत किया है । राजनेताओं की कथनी और करनी में जो अंतर देखा जाता है इस पर भी भलीभाति प्रेमचंद ने व्यंग्य किया है । इसके आधार पर यह व्यक्त हो जाता हैकि नैतिक आचरण के अभाव में राजनीति स्वार्थपूर्ति की साधन बन जाती है ।

प्रेमचंद ने सूरदास के माध्यम से वैयक्तिक एवं सामाजिक नैतिकता के बीच की टकराहट का चित्रण किया है । "मैं परायी स्त्री को अपनी माता, बेटी, बहन समझता हूँ ....भोला उसे मारता है, बिचारी कभी कभी मेरे पास आकर बैठ जाती है । मेरा अपराध इतना ही है कि मैं उसे दूतकार नहीं देता । इसकेलिए चाहे कोई बदनामी करे मेरा जो धर्म था वह मैं ने किया । बदनामी के डर से जो आदमी धर्म से मुँह फेर ले, वह आदमी नहीं है ।"[56] यहाँ अपने धर्म पर अडिग सूरदास ने वैयक्तिक नैतिकता को स्वर देने का प्रयास किया है ।

सूरदास जैसे प्रेमचंद के पात्र शहर को अनैतिक स्थान समझते हैं और इस कारण गाँव को शहर बनाने से रोकना भी चाहते हैं । यहाँ सूरदास बिलकुल देहातियों का दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है । यहाँ उसके स्वर में प्रेमचंद के विचार शामिल है या नहीं यह संदेहास्पद है ।

---

55. गोदान - प्रेमचंद - पृ. 52
56. रंग भूमि- प्रेमचंद - पृ.130

इस प्रकार प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में नैतिकता संबन्धी विविध आयामों पर परोक्ष रूप से प्रकाश डाला है । उनके ये विचार सीधे नैतिक समस्या को नहीं खडा करते बदले समस्याओं के अंदर दबी हुई नैतिकता के स्वरूप को ढूंढ निकालने की प्रेरणा देते है । इसलिए प्रेमचंद की दृष्टि परोक्ष रूप में नैतिकता से जुडी हुई साबित होती है ।

चौथा अध्याय

पचास के बाद के उपन्यासों में नैतिक मूल्य

चौथा अध्याय

पचास के बाद के उपन्यासों में नैतिकमूल्य

पचास के बाद के उपन्यासों में पुरानी पीढ़ी की नैतिक दृष्टि

नैतिकता की भावना समय एवं संदर्भ के अनुसार बदलती रहती है अत: पचास के बाद के उपन्यासों में व्यक्त नैतिकता की मान्यताओं में भी पर्याप्त अंतर आ जाना स्वाभाविक है । जोशी, जैनेन्द्र, यशपाल, भगवती चरण वर्मा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी जैसे उपन्यासकारों की कृतियों में नैतिकता की भावना किस सीमा तक परिवर्तित है, इसकी चर्चा करने केलिए उनके उपन्यासों की नैतिक मीमांसा परम आवश्यक है ।

जोशी के पचास के बाद के उपन्यासों में नैतिकता

जोशी जी का "जहाज़ का पंछी" एक आवारा युवक की दर्द भरी जिन्दगी को प्रस्तुत करता है । उस युवक को अत्यंत विषम परिस्थिति से गुज़रना पड़ता है, कहीं पुलिस द्वारा पकड़ा जाता है, कभी रसोईया बन जाता है ; कभी साहित्यिक विषय पर भाषण भी देने लगता है । इन विचित्र कारनामों के बीच वह दुनियाँ का अध्ययन करता है और उसके संबंध में टिप्पणी देता है । इस उपन्यास में लेखक ने डाकुओं और चोरों के

मनोवैज्ञानिक अध्ययन के साथ साथ वेश्यालयों और अनाथालयों के आंतरिक रूप को भी पहचानने की कोशिश की है । प्यारे की बेटी, बेला के माध्यम से अतृप्त नारी मन का एवं लीला के माध्यम से उच्च आदर्शों की नारी का चित्रण उपन्यासकार ने बहुत सफलता के साथकिया है ।

जोशी जी ने अपने पच्चास के बाद के उपन्यासों में स्वातंत्र्योत्तर भारत की विभिन्न समस्याओं का वर्णन किया है । दो महायुद्धों से दुनिया भर में व्यापी अव्यवस्था की व्याख्या जहाज़ का पंछी में जोशीजी ने की है। "सर्वत्र भय संशय, अनास्था और अविश्वास का बोलबाला है और सब कहीं झूठ और ढ़ोंग का राज्य छाया हुआ है । सब ओर जीवन अरक्षित और अव्यस्थित है[1] । सारी दुनिया इस अव्यवस्था के भँवर में चक्कर काट रही है, गरीबों का पहले से भी अधिक शोषण हो रहा है । अमीर और भी अमीर बनते जा रहे हैं, गरीब और भी गरीब होते जा रहे हैं । इस विषम परिस्थिति के कारण दुनिया में पहले से भी अधिक गिरहकटी, चोरी, डकैती के मामले देखने में आते हैं । इसलिए जोशीजी गुण्डा और चोरों को पापी नहीं समझते "और फिर गुण्डों का भी क्या कसूर है जब कि सारी दुनियाँ में ठगी और बेईमानी का बोलबाला है[2]।

लेखक, समाज में व्याप्त अत्याचारों, दुष्कर्मों का कारण विषम परिस्थितियों और सामूहिक भ्रष्टाचार को ही मानते हैं । दुनिया से इन्साफ चला गया है । "अगर ज़माने में इन्साफ होता, बेकारी नहीं होती भुखमरी न होती, इन्सानियत का कहीं नामो निशान भी होता तो आज इन्सान को इन्सान का गला काटने में इस कदर मज़ा ही क्यों आता[3]।

---

1. जहाज़ का पंछी - जोशी - पृ.45
2. वही - पृ.123
3. वही - पृ.102

लोगों की कथनी और करनी में अंतर आधुनिक जीवन की आदर्श हीनता को व्यक्त करता है । अन्य व्यक्तियों पर लुटेरों का आरोप करनेवाला व्यक्ति भी अपने वास्तविक जीवन में लूट ही करता रहता है । रेस कोर्स में भाग लेने केलिए जानेवाला व्यक्ति आवारा दसनम्बरी लोगों को लुटेरा समझता है । इस विडंबना का वर्णन जोशीजी ने दिया है "ये दस नम्बरी बेचारे तो सिर्फ अनजान राहगीरों को लूटते हैं पर टर्फ क्लब जानेवाले सभी अखबारों में सामूहिक लूट की घोषणा करके हज़ारों जानकारों की पाकिटें खाली करवा लेते हैं[4] ।

भ्रष्टचार आधुनिक युग के सभी क्षेत्रों में व्याप्त हो गया है। राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्रों में भ्रष्टाचार का जाल बिछा हुआ है

राजनीतिक क्षेत्र में और सामाजिक क्षेत्र में काम करनेवाले व्यक्तियों में नैतिक मूल्यों का बिलकुल अभाव सा परिलक्षित होता है । सामाजिक कार्यकर्ता समाज के कल्याण के नाम पर अपनी स्वार्थभावना की, धन लिप्सा की पूर्ति करता है । राजनीतिज्ञ भी लोगों के कल्याण केलिए बडी चढ़ी बातें करते हैं और अपनी स्वार्थ भावना की पूर्ति में लगे हुए होते हैं । ऐसा कहा जा सकता है कि समाज सफेद पोशी चोरों, डाकुओं और आततायीओं से भरा हुआ है । लेखक चोरों और डाकुओं को दो भिन्न श्रेणियों के मानते हैं । एक ओर अर्थाभाव से घृणित कार्य करनेवाले असभ्य चोर और अशिष्ट डाकुओं का भरमार है तो दूसरी ओर सभ्य चोर एवं शिष्ट डाकु लोग सामाजिक या राजनीतिक क्षेत्र में काम करने लगे हैं । "सभी क्षेत्रों में और छोटे बडे सभी महकमों में शरीफ चोर और सभ्य डाकु घुसे हुए है और बडी शालीनता और सफाई के साथ समाज के कल्याण के नाम पर जनता लूट खसोट का मालामाल बन रहे हैं[5] । लोगों की इस भ्रष्ट मानसिकता के कारण

---

4. जहाज का पंछी - जोशी - पृ.182
5. वही - पृ.25।

सामाजिक संस्थाओं की व्यवस्था नष्ट होने लगती है । समाज कल्याण की मुख मुद्रा पहनकर अनेक सामाजिक संस्थायें बनती हैंऔर मिट जाती हैं । बाहर से उनका एक रूप होता है और अंतर से बिलकुल दूसरा । 'जहाज़ का पंछी' में उसका ठीक वर्णन मिल जाता है । "पहले मिस साइमन लडकियों का व्यापार करती थी । बाहर से वह अन्तराष्ट्रीय अनाथ लडकियों का शिक्षालय के रूप में अपनी संस्था को चलाती थी[6] ।

लेखक ने 'जहाज़ का पंछी' उपन्यास के द्वारा बदली हुई मनोवृत्तियों का अंकन किया है । आधुनिक दुनिया में व्यक्तिऔर व्यक्ति, धर्म और धर्म, देश और देशके बीच की खाई चौडी बनती जा रही है । उसको पाटने का परिश्रम तो न होने के बराबर है । उनके अनुसार आधुनिक मानव युद्ध का एवं आर्थिक शोषण का शिकार बनकर अपने जीवन को व्यर्थ मानने लगा है । सत्य न्याय आदि शब्दों की ग़लत व्याख्या समाज में लोग कर रहे हैं ।

जोशी जी ने नैतिकता को परोक्ष रूप में अपने उपन्यास का विषय बनाया है । समाज की आलोचना करते हुए, नैतिक मूल्यों की विलष्टता को सूचित करते हुए उपन्यासकार ने इसको मनुष्यता का हनन उद्घोषित किया है । यहाँ वैयक्तिक एवं सामाजिक धरातल पर नैतिक आचरण के तिरस्कार से होनेवाली समस्याओं को तीखे स्वरों में लेखक ने प्रस्तुत किया है । नैतिकता के अभाव में समाज किस तरह से गिर सकता है ? इसके उदाहरण उपन्यास में आद्यंत मिलते हैं ।

---

5. जहाज़ का पंछी - जोशी - पृ.25।
6. वही - पृ.256

जैनेन्द्र के पचास के बाद के उपन्यासों में नैतिकता

जैनेन्द्र ने सुखदा, मुक्तिबोध, अनंतर आदि उपन्यासों के ज़रिए उच्छृंखल नारियों के चित्रण को प्रमुखता दी है । उच्छृंखल मनोवृत्तियोंवाली इन नारियों के जीवन का वर्णन करके उपन्यासकार ने उनसे जन्मी पारिवारिक समस्याओं को स्वर देने का प्रयत्न किया है ।

'सुखदा' में एक अतृप्त नारी का चित्रण हुआ है । जीवन में धन एवं सुख को प्रमुखता देनेवाली सुखदा का विवाह कांत नामक व्यक्ति से हो जाता है । कांत और सुखदा के जीवन में अर्थ का अभाव अडचनें पैदा करने लगता है । पारिवारिक जीवन से असंतृप्त नारी सुखदा लाल, हरीश आदि क्रांतिकारियों की सहायता करने लगती है और यहाँ तक क्रांतिकारी लाल से वह प्रेम करने लगती है । लाल के कार्यकलाप क्रांतिकारी दलों के कायदों के विरुद्ध हो जाता है फलतः हरीश क्रांतिकारी दल को भंग करता है । हरीश की खबर पुलिस को देकर कांत सरकार से पांच हज़ार का इनाम पाता है । सुखदा कांत को छोडकर कहीं चली जाती है ।

'सुखदा' उपन्यास उच्छृंखल नारी की मनोवृत्तियों का परिचय देता है । कांत के शय्यावलंबी होने का पता मिलने के बाद भी सुखदा उसको देखने केलिए नहीं जाती । अपने अतीत के पारिवारिक जीवन की याद करके अपने उजडे व्यक्तित्व का पर्दाफाश वह करती है ...... सब उजड चुका है आज यद्यपि मैं जानती हूँ कि मुझे छोड और कुछ नहीं बिगाडा है, पर मैं उसी के योग्य होती तो।[7] यहाँ सुखदा अपने जीवन की व्यर्थता का परिचय देती है ।

---

7. सुखदा - जैनेन्द्र - पृ.3

सुखदा पाप और पुण्य की व्याख्या प्रस्तुत करती है । उसकी दृष्टि में कोई पापी या पुण्यात्मा नहीं है । सब वह है जो उन्हें होना बदा है ।"[8] व्यक्ति किसी बात को अच्छा मानता है, किसी को बुरा, उचित, अनुचित को परखने की, व्यक्ति व्यक्ति की दृष्टि भिन्न होती है । इसलिए कहा जा सकता है कि नैतिकता की भावना व्यक्ति सापेक्ष होती है । "अच्छा या बुरा होनेवाले में नहीं देखनेवाले की आंखों में होता है[9] ।"

आज के समाज में अर्थ की प्रभुता बढ़ गयी है । समाज के सारे मूल्य अर्थ के अंदर दबे पडे हैं । अर्थ की प्रभुता के कारण समाज में अर्थ की नीति प्रमुख बन गयी है । "इन असंख्य लोगों की जान पैसा है समाज के शरीर का वह लहू है, वह जीवन को जगाये रखता है । वह जहाँ सूखता है वहां आदमी सूख जाता है इसलिए आत्म नीति और धर्म नीति को बाद में देखा जायेगा । अर्थ नीति को ही पहले देखना होगा[10] ।

क्रांतिकारियों के जीवन के नैतिक आचरण को लेकर लाल और हरीश के बीच लंबी बहस चलती है । हरीश क्रांति में भी नैतिकता की मान्यताओं को स्वीकारने के पक्ष में है लेकिन लाल अपने क्रियाकलापों में नैतिकता की परख करना नहीं चाहता । इसलिए वह अपने कमरे में स्त्री को रखता है, सुखदा से अनुचित व्यवहार करता है । वह नैतिकता के संबन्ध में अपनी मान्यता देता है । "सिर्फ नैतिक से काम नहीं चलेगा, नैतिक व्यक्ति को देखता है, हमें समाज को देखना है नैतिक तो सापेक्ष है । समाज सनातन है[11] ।" यहाँ लाल नैतिकता को बिलकुल गौण स्थान देता है । लेकिन हरीश लाल के अनुचित नैतिक आचरणों से पीड़ित होकर, क्रांतिकारी

---

9. सुखदा - जैनेन्द्र - पृ.62
10. वही - पृ.155
11. वही - पृ.256

दल को भी करता है । क्योंकि वह क्रांति में भी नैतिकता को मुख्य चीज़ मानता है या वह वैयक्तिक एवं सामाजिक नैतिकता के बीच संघर्ष की स्थिति को उत्पन्न करना नहीं चाहता ।

"विवर्त" की नायिका मोहिनी किसी पत्र के संपादक मंडल में काम करनेवाले जितेन से प्रेम करती है । मोहिनी जानती है कि जितेन प्रेम चाहता है, विवाह नहीं । मोहिनी जितेन के इस प्रेम से तृप्त नहीं होती । उससे वह अलग हो जाती है । मोहिनी की शादी बैरिस्टर नरेश के साथ हो जाती है । नौकरी से इस्तीफा देकर जितेन क्रांतिकारी बन जाता है । लेकिन क्रांतिकारी जीवन में वह असफल रहता है । विवर्त की कथा अत्यंत अस्वाभाविक है । लेखक ने इस उपन्यास में किसी विशेष नैतिक समस्या को उपर नहीं उठाया है । फिर भी आनुषंगिक रूप से जितेन के द्वारा खरीदी हुई लड्की तिन्नी के जीवन के द्वारा स्त्री की असहाय अवस्था का वर्णन जैनेन्द्र जी ने किया है ।

"अनंतर" उपन्यास में जैनेन्द्र कुमार ने नैतिकता से युक्त समस्याओं को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है । अपरा ईग्लैंड में बहुत साल रहकर अंग्रेज़ी पति को छोड्कर भारत लौट आती है और गुरू आनंद माधव की आराधिका बन जाती है । "प्रसाद" गुरू आनंद माधव के अनुरोध से आबु में समागम के उद्घाटन कार्य केलिए अपरा के साथ पहुँच जाता है । प्रसाद के साथ की रेल यात्रा में और आबु में अपरा अपनी उच्छृंखलता का परिचय देती है । वह प्रसाद के दामाद आदित्य को भी प्रभावित करती है । लेकिन अपरा अपने खुले व्यवहार के प्रभावस्वरूप किसी के पारिवारिक जीवन को तोड नहीं डालती । अपरा के उच्छृंखल व्यक्तित्व से नैतिकता को आदमी के बीच विरोध उत्पन्न करनेवाले एक तत्व के रूप में प्रकट होती है । "आदमी आदमी के बीच जिसने शंका पैदा कर दी है उसे नैतिकता कहते हैं ।"[12]

---

12. अनंतर - जैनेन्द्र - पृ.35

उच्च शिक्षिता नारी अपरा नैतिकता को जीवन में श्रेष्ठ नहीं मानती । लेकिन प्रसाद जैसे उच्चाशयी व्यक्ति नैतिकता को बहुत बडी चीज मानता है । प्रसाद की दृष्टि में पाप का डर शुभ होता है ।[13]" उपन्यासकार व्यवस्था के नाम पर खडे किये गये नीतिवाद को ढकोसला मानते हैं । "ढकोसला उनका है जो खुद केलिए भागे और दूसरे केलिए संयम चाहते हैं ।[14]"

नैतिक भावना की विशेषता इसमें है कि वह कभी कभी निरर्थक भावना ही प्रतीत होती है । स्त्री के लिए समाज के द्वारा निर्धारित आचरण संहिता का कठोर शासन है तो पुरुष पर समाज की आचरण संहिता का शासन उतना कठोर नहीं होता । आचरण संहिता का पालन न करने से समाज में पुरुष की प्रतिष्ठा को कम क्षति होती है । लेकिन व्यवहार में ढीलापन या उच्छृंखलता आने से स्त्री समाज की दृष्टि में कुलटा बन जातीहै, उस पर समाज अनैतिक आवरणों का आरोप हमेशा करता रहता है । अन्तर उपन्यास की अपरा का जीवन इस तथ्य को व्यक्त करता है । जैनेन्द्र का

जैनेन्द्र का जयवर्धन उपन्यास भारतीय राजनीति की झांकी प्रस्तुत करता है । जयवर्धन राज का अधिपति है । जनता उसपर विश्वास करती है । लेकिन उसके जीवन का विडंबनामय हेर सत्य यह है कि आचार्य की पुत्री इला उसके साथ विवाह संबन्ध जोडे बिना रहती है । स्वामी चिदानंद के मन में इल के प्रति ममता है । वह इला और जयवर्धन के संबन्धों को अवैध मानकर जय को शासन पद से निकालना चाहता है । चिदानंद, इन्द्रमोहन, डॉ॰नाथ के विरोध के कारण जयवर्धन विवशता का अनुभव करता है । प्रगतिकामी दल को अपने अनुकूल बनाने केलिए जयवर्धन उस दल के नेता डॉ॰ नाथ की प्रेमिका लिज़ा को यूरोप में भारत का प्रतिनिधि बनाना चाहता है । जय की यह राय लिज़ा पसंद करती है । लेकिन डॉ॰ नाथ नहीं पसन्द करता ।

---

13. अंतर - जैनेन्द्र - पृ॰36

14. वही - पृ॰132

फलत: दोनों के बीच अलगाव की भावना उत्पन्न हो जाती है । जय विवशता की पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है और वह इस्तीफा देता है ।

जैनेन्द्रजी ने इस उपन्यास में इला और लिज़ा के द्वारा भारतीय और अभारतीय सांस्कृतिक, शीलगत अंतर को प्रस्तुत करने का प्रयास एक ओर किया है तो चिदानंद डॉ॰ नाथ जैसे व्यक्तियों के माध्यम से राजनीति में आयी अस्थिरता के भाव को दूसरी ओर व्यक्त किया है । इला अविवाहिता होकर जय के साथ जीवन बिताकर भारतीय नैतिक पद्धति पर व्यंग्य तो करती है फिर भी वह जय के व्यक्तित्व के निर्माण में एक आदर्श भारतीय नारी की तरह काम करती दीखती है । लेकिन समाज इला के इस आचरण का विरोध करता है । स्त्री और पुरुष की परंपरागत मान्यताओं का समर्थक स्वामी चिदानंद जय और इला के बीच के संबन्धों में अवैधता का रंग चढ़ाकर जय से पद त्याग की मांग करता है । लिज़ा यूरोपीय संस्कृति में विश्वास करने वाली नारी है । वह भारतीय विवाह संस्था के विरुद्ध अपनी आवाज़ उठाती है "जहाँ संबन्धों में अनायसता न रह जायेगी, केवल एक ऊपरी वैद्य-अवैद्य का विचार पहना हुआ रहेगा, वह समाज पीला जीर्ण और जड पड जायेगा पश्चिम में व्यक्ति स्वच्छंद हो पर स्वच्छ भी है।यहाँ नैतिकता है पर निर्जीवता के साथ।[15] जैनेन्द्रजी जयवर्धन में समाज और नैतिकता की व्याख्या करते हैं । "राज केवल समाज के हाथ का उपकरण है, राज बनते बिगड्ते हैं, उठते गिरते हैं समाज सनातन है और उनकी नीति ध्रुव है नैतिकता से अलग जीवन टिक नहीं सकता, यह सुविधा का प्रश्न नहीं है । सनातनता का प्रश्न है और नीति के स्रोत हमारे धर्मशास्त्र है, समाज राज से नहीं चलता, धर्म से, धर्मज्ञ से, धर्म शास्त्र से चलता है ।[16]

15• जयवर्धन - जैनेन्द्र - पृ, 67

16• वही - पृ•60

'मुक्तिबोध' उपन्यास में हमारे राजनीतिज्ञों के जीवन के आदर्शों के खोखलेपन को अभिव्यक्ति मिलती है । आज के युग में व्यक्ति की प्रतिष्ठा नहीं लेकिन धन एवं पद की प्रतिष्ठा होती है । इस तथ्य को उपन्यासकार ने उजागर किया है ।

गांधीवादी सहाय, गांधीजी के आदर्शों की स्थापना केलिए संसद के सदस्य और मंत्री भी बन जाता है । लेकिन उसे मालूम हो जाता है कि लोगों की आस्था किसी आदर्श पर नहीं है, लोग पद या अर्थ के पीछे पागल होकर भागते रहते हैं । फलत: सहाय संसद की सदस्यता से मुक्त होने की आशा करता है । लेकिन लोगों की प्रेरणा के कारण वह राजनीति में और भी डूब जाता है और मंत्री बन जाता है ।

सहायजी की पत्नी राज्यश्री पति को उसकी प्रेमिका नीलिमा के साथ स्वच्छंद आचरण करने की छूट देती है । सहाय की प्रेमिका नीलिमा डॉक्टर की पत्नी है । लेकिन वह सहायजी से प्रेम करती है । राजनीतिज्ञों के पारिवारिक जीवन के खोखलेपन को व्यक्त करने का प्रयास सहाय के द्वारा जैनेन्द्र जी ने किया है ।

जैनेन्द्र के अन्य उपन्यासों की भांति इस उपन्यास में भी स्त्री पुरुष संबन्धों का अतिरंजित वर्णन मिलता है । पत्नी की ओर से पति को किसी स्त्री के साथ स्वतंत्र आचरण करने की छूट देना बिलकुल अस्वाभाविक एवं अनैतिक कार्य लगता है । सहायजी आदर्शवादी का मुखौटा धारण करते दीखते हैं । वास्तव में वे वासना के शिकार हैं । स्वार्थ केलिए सिद्धांतों को तुच्छ समझनेवाला, घर औरे बाहर मुखौटे धारण करके जीनेवाला, पत्नी और प्रेयसी के प्रति समान प्यार दिखानेवाला सहाय स्वातंत्र्योत्तर कालीन राजनीतिज्ञों की भ्रष्ट मनोवृत्ति का प्रतीक बन जाता है ।

जैनेन्द्र के पचासोत्तर उपन्यासों में व्यक्त उनकी दृष्टि में कालानुगत परिवर्तन दृष्टिगत होता है । स्त्री-पुरुष संबन्धों की दार्शनिक व्याख्या करनेवाला उपन्यासकार, 'मुक्ति बोध' और 'जयवर्धन' में आते आते अपने सामाजिक दृष्टिकोण का परिचय देता है । 'मुक्ति बोध' और 'जयवर्धन' में जैनेन्द्र जी राजनीतिक क्षेत्र के अंदर प्रवेश कर राजनीतिज्ञों के भ्रष्ट मानस को अभिव्यक्त करने का प्रयास करते दीखते हैं । इन उपन्यासों में भी नैतिकता की समस्या तो है लेकिन प्रारंभिक उपन्यासों की अपेक्षा सरल एवं बोधगम्य है ।

यशपाल के पचास के बाद के उपन्यासों में नैतिकता

यशपाल ने अपने उपन्यासों में मार्क्सीय आदर्शों के आधार पर सामाजिक यथार्थ की व्याख्या की है। 'झूठासच', 'बारह घंटे' 'अमिता' आदि उपन्यास यशपाल जी की सामाजिक मान्यताओं की ओर संकेत करते हैं ।

'बारहघंटे' उपन्यास में यशपाल जी ने नैतिकता की बहुत ही सही व्याख्या की है । इस उपन्यास में विधवा विनी और विधुर फेंटम के मिलन की कथा अंकित है । विनी और फेंटम अपने पति और पत्नी की याद में कब्रस्थान आते हैं । कब्रस्थान में दोनों का परिचय हो जाता है । दोनों एक दूसरे की दु:ख कथा से अवगत होते हैं । बारह घंटों के अंत में विनी फेंटम की संगिनी बन जाती है । विनी की बहन जेनी इस विवाह के विरुद्ध पहले विद्रोह करती है । वह सोचती है कि इससे तो अच्छा था चुडैल मर जाती, हम किसे मुँह दिखायेंगे ।"[17] जेनी स्त्री की स्वतंत्रता को

---

17. बारह घंटे - यशपाल - पृ.66

मानती है । लेकिन अपनी बहन के इन बारह घंटों में परिवर्तन, एक अज्ञात व्यक्ति के साथ उसका विवाह, ये कार्य उनकी दृष्टि में अत्यंत अनैतिक कार्य ही बन जाते हैं । "अनैतिकता और क्या होती है ? डायन इतने दिन मर जाने की इच्छा या स्वांग करती रही और बारह घंटे में ही बह गयी ।"[18] आगे यशपाल जी ने नैतिकता की विभिन्न मान्यताओं की अभिव्यक्ति की है उनके कुछ पात्रों की दृष्टि में नैतिकता समाज को सुसंघटित करनेवाली चीज़ है । नैतिकता के अभाव में समाज की स्वस्थ व्यवस्था नष्ट हो जायेगी । "नैतिकता तो मुख्य चीज़ है । नैतिकता के बिना ढ़ाँचा ही बिगड जायेगा, लेकिन उनके अन्य पात्र नैतिकता संबन्धी एक अलग मान्यता की सब सब गड्बड हो जायेगा, फिर तो किसी को किसी का डर लिहाज ही नहीं रहेगा ।"[19] लेकिन उनके अन्य पात्र नैतिकता संबन्धी एक अलग मान्यता की अभिव्यक्ति करते हैं । "नैतिकता डर और लिहाज़ को नहीं कहना चाहिए । हमारी औचित्य और अनौचित्य संबन्धी धारणायें ही नैतिकता होती हैं ।"[20] भारतीय परंपरा में प्रेम निष्ठा और भक्ति का सूचक है । इसलिए "प्रेम की नैतिकता निष्ठा और भक्ति से होती है । उपन्यास में एक ओर प्रेम और विवाह के भारतीय संकल्पों की ओर यशपाल जी हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं तो दूसरी ओर आत्महत्या की नैतिकता की व्याख्या करते हैं । प्रेम और विवाह के भारतीय संकल्पों की महिमा का वर्णन जेनी प्रस्तुत करती है । "प्रेम संबन्ध में निष्ठा भारतीय नारी का करेक्टर है । यहाँ की संस्कृति और परंपरा में प्रेम और विवाह को आत्मिक संबन्ध माना गया है ।[21]

---

18. बारह घंटे - यशपाल - पृ.100
19. वही - पृ.103
20. वही - पृ.103
21. वही - पृ.103

आत्महत्या की नैतिकता के संबन्ध में यशपाल जी ने अपनी राय प्रकट की है । "..... यदि निरुद्देश्य जीवन में केवल पीडा ही रह जाय । जीवन समाज केलिए भी उपयोगी न हो सकता हो तो पीडा मय जीवन का बोझ समाज पर लदे रहने की अपेक्षा उसे समाप्त कर देना बिलकुल नैतिक है[22] ।यशपाल जी की यह दृष्टि आधुनिक नैतिक धारणाओं की अभिव्यक्ति करती है । बीमारी से पीडित व्यक्ति परिवार एवं समाज केलिए बोझ बन जाता है । बीमार व्यक्ति भी जानता है कि उसकी मुक्ति इस बीमारी से संभव नहीं है फिर भी वह असहनीय पीडा का शिकार बन कर क्षण प्रतिक्षण मरता जा रहा है । उसे इस दर्दनाक जीवन से मुक्ति देना तो दरअसल नैतिक कार्य ही सिद्ध होता है । मुक्ति मृत्यु यहाँ स्वीकार्य हो जाती है ।

'अमिता' उपन्यास कलिंगयुद्ध,और बौद्ध धर्म के प्रति महाराजा अशोक के आत्म समर्पण की कथा प्रस्तुत करता है । कथावस्तु ऐतिहासिक है । फिर भी इस उपन्यास में नये भावबोधों की अभिव्यक्ति मिली है । कलिंग युद्ध में महाराजा करवेल मारा जाता है । फलत: उनकी पुत्री अमिता सत्ता की उत्तराधिकारिणी बन जाती है । महाराजा अशोक के आक्रमण से बचने केलिए महाराणी बौद्ध भिक्षुओं की सहायता की प्रार्थना करती है और अपनी सारी संपत्ति उन्हीं को सौंप देती है । लेकिन महाराजा अशोक के आक्रमण की खबर मात्र से बौद्ध भिक्षु कहीं भाग जाते हैं । बालिका अमिता के कोमल एवं सत्य वचनों के सामने सम्राट अशोक निरुत्तर हो जाते हैं । अमिता की वाणी (अन्यों से कुछ छीनना, असहायों को डराना, उनको मारना पाप है) के द्वारा आशोक की धार्मिक भावना जागने लगती है फलत: अशोक बौद्ध धर्म स्वीकार करते हैं ।

22• बारह घंटे - यशपाल - पृ•105

इस उपन्यास में धर्म की विजय और अहिंसा की पराजय का वर्णन प्राप्त होता है । यशपाल जी पाप और पुण्य की लोक तांत्रिक व्याख्या प्रस्तुत करते हैं । "पाप और पुण्य और, हिंसा और अहिंसा किसी व्यक्ति के हठ और अहंकार पर निर्भर नहीं करता .... बहु जन का हित और संतोष ही पुण्य और बहुजन का अहित और कष्ट ही पाप है[23] ।"

युद्ध से हिंसा तो अवश्य होती है । अनैतिक कार्य होते हुए भी बहुजन की रक्षा केलिए जब हिंसा हो जाती है तो वह अनैतिक कार्य नहीं कहलाया जा सकता । बहुजन का दु:ख और संतोष के आधार पर ही नैतिकता और अनैतिकता का आरोप हम कर सकते हैं ।

उपन्यास के आमुख में यशपाल जी ने अपनी नीति संबन्धी मन्तव्यों की स्पष्ट अभिव्यक्ति दी है । "व्यक्ति और समाज केलिए नैतिक बल की अनिवार्य आवश्यकता है । परंतु नैतिकता विचार और तर्क द्वारा मनुष्य के सहज स्वभाव का अंग होनी चाहिए । भय और दमन द्वारा अपने विचारों तथा नैतिकता को स्वीकार करने केलिए दूसरों को विवश करना अपनी शक्ति अनुभव करने का उन्माद मात्र है और मूलत: अनैतिक है[24] ।" यशपाल की दृष्टि में नैतिकता मनुष्य सहज अनुभव के योग्य होनी चाहिए । यशपाल जी समाज में अव्यवस्था को रोकने केलिए नैतिकता के नियमों के ठीक आचरण करने की कामना करते हैं । क्योंकि अनैतिक आचार विचार व्यक्ति एवं समाज को नष्ट कर देते है । "व्यक्ति और समाज की नैतिकता का प्रयोजन जीवन में अधिक समर्थ हो सकना ही है । अनैतिक विचार और व्यवहार, व्यक्ति और समाज को घुन और क्षय रोग के समान क्षीण कर देते हैं[25] ।

---

23. अमिता - यशपाल - पृ. 108
24. वही - प्राक्कथन से- पृ. 6
25. वही पृ. 6

"झूठा सच" उपन्यास में नारी की दुर्दशा, उसके प्रति किये जानेवाले अत्याचारों का वर्णन मिल जाता है । नारी की इस घोर दुर्दशा का चित्रण तारा के माध्यम से उपन्यास में दृष्टिगत होता है । आर्थिक विषमता के कारण और रूढ़िवादी पिता के हठ के कारण तारा को धनी लेकिन लंपट सोमराज से विवाह करना पड़ता है । विवाह के प्रथम दिन में ही तारा को सोमराज से मार खाना पड़ता है । सोमराज के मार से बचने की कोशिश में उसे एक मुस्लीम गुण्डा के शारीरिक भूख का शिकार बनना पड़ता है । वहाँ से वह एक प्रतिष्ठित मुस्लीम परिवार में पहूँच जाती है जहाँ धर्म परिवर्तन केलिए उसे बाध्य किया जाता है । वह धर्म परिवर्तन नहीं चाहती क्योंकि वह समझती है कि सभी धर्म का आधार स्त्री पर किये जाने वाला शोषण और अत्याचार है, सभी धर्मों में पुरुष की श्रेष्ठता है। वहाँ से वह पुन: गुण्डों के चंगुल में फँस जाती है । उसका उद्धार हो जाता है और अपना पूर्व प्रेमी असद् से तारा का मिलन हो जाता है ।

तारा का परिचय प्रसाद नामक कांग्रसी नेता से हो जाता है और प्रसाद तारा को नौकरी दिलाने के बहाने ले जाता है । प्रसाद जी की वास्तविक मनोवृत्तियों का परिचय पाकर वह पुन: शरणार्थी शिविर में पहूँच जाती है । कुछ दिन तारा श्रीमती अगरवाल के गवर्नेस के रूप में काम करती है । तारा को राजकीय सेवा में नियुक्ति मिल जाती है और वह नर्स मर्सी के साथ रहने लगती है जो क्रांतिकारी दलों की सहायता करती रहती है । तारा का विवाह ~~प्रत्र~~ डॉ॰ प्राणनाथ से हो जाता है ।

उधर तारा के भाई जयदेवपुरी का विवाह कनक नामक उच्चवर्गीय युवती से हो जाता है । लेकिन पुरी की दुर्बल मनोवृत्ति के कारण कनक का जीवन दु:ख मय हो जाता है । पुरी विधवा उर्मिला के साथ

अनुचित संबन्ध स्थापित करके अपनी चारित्रिक दुर्बलता का परिचय भी देता है । बंती का आत्म समर्पण शेलो और रतन का संबन्ध आदि उपन्यास की उप-कथायें हैं । बंती बंटवारे की तूफान में अपने पति और बच्चों से अलग हो जाती है । पति को खोजती हुई वह एक शिविर से दूसरे शिविर तक परिक्रमण करती रहती है । एक दिन पति का पता मिल जाता है लेकिन पति उसे पतिता समझकर तिरस्कार करता है । बंती की कथा अत्यंत मार्मिक बन गयी है । विवाहिता होने पर भी अन्य व्यक्ति से प्रेम एवं शारीरिक संबन्ध जोड़ने वाली शीलो नव नारी चेतना के उदय को सूचित करती है ।

इस उपन्यास में यशपाल ने नैतिकता के संबन्ध में मार्क्सवादी दृष्टिकोण का परिचय दिया है । उपन्यास में वैसे नारी के प्रति किये जाने वाले अत्याचारों का खुल्लम खुल्ला वर्णन मिलता है । यहाँ आनेवाली नारियाँ नैतिकता और अनैतिकता के सवालों से नहीं जुझती । परिस्थितियों के कारण स्त्रियों को अनेक पुरुषों से शारीरिक संबन्ध जोड़ना पड़ता है । कहीं विवाह के बंधन में पड़कर पुरुष से शारीरिक संबन्ध जोड़ती है और विवाह के बाहर कहीं वह बलात्कार के शिकार बन जाती है, कहीं वासना की । यहाँ नैतिकता पाप और पुण्य की समस्या को लेकर नहीं खड़ी होती । और उपन्यास की प्रमुख समस्या भी यह नहीं है ।

वास्तव में मार्क्सवादी दृष्टिकोण स्त्री और पुरुष के शारीरिक संबन्धों को महज़ एक आवश्यकता मानता है । शोषण के विरुद्ध आवाज उठाने-वाले साम्यवादियों की दृष्टि में स्त्री के प्रति किये जानेवाले ये अत्याचार इसलिए हेय है कि वे उसके शोषण का उपकरण बनती हैं । धर्म, स्वर्ग या नरक आदि की चिंता न होने के कारण स्त्री और पुरुष के अवैध संबन्ध पापमय नहीं बनते । इस तरह 'झूठा सच' में यशपाल ने अवैध संबन्धों से उत्पन्न समस्याओं को नैतिकता के अंदर न रखकर शोषण के अंदर रखा है ।

'झूठा सच' में उपन्यासकार ने राजनीतिक क्षेत्र में व्याप्त अनैतिकता के वातावरण को प्रसाद के एवं सूद" के माध्यम से व्यक्त करने का प्रयास किया है। स्वातंत्र्योत्तर युग में धन का सम्मान है। "अन्य सब सम्मान शिष्टाचार मात्र है। पैसे का बल ही वास्तविक सम्मान है।[26] राजनीतिक नेताओं का आदर्श केवल धनार्जन तक ही सीमित हो गया है। पैसे के इस बढ़ते प्रभाव के कारण इमान्दारी लोगों के मन से बिलकुल गायब हो गयी है। "विधान सभा के मेम्बर ईमान्दार है? जेब का पन्द्रह, बीस, पच्चीस हज़ार रुपये खर्च करके यह लोग देशसेवा केलिए चुनाव लड़ते हैं गांव के एक एम•एल•ए• की बात है आन्दोलन में ज़रूर जेल गये थे .... कांग्रेस टिकट पर इलक्शन लड गये। अब साढ़े तीन साल में दो मक्कान पक्के खडे कर लिए हैं।[27]"

गांधीजी के आदर्शों को अपने जीवन की प्रेरणा एवं लक्ष्य मानकर चलनेवाले कांग्रेसी राजनीतिज्ञों के व्यक्तित्व के खोखलेपन को यशपाल जी ने 'झूठा सच' में व्यक्त किया है। कांग्रेस नेता अवस्थीजी मुस्कुराते हुए और ठिठकते हुए चलने लगे, जाते समय कनक के कंधे पर हाथ रखते गये। कनक को यह अच्छा न लगा। कुछ समय बाद वह विद्रुप से मन ही मन हंसी - "कांग्रेसियों ने गांधीजी से एक ही बात सीख ली है कि चाहे जिस लड़की या स्त्री के कंधे पर हाथ रख लें सभी अपने को राष्ट्र पिता समझने लगे हैं।[28]" यशपाल जी का यह परामर्श आज के राजनीतिज्ञों के बारे में बहुत ही खरा उतरता है।

राजनीतिज्ञों के भ्रष्टाचार के उदाहरण पात्रों के कथनों से मिल जाता है गिरजा भाभी कनक से कहती है - "बेटी तुम इन लोगों के चक्कर में पड गयी हो। होशियारी से रहना ..... ये सब लोग निहायत कमीने है। अपनी बीबियों लडकियों को पर्दे में रखेंगे और दूसरों की बहु बेटियों को खिल्लौना बना लेने को ललक पड़ेंगे हैं।[29]

26• वतन और देश - यशपाल - पृ•141

27• देश का भविष्य- यशपाल - पृ•619

28• वही - पृ•255

29• वही - पृ•255

धर्म विभेद और संकुचित धार्मिक दृष्टि के कारण ही भारत का बंटवारा हो गया था । कनक सोचती है - धर्म के भेद का झगडा कब और कहाँ जाकर समाप्त होगा । धर्म के कारण उस मकान और गली के लोगों को पश्चिम भाग जाना पडा । यह सब केवल अदृश्य भगवान के प्रति धारणाओं में भेद से है[30] ।

धर्म की संकुचित भावना से जन्मी धधकती आग ने कितने पति पत्नियों को अलग कर दिया, कितनी स्त्रियों पर अत्याचार किया, कितने घरों को नष्ट कर दिया । भारत के बंटवारे के समय हुए, स्त्रियों पर किये अत्याचारों की कहानी बहुत ही दर्दनाक ही होती है ।

इस धर्म विभेद एवं संकुचित धार्मिक भावना से सामाजिक क्षेत्र कलुषित होने लगा है । लोग अपने अपने धर्म के अन्दर सिमटकर रहने लगे। फलत: व्यापक नैतिक भाव बोध की कमी समाज में परिलक्षित होती है । भ्रष्टाचार शिक्षा के क्षेत्र में भी व्याप्त हो गया है । लोग धन कमाने केलिए नये नये साधन इकट्ठा कर रहे हैं । वतन और देश के प्रोफेसर महाशय पैसे केलिए क्या नहीं करते । "हमारा तो यह धंधा है, ब्लैक में नहीं युनिवर्सिटी का प्रोफेसर मुझसे कर रहा है । आठ हज़ार रुपये और किताब पर उसका नाम, किताब को टेक्स्ट बुक बनाने का दाम है[31] ।"

यशपाल के सारे के सारे उपन्यासों में नारी के प्रति किये जाने वाले अत्याचारों का वर्णन मिलता है । 'झूठा सच' का सोमराज उच्छृंखल जीवन बिताता है । लेकिन वह सार्वजनिक कार्यों में भाग लेनेवाली पत्नी तारा के पातिव्रत्य पर शंकालु होकर कठोर व्यंग्य करता है । "बोलती क्यों नहीं" "कितनों के साथ सोई है ?"[32] । हिन्दू समाज में स्त्री के ऊपर सामाजिक आचार संहिता का कठोर शासन है । "हिन्दू की बहन, बेटी, औरत एक दिन केलिए

---

30. झूठा सच - देश का भविष्य - यशपाल - पृ.606
31. " वतन और देश - यशपाल - पृ.144
32. " वही - पृ.385

राह भटक जाय, बाप या शौहर से दूर रह जाय तो हिन्दू लोग उसे मिट्टी का कुलहड समझते हैं।[33]"

अंग्रेज़ी रंग में रंगी हुई मर्सी की दृष्टि में प्रेम यौन संबन्ध का समादरित नाम ही है।[34] मर्सी गर्भपात को अनैतिक कार्य नहीं मानती और गर्भ भी उनकी दृष्टि में एक प्रकार की बीमारी है। "इस ज़माने में कितने लोग चार पांच बच्चों का वरदान चाहते हैं। इतने बच्चों केलिए स्वस्थ भोजन और उचित शिक्षा का प्रबन्ध कर सकते हैं। उन सब की जिन्दगी नरक बन जायेगी। क्या उनकेलिए अवांछित गर्भ और बच्चे जीवन भर की बीमारी है[35]।"

भारतीय परंपरा के अनुसार गर्भपात करना पाप है। लेकिन आधुनिक युग की नारी की दृष्टि में गर्भपात पाप नहीं है। क्योंकि गर्भ एक बीमारी है जिस प्रकार असावधानी एवं असंयम के कारण लोग बीमार बन जाते हैं, उसी प्रकार असावधानी एवं असंयम के कारण ही स्त्री गर्भधारण कर लेती है। इसलिए गर्भपात करना उस बीमारी का इलाज है। डाक्टरों की राय भी मर्सी की राय से मिलती जुलती है। "जो बात शरीर को कष्ट दे, परेशानी पैदा करे, बीमारी है। किसी भी तकलीफ और परेशानी दूर करना वाहियाती है ? अय्यर ठीक कहती है, क्या दूसरे आपरेशन पाप है ?[36]

यशपाल जी ने इस प्रकार नैतिकता से जुडी हुई आधुनिक समस्याओं का वर्णन अपने उपन्यासों में किया है। मुक्ति मृत्यु, गर्भपात जैसे सामाजिक जीवन को स्पर्शकरनेवाली अत्यंत नवीन मान्यताओं का समर्थन करके यशपाल जी ने अपने आधुनिक विचारों को व्यक्त करने का प्रयास किया है।

---

33. झूठा सच - वतन और देश - पृ.407
34. वही - पृ.382
35. वही - पृ.380
36. वही - पृ.380

भगवतीचरण वर्मा के पचास के बाद के उपन्यासों में नैतिकमूल्य

भगवतीचरण वर्मा ने अपने पचास के बाद के उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ का बहुत ही सफल वर्णन किया है । भगवतीचरण वर्मा का 'भूले बिसरे चित्र' उपन्यास स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व के भारतीय समाज की कथा प्रस्तुत करता है । उपन्यास में पूंजीपति वर्ग के विलासमय जीवन के चित्रण के साथ भारतीय स्वतंत्रता संग्राम एवं अंग्रेज़ी शिक्षा से जन्मी नयी चेतना का चित्रण भी मिल जाता है ।

विधूर मुंशी शिवलाल का पुत्र, ज्वालाप्रसाद को नायब तहसीलदार की नियुक्ति मिल जाती है । घाटमपुर में ज़मीन्दार प्रभुदयाल से उसका परिचय हो जाता है । किसी झगडे में प्रभुदयाल की मृत्यु हो जाती है । प्रभुदयाल की पत्नी जैदेई से ज्वाला प्रसाद अवैध संबन्ध स्थापित करता है

ज्वाला प्रसाद का पुत्र गंगाप्रसाद डिप्टी कलक्टर बन जाता है । गंगा प्रसाद का विलासी मन राधाकिशन की पत्नी सन्तों से अवैध संबंध स्थापित कर तृप्त हो जाता है ।

ज्वाला प्रसाद के ममेरे भाई मुंशी रामसहाय के पुत्र ज्ञान प्रकाश बेरिस्टर बन कर भारत लौट आता है । नयी पीढ़ी की बौद्धिक चेतना का प्रतीक ज्ञान प्रकाश स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेता है । गंगा प्रसाद का पुत्र नवल किशोर भी ज्ञानप्रकाश के साथ स्वतंत्रता आन्दोलन में शरीक होता है । नवल किशोर, ज्ञान प्रकाश आदि सत्याग्रहियों का जीवन और उनके कार्यकलाप आदि से 'भूले बिसरे चित्र' के पृष्ठ भरे पडे हैं ।

सामंतवर्ग स्त्री को प्रेम एवं वासना की तुष्टि का साधन समझता है । लेकिन उनको सामाजिक प्रतिष्ठा देने से हिचकता है । मुंशी शिवलाल और छिनकी का संबन्ध इस ओर हमारा ध्यान आकर्षित करता है । शिवलाल के जीवन में छिनकी का आधिक्य है । छिनकी की सहायता शिवलाल को सभी समय मिलती रहती है, उससे शारीरिक संबन्ध भी जोडता रहता है । लेकिन मुंशी शिवलाल उसके हाथ का छुआ पानी पीना अधार्मिक समझता है । निम्नवर्गीय स्त्रियों से शरीरिक संबन्ध जोडना अनैतिक नहीं है । लेकिन निम्नवर्गीय स्त्री के हाथ का छुआ पानी पीने से उच्चवर्गीय व्यक्तियों का धर्म भ्रष्ट हो जाता है । उच्चवर्गीय नैतिकता की भावना कितनी खोखली मान पडती है ।

राधाकिशन का अपनी भाभी से अवैध संबन्ध, ज्वाला प्रसाद और जेदेई, गंगाप्रसाद और संतों के अवैध संबन्ध उच्चवर्ग के स्वच्छंद यौनाचार के नमूने के रूप में उपन्यासकार ने चित्रित किया है ।

उच्चवर्गीय जीवन में व्याप्त वैयक्तिक अनैतिकता का स्वरूप इस उपन्यास में यत्र तत्र मिलता है । समाज के सामने मान और सम्मान के साथ जीवन बितानेवाले ये पात्र पत्नी के होते हुए भी फैशन के नाम पर दूसरी स्त्रियों से शादी कर सकते हैं, उच्चवर्गीय होने के नाते निम्न जाति की महिला को विलास का साधन बना सकते हैं, पद के रौब के आधार पर विधवा से अवैध संबन्ध स्थापित कर सकते हैं । यहाँ तक कि अपनी भाभी से भी शरीरिक संबन्ध जोड सकते हैं । घटनाओं के ये उदाहरण यह स्थापित करते हैं कि उच्च वर्ग के सामने वैयक्तिक नैतिकता नाम की कोई चीज़ नहीं है । क्योंकि उनपर अंकुश लगाने की शक्ति और क्षमता किसी में नहीं है ।

भगवतीचरण वर्मा ने भूले बिसरे चित्र में धर्म के स्वरूप की व्याख्या की है । उनकी दृष्टि में सामाजिक नियमों का उल्लंघन करने से समाज की बनी बनायी व्यवस्था नष्ट हो जाती है । सामाजिक धर्म का पालन परम

दोनों धर्मों का समान रूप से पालन करना हर एक साधारण गृहस्थ का धर्म है।" ..... यदि सामाजिक व्यवस्था के आगे हम सिर नहीं झुकाते तो हम अराजकता के पाप के भागी होते हैं और सामाजिक प्राणी होने के कारण हम गृहस्थ लोग अराजक बन ही नहीं सकते[37]।" भावतीचरण वर्मा नैतिकता को धर्म से जुडा हुआ मानते हैं । उनके अनुसार सामाजिक व्यवस्था के विरोध में व्यक्ति जो कार्य करता है वह अनैतिक कार्य ही बन जाता है । मनुष्य का यह दावा है कि वह सक्षम है, समर्थ है" इन पंक्तियों के साथ वर्माजी का उपन्यास सामर्थ्य और सीमा को आरंभ होता है । उपन्यास के अंत में पाठक यह महसूस करने लगते हैं कि मनुष्य की क्षमता की भी एक सीमा होती है ।

मानकुमारी हिमालय की तराई में स्थित यशनगर की रानी है । यशनगर के राजा ने सुमनपुर के विकास केलिए जो योजना बनायी थी उस योजना को राजा की मृत्यु के उपरांत उत्तर प्रदेश के मंत्री जोखनलाल को यशनगर का दीवान सौंप देता है । जोखन लाल कूटनीति से मानकुमारी की संपत्ति भी हडप लेता है । रानी का दीवान राज्य सभा का मेम्बर बन जाता है ।

हिमालय से चली आनेवाली रोहिणी नदी पर बांध बांधने और ताबे, अबरक आदि से संपन्न सुमनपुर पहाडियों का खनन करने केलिए जोखन लाल की प्रेरणा से पांच विशेषज्ञ सुमनपुर आते हैं । जंगली रास्ते में उनकी कार खराब हो जाती है। सुमन पुर आने केलिए रानी मानकुमारी उनकी सहायता करती है ।

छब्बीस वर्ष की अनुपम सुन्दरी रानी मानकुमारी पर सुमनपुर में आये पांचों विशेषज्ञ मोहित हो जाते हैं । रोहिणी नदी में बांध बांधने की योजना के संबन्ध में जब रानी मानकुमारी का चाचा मेजर नाहरसिंह सुनता है तब वह भविष्यवाणी देता है, और विशेषज्ञों को तुरंत वापस लौटने केलिए आदेश भी देता है । उसकी सनकी आदत के कारण मानकुमारी और अन्य व्यक्ति

अविवाहित देवलंकर के प्रति मानकुमारी आकर्षित हो जाती है । वह देवलंकर के साथ जीवन बिताने की कामना करने लगती है । लेकिन उसकी कामना अधूरी हो जाती है । यशनगर के उत्तरवाला कच्चा पहाड़ रोहिणी नदी की झील को संभाल नहीं पाता इस कारण रोहिणी की धारा अनियंत्रित होकर सारे नगर को तहस नहस कर देती है । इस प्रलयंकर धारा में देवलंकर और अन्य विशेषकः रानी, नाहरसिंह आदि डूब मरते हैं ।

उपन्यास में एक ओर राजनीतिज्ञों के भ्रष्टाचार का वर्णन मिलता है तो दूसरी ओर मकोला जैसे पूंजीपतियों की वासनामय मनोवृत्तियों का अंकन भी ।

इस उपन्यास में यद्यपि नैतिकता प्रमुख विषय बनकर नहीं आती फिर भी वैयक्तिक आचरण के क्षेत्र में होनेवाले अनैतिक कार्यकलापों का ब्योरा प्रस्तुत किया गया है । कम उम्र की रानी की जायदाद को हड़पनेवाला दीवान अपनी भ्रष्टता का परिचय देता है । उसी प्रकार मंत्री पद पर विराजमान लोग किस तरह से धोखेबाज़ निकलते है, इसका भी वर्णन उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है ।

इस उपन्यास में अर्थ के क्षेत्र पर व्याप्त भ्रष्टाचारों का खुलकर वर्णन मिलता है । आधुनिक युग में अर्थ का प्रभाव बढ़ता जा रहा है । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सामंतों का सत्यनाश तो हुआ था । लेकिन उसके स्थान पर एक नया वर्ग, पूँजीपति वर्ग उभरकर आया है । सरकार को बनाना, बिगाड़ना पूंजीपतियों के बायें हाथ का खेल हो गया है । आज की दुनिया में सब चीज़ बिकाऊ है । उपन्यास का पूजीपति, मकोला के शब्दों में क्या नहीं बिकता है इस दुनिया में आदमी का धर्म बिकता है, ईमान बिकता है, आत्मा बिकती है और प्रेम भी बिक सकता है । ...... में

37 भूले बिसरे चित्र - भगवतीचरणवर्मा - पृ. 18.19

रानी मानकुमारी को खरीदना चाहता हूँ, चाहे कितनी कीमत अदा करनी पडे मुझे।[38] सरकार को बनाने में, सरकार को गिराने में, चीज़ों के दाम घटाने और बढ़ाने में मकोला जैसे पूंजीपतियों का हाथ है "हमारे इशारों पर मंत्री नाचते हैं विधायक अपना मत देते हैं हमारेलिए कोई नैतिकता नहीं हमारे पास कोई आस्था नहीं"[39]। आज के युग में धर्म और नैतिकता के जो परिवर्तित रूप मिल जाता है उसको रूपायित करने में अर्थ का प्रमुख हाथ रहा है। अर्थ के इस राक्षसी प्रभाव को भगवतीचरण वर्मा ने जहाँ तहां अभिव्यक्त किया है। "इस पूंजीवाद का देवता-पैसा यह सब कुछ कर सकता है। हरएक आदमी इस देवता का गुलाम है। एक से एक लुटेरों और बदमाशों को इस पूंजीवाद ने जन्म दिया है"[40]। आज के युग में त्याग, बलिदान आदि शब्दों की गरिमा नष्ट हो गयी है। ये शब्द सिर्फ खोखले शब्द बन गये हैं। लेकिन "इन शब्दों का बहुतायत के साथ प्रयोग किया जाता है, लोगों को मूर्ख बनाने केलिए।"[41] इस अर्थ से संपन्न और चालित समाज में धर्म और ईमान बहुत अधिक निरर्थक शब्द बन गये हैं। आज धर्म और ईमान लोगों के जीवन की विकास यात्रा में खडी हो जानेवाली बाधा बन गये हैं। "किस साले को आज धर्म और ईमान पर आस्था रह गयी है खुल्लम खुल्ला हम कमज़ोरों को लूटते हैं, भोले भाले और अज्ञान से युक्त आदमियों के साथ हम बेईमानी करते हैं मार्क्स ने शायद ठीक ही कहा है कि हमने कमज़ोर अपाहिज और मूर्ख जनता को लूटने केलिए धर्म और ईमान को गढ़ा है"[42]।

आधुनिक युग में स्त्री पुरुष के समानाधिकारिणी बन गयी है और स्त्री पुरुष संबन्ध केवल आर्थिक संबन्ध रह गया है। अर्थ का प्रभाव स्त्री पुरुष संबन्धों पर भी पडा है। इसलिए स्त्री पुरुष संबन्धों में ढ़ीलापन आ

---

38. सामर्थ्य और सीमा - भगवती चरण वर्मा - पृ.33।
39. वही - पृ.241
40. वही - पृ.152
41. वही - पृ. 17
42. वही - पृ. 53

गया है । पति और पत्नी का संबन्ध विच्छेद किसी भी समय, किसी की भी इच्छा से हो जाता है । विवाह के संबन्ध में सही व्याख्या 'सामर्थ्य और सीमा' की रानी साहिबा ने प्रस्तुत की है । "विवाह में स्त्री को जो आधार मिलता है वह आर्थिक है, शारीरिक है, मानसिक अथवा आत्मिक नहीं है, मानसिक और आत्मिक संबन्धों में तो स्त्री को केवल समझौता करना पड़ता है"[43] । विवाह संबन्धों में मानसिक एकता एवं आत्मीयता का अभाव बदलते मूल्यों को अभिव्यक्त करते हैं ।

भावतीचरण वर्मा ने "सामर्थ्य और सीमा" में अर्थ के, धर्म के, स्त्री पुरुष संबन्धों के खोखलेपन को व्यक्त करके बदलते सामाजिक मूल्यों को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है । इन्हीं के माध्यम से परोक्ष रूप में सामाजिक व नैतिकता के स्वरूप में आये हुए परिणामों की ओर इंगित भी किया

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की पृष्ठभूमि में लिखा गया 'सीधी सच्ची बातें' उपन्यास स्वतंत्रतापूर्व के भारतीय समाज की असली झांकी प्रस्तुत करता है । कुलसुम, परवेज, जसवन्त, मालती आदि पात्रों के सहारे उन्होंने उच्च वर्गीय जीवन की विषमताओं की ओर ध्यान आकर्षित किया है । साथ ही साथ जगत् प्रकाश नामक व्यक्ति के जीवन की असफलता की ओर भी । जगत प्रकाश कभी गांधीवादी बन जाता है ; कभी साम्यवादी बनने की कोशिश करता है, कभी सेना में भर्ती हो जाता है । कभी कुलसुम के साथ प्रेम करने लगता है । उसको अपने सारे क्रियाकलापों में असफलता ही मिलती है ।

"सीधी सच्ची बातें" उपन्यास में भी भावती चरण वर्मा ने अर्थ, धर्म और स्त्री संबन्धी अपनी मान्यताओं पर प्रकाश डाला है । धार्मिक क्षेत्र स्वार्थ एवं हीन चिंताओं की क्रीडास्थली बन गया है । आधुनिक युग में लोग धर्म को, ईमान को आर्थिक लाभ केलिए उपयोग करते हैं । "लोग मंदिर बनवाकर, धर्मशालायें खोलकर चोर बाजारी करने का मार्ग प्रशस्त करने लगे हैं । अर्थात् धर्म एक व्यवसाय होता जा रहा है । मंदिर बनवाना, धर्मशालायें खोलना,

---

43. सामर्थ्य और सीमा - भावतीचरण वर्मा - पृ.264

सदावर्त बाँटना, ताकि चोर बाजारी में, धोखा धड़ी में, मक्कर और फरेब में भगवान हमारी मदद करे यह वैयक्तिक महजब की कुरूपता है[44]। दरअसल धर्म एक सामाजिक इकाई है। समाज को कायम रखने केलिए उसे ताकतवर बनाने केलिए धर्म की आवश्यकता है। लेकिन जब धर्म व्यक्ति के स्वार्थों केलिए आड बन जाती है तो धर्म की, गरिमा, उसकी सामाजिकता नष्ट हो जाती है।

अर्थ की शैतानियत का वर्णन 'सीधी सच्ची बातें' में भी प्राप्त होता है। भगवतीचरण वर्मा आज की दुनियाँ को अर्थ की महिमा की दुनिया मानते हैं। आज के समाज में धन के आगे, ईमान, त्याग, धर्म आदि सामाजिक मूल्य नगण्य बन जाते हैं। हर जगह आदमी बिक जाता है। जिस प्रकार चीज़ें बिक जाती हैं, उसी प्रकार वोटें बिक जाती हैं। व्यापारी लोग भी पैसों के लिए अपने धर्म और ईमान को बेचते हैं। "आजकल पूंजी की आड में कुछ व्यक्तियों का समूह ही राज करता है ..... कुछ लोग आपस में समझौता करके एक गुट बना सकते हैं और यह गुट मुल्क पर हुकूमत कर सकता है। यह गुट बढ़ता जाता है। डिमोक्रसी की यही सबसे बडी कमज़ोरी है। और जब लूटनेवालों का गुट बेतरह बढ़ जाता है और लूट भी बेतरह बढ़ जाती है[45]।"

राजनीति का क्षेत्र भी नैतिक अवमूल्यन से अछूता नहीं रहा है राजनीतिज्ञ इतना स्वार्थी बन गया है कि देशसेवा के नाम पर वह आत्मसेवा करने लगा है, चाहे वे काग्रेसी हो या कम्यूनिस्ट हो। काग्रेसीशासन पर भगवतीचरण वर्मा ने व्यंग्य किया है। "कहने को तो काग्रेस लोक तांत्रिक संस्था है, लेकिन वहाँ सबसे दुष्ट डिक्टेटर शिप है। जहाँ एक आदमी जो चाहे वह करे, सबको उसी की हाँ में हाँ मिलानी पडती है। उनकी दृष्टि में आज का राजनीतिक क्षेत्र कलुषित हो गया है। भ्रष्टाचार राजनीति में एक धर्म सा बन गया है।

---

44. सीधी सच्ची बातें - भगवतीचरण वर्मा - पृ.259

'सीधी सच्ची बातें' उपन्यास में भी अर्थ के बुरे प्रभाव का वर्णन मिलता है जो आज के समाज की अर्थ से जन्मी सामाजिक समस्याओं की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करता है ।

'वह फिर नहीं आयीं' उपन्यास जीवन राम और रानी श्यामला की टूटी जिन्दगी का वर्णन करता है । राजा खुशीराम का इकलौता बेटा जीवन राम और उसकी पत्नी श्यामला के सुखमय जीवन को बंटवारे का तूफान नष्ट कर देता है । जीवन राम एवं श्यामला की रक्षा शहबाज से हो जाती है । पाकिस्तान से उन लोगों को बचाने केलिए शहबाज बीस हज़ार रुपये मांगता है । जीवन राम श्यामला को धरोहर के रूप में रखकर बीस हज़ार रुपये की खोज में बंबई चला आता है । वहाँ किसी दफ्तर से बीस हज़ार रुपये का गबन करके जीवनराम श्यामला को शहबाज के हाथों से बिछुडवा देता है । दोनों गबन के मामले से बचने केलिए दिल्ली आकर रहते हैं । दिल्ली में रानी श्यामला की मुलाकात ज्ञानचंद्र से होती है । ज्ञानचंद्र अपनी एक मकान श्यामला को रहने केलिए देता है, जीवन राम को अपने दफ्तर में नौकरी भी देता है । रानी श्यामला ज्ञानचंद्र के साथ उच्छृंखल व्यवहार करती रहती है । रानी श्यामला की यह उच्छृंखलता जीवन राम के अनजाने नहीं । अपनी निस्सहायता एवं अंदर के घुटन के कारण जीवन राम हमेशा शराब की शरण लेता है । इधर जीवन राम पुन: बीस हज़ार रुपये का गबन करता है । इस सिलसिले में उसे हवालात में भेज दिया जाता है । जब रानी श्यामला से ज्ञानचंद्र के सामने बात खुल जाती है, तब ज्ञानचंद्र जीवन राम को हवालात से छुडाता है । ज्ञानचंद्र को देने केलिए बीस हज़ार रुपये इकट्ठा करने में रत जीवन राम की जीवन लीला समाप्त हो जाती है । श्यामला वेश्या जीवन चुन लेती है ।

भगवतीचरण वर्मा ने इस उपन्यास के माध्यम से नियतिवाद पर अपनी आस्था को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है । उनकी दृष्टि में सारी घटनायें किसी विशेष परिस्थिति में हो जाया करती हैं । रानी श्यामला और जीवन राम का जीवन लेखक की दृष्टि को सार्थक बनाता है ।

आधुनिक युग में स्त्री बिकाउ चीज़ बन गयी है। श्यामला का पति जीवनराम श्यामला को अन्य व्यक्तियों के साथ उच्छृंखल व्यवहार एवं शारीरिक संबन्ध जोडने की छूट देता है । जीवन राम ज्ञानचंद से कहता है, "आपने मेरी पत्नी ली, मैं ने आपका रुपया लिया, हिसाब किताब बराबर हो गया[47]।" चाहे परिस्थिति वश जीवनराम ने ऐसा कहा हो फिरभी उसकी उक्ति आधुनिक आर्थिक सभ्यता एवं मूल्यों के विघटन को प्रस्तुत करती है ।

सबहि नचावत राम गोसाई उपन्यास में भगवतीचरण वर्मा ने स्वातंत्र्योत्तर भारत का यथा तथ्य चित्रण प्रस्तुत किया है । इस उपन्यास में तीन पीढ़ियों के क्रमिक विकास का वर्णन राधेश्याम, जबरसिंह, रामलोचन पाण्डे के माध्यम से हुआ है । राधेश्याम को बुद्धि के प्रतीक के रूप में, जबरसिंह को भाग्य के प्रतीक के रूप में, रामलोचन पाण्डे को भावना के प्रतीक के रूप में लेखक ने चित्रित किया है । उस शिक्षा प्राप्त राधेश्याम अपनी बुद्धि के बल पर देश का बड़ा उद्योगपति बन जाता है । बेईमानी और मौकापरस्ती राधेश्याम के जीवन के धर्म बन जाते हैं । विश्वयुद्ध के समय वह फौज को घटिया माल सप्लाई करके धन कमाता है । स्वतंत्रता के बाद खद्दरधारी बन जाता है ।

पेशेवर डाकु का प्रपौत्र जबर सिंह राजनीति में प्रवेश करता है राजा गंभीरसिंह की पुत्री से उसका विवाह हो जाता है । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के राजनीतिक आदर्शों की उच्छृंखलता के कारण जबरसिंह गृहमंत्री बन जाता है । जबरसिंह की सहायता से रामलोचन पाण्डे को पुलिस विभाग में नौकरी मिल जाती है । ईमान्दारी, सत्य आदि मूल्यों पर विश्वास करने वाला रामलोचन गृहमंत्री जबरसिंह के मित्र उद्योगपति राधेश्याम को किसी अपराध के सिलसिले में गिरफ्तार करता है । इसी कारण रामलोचन को अपनी

---

47. वह फिर नहीं आयी - भगवतीचरण वर्मा - पृ.42

नौकरी से हाथ धोना पड़ता है । बाद में रामलोचन राजनीति के क्षेत्र में उतरकर चुनाव लड़ता है और जबरसिंह को हराता है । रामलोचन के चरित्र के माध्यम से लेखक ने आदर्श की जीत की ओर संकेत किया है ।

लोभी और दुराचारी व्यक्तियों के अनैतिक आचरण से किस तरह समूचे देश को कठिनाईओं का सामना करना पड़ता है । इसका आंशिक विवरण प्रस्तुत उपन्यास में मिलता है । नैतिकता के न होने पर पूंजीपति, उद्योगपति औरमंत्री लोग देशकेलिए किस तरह शाप बन सकते हैं इसका उदाहरण उपन्यास में मिलता है ।

'रेखा' में आकर भगवतीचरण वर्मा की सामाजिक दृष्टि वैयक्तिक दृष्टि में परिणत हो गयी है । उन्होंने व्यक्ति के मानसिक द्वन्द्वों को अभिव्यक्त करने का परिश्रम "रेखा" के माध्यम से किया है । उच्छृंखल जीवन बिताने की कामना करनेवाली रेखा अनेकों से शरीरिक संबन्ध स्थापित करती है । प्रो॰प्रभाशंकर की पत्नी होते हुए भी अपने जीवन में आये सभी पुरुषों के साथ खिलवाड करनेवाली रेखा आधुनिक जीवन के उच्छृंखल नारी के रूप को स्वर देती है ।

दर्शनशास्त्र के सुविख्यात प्रोफेसर प्रभाशंकर के मार्ग निदेशन में रेखा एम॰ए॰ की डिसरटेशन करती है । प्रभाशंकर से उसका परिचय बढ़ते बढ़ते प्रेम में परिणत हो जाता है, अपने से आयु में बडे प्रभाशंकर से वह विवाह कर लेती है ।

अध्यापक दाताराम की पत्नी देवकी से प्रभाशंकर का अवैध संबन्ध रहा है । विधुर प्रभाशंकर से देवकी शारीरिक संबन्ध स्थापित करके अपने पति को हेडमास्टरी की जगह दिलवाती है । प्रभाशंकर और रेखा का विवाह देवकी पसंद नहीं करती है ।

रेखा के भाई अरुण का दोस्त सोमेश्वर के प्रति रेखा के मन में एक प्रकार की भावना जागती है । वह सोमेश्वर से शारीरिक संबन्ध स्थापित करके अपनी पहली गलती करती है । फलत: वह सोमेश्वर से गर्भिणी बन जाती है, गुप्त रूप से गर्भपात भी करवाती है ।

सौन्दर्य प्रतियोगिता में प्रथम स्थान पानेवाली शीरी चावला की सगाई निरंजन कपूर से हो जाती है । शीरी की माता रत्ना चावला निरंजन को अपनी अतृप्त वासना की पूर्ति का साधन समझती है । शीरी चावला जानती है कि उसके होनेवाला पति माता के हाथों का खिल्लौना है और वह आत्महत्या करना चाहती है । रेखा निरंजन को रत्ना चावला के शारीरिक आकर्षण से मुक्त कराने केलिए उसके साथ भी शारीरिक संबन्ध जोड़ती है और रत्ना चावला से उसे अलग करती है । उधर रत्ना चावला रेखा के पति प्रभाशंकर से शारीरिक संबन्ध स्थापित करके रेखा से प्रतिशोध लेती है ।

इसके बाद पोलिश एम्बसी के कलचरल ऐटेची शशिकांत, मेजर यशवन्त सिंह आदि व्यक्तियों के साथ रेखा शारीरिक संबन्ध जोड़कर अपने वासनामय मन को शांत करने की कोशिश करती है । प्रभाशंकर जानता है कि रेखा युवा पुरुषों के पीछे पागल होकर भागती रहती है । इस जानकारी से प्रभाशंकर का जीवन टूटने लगता है ।

प्रभाशंकर के विभाग में आये योगेन्द्रनाथ को भी रेखा की माया के सामने अपने को समर्पित करना पड़ता है । अन्य पुरुषों की भाँति रेखा के सौन्दर्य से आकर्षित होकर भी रेखा से दूर रहने की इच्छा करने वाला योगेन्द्रनाथ अंत में उससे प्रेम करने लगता है, उसको पत्नी बनाना चाहता है ।

प्रभाशंकर योगेन्द्रनाथ को रेखा के आकर्षण से मुक्त कराने केलिए ओसलो में काम दिलाने का प्रयत्न करता है । योगेन्द्र नाथ रेखा को भी अपने साथ ओसलो ले जाने की आशा करता है, रेखा उसके साथ जाने केलिए तैयार भी हो जाती है । प्रभाशंकर को बीमारी की अवस्था में छोड़कर वह जब हवाई अड्डे पर पहुंचती है तब हवाई जहाज़ इटली केलिए उड चुका होता है । मजबूर होकर रेखा घर वापस आती है और देखती है कि दिल के दौरे के कारण प्रभाशंकर की मृत्यु हो गयी है । यह देखकर रेखा विक्षिप्त हो जाती है ।

भावतीचरण वर्मा ने 'रेखा' उपन्यास के द्वारा उच्च वर्गीय जीवन की विलासमय मनोवृत्तियों को आंकने का प्रयास किया है । प्रभाशंकर प्रोफेसर है फिर भी वह अनैतिक जीवन बिताता है । वह देवकी को अपनी अतृप्त वासना का शिकार बनाता है । पति को हेडमास्टरी दिलवाने के बहाने प्रभाशंकर पर जाल फेंकनेवाली देवकी दर असल काम से पीड़ित नारी ही दीखती है । उच्चवर्गीय समाज की नारी रत्ना चावला अपने भावी दामाद के साथ भी शारीरिक संबन्ध जोड़ने में संकोच का अनुभव नहीं करती ।

रेखा प्रभाशंकर को पति बनाकर अपने जीवन की पहली भूल करती है । अपने यौवन की प्यास को बुझाने केलिए नवीन नवीन शृंगार सामाग्रियाँ इकट्ठा करने की कोशिश वह करती रहती है । उसके इस उच्छृंखल जीवन से प्रभाशंकर का जीवन नष्ट हो जाता है और योगेन्द्रनाथ का नैतिक पतन हो जाता है । उपन्यास में आये बाकी सभी पुरुष पात्र स्त्री से खिलवाड करते अपनी कामुकता का परिचय देते हैं।उन लोगों केलिए आचरण की नैतिकता नामक कोई वस्तु नहीं है । उच्च वर्गीय लोग अपने जीवन का सुख और उस सुख को प्राप्त करने के तरीकों को ही नैतिक समझते हैं । समाज की दृष्टि में हेय इन संबंधों पर वे ग्लानि का अनुभव बिलकुल नहीं करते ।

सेक्स को नैतिकता से भिन्न देखने की कोशिश इस उपन्यास में की गयी है । व्यक्ति का सेक्स संबन्धी जीवन शिथिल भी हो सकता है । परंतु उसके फलस्वरूप जो परिणाम निकलते हैं, उनपर निगाह डालना आवश्यक है । देवकी अपने पति की पदोन्नति केलिए प्रभाशंकर के साथ संबन्ध जोड़ती है तो रेखा एक विशेष अवसर पर शीरी चावला की सिंदूर की रक्षा केलिए उसके होनेवाले पति से । सेक्स यहाँ पर एक साधारण शारीरिक क्रिया के रूप में दिखाई पड़ता है । जो आधुनिक परिवेश में स्त्री पुरुष संबन्धों की नैतिकता को पुनर्व्याख्यायित करता है ।

भगवतीचरण वर्मा ने इस उपन्यास में अपने नैतिक विचार यत्र तत्र प्रकट किये हैं । समाज नैतिक नियमों पर अवलंबित रहता है । "ये जितने नियम हैं, ये जितनी मान्यतायें हैं, सृष्टि इन्हीं पर तो अवलंबित हैं । एक निर्दिष्ट पथ, एक निर्दिष्ट जीवन मानव समाज की समस्त स्थापना इसमें है । इसको न मानना अराजकता और असफलता का मार्ग अपनाना है[48] । समाज के नियमों का पालन न करने से समाज में अराजक एवं दिशा हीनता की स्थिति उत्पन्न हो जायेगी । इसलिए समाज में जो नियम है उसका पालन समाज के हर सदस्य को करना चाहिए ।

हर बुरी बातों और बुरे कार्यों से सच्चरित्र मनुष्य भागता रहता है । धर्म एवं नैतिकता के प्रति आदर भावना से प्रेरित होकर ही लोग घृणित कार्य करने से हिचकते हैं, उससे दूर खडे हो जाते हैं । "यह भागना कायरता है, लेकिन यही कायरता हमें पाप और अपराध करने से रोकती है । मुझे अपनी इस कायरता से कोई शिकायत नहीं है । एक तरह का संतोष ही है । मुझे इस कायरता पर[49] । भगवतीचरण वर्मा की यह दृष्टि सामाजिक धरातल पर श्रेष्ठ लगती है ।

---

48. रेखा भगवतीचरण वर्मा - पृ.97

49. वही - पृ.273

हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के बाणभट्ट की आत्मकथा में नैतिकता

हज़ारी प्रसाद द्विवेदी का उपन्यास 'बाण भट्ट की आत्मा-कथा' हर्ष कालीन परिवेश में, भारतीय स्त्री की मर्यादा का चित्रण करता है । उपन्यास का नायक आवारा भट्ट जहाँ तहाँ मारा मारा फिरता है । कभी वह नाट्य मंडली का संगठन करता है, कभी पुराण बाँचता है कभी नट बन जाता है, कभी पुतलियों का नाच दिखाता है ।

कुमार कृष्ण वर्द्धन के पुत्र-जन्मोत्सव के अवसर पर राजा हर्ष वर्द्धन से मिलने केलिए बाणभट्ट आता है । रास्ते में पहली नाट्य मंडली की अभिनेत्री निपुणिका से बाण भट्ट की मुलाकात होती है । निपुणिका मौखरी वंश के छोटे महाराज के अंतपुर में बंदिनी विषम समर विजयी तुवर मिछिंद की कन्या भट्टिनी के उद्धार केलिए बाणभट्ट की सहायता की याचना करती है । कुमार कृष्णवर्द्धन की सहायता से बाणभट्ट भट्टिनी को मगध की ओर ले जाने की योजना बनाता है । मगध की ओर नौका में यात्रा करते समय ईश्वर सेन के सैनिक नौका पर आक्रमण करते हैं । उस झंझट में भट्टिनी अपनी आराध्य मूर्ति के साथ गंगा में कूद पड़ती है । निपुणिका भी भट्टिनी की रक्षा केलिए नदी में कूद पड़ती है । बाण भट्ट भट्टिनी की रक्षा करता है । लेकिन निपुणिका का पता नहीं चलता । भट्ट निपुणिका की खोज करता है । रास्ते में एक ओर विपत्ति का सामना करता है । महामाया की सहायता से उससे बच जाता है । उसे निपुणिका का पता चलता है । भट्ट निपुणिका और भट्टिनी को लोरिक देव के आश्रम में छोड़कर स्थाणीश्वर आ जाता है । कुमार कृष्णवर्द्धन की सहायता से वह हर्ष का राजकवि नियुक्त हो जाता है । भट्टिनी स्वतंत्र सम्राज्ञी के रूप में स्थाणीश्वर के आसपास ही रहने लगती है । हर्ष द्वारा रचित नाटिका के अभिनय के अवसर पर निपुणिका की मृत्यु हो जाती है । भट्टिनी से बाणभट्ट को अलग होना पड़ता है ।

इस उपन्यास में राजा लोगों की दुर्बल मनोवृत्तियों का परिचय स्पष्टत: मिल जाता है । उस समय के राजा लोग अपनी वासना की आग को बुझाने केलिए अनेक नारी शरीरों का उपयोग करते थे । उन लोगों का रनिवास वेश्याओं से भरा रहता था । स्त्रियाँ पहले से ही शोषण का शिकार रही है । इसका पता उपन्यास से प्राप्त होता है । दस्युओं के आक्रमण में पड़कर बंदिनी बनी भट्टिनी बनी/भट्टिनी और परिस्थितिवश अपनी मर्यादा को खोने केलिए मजबूर निपुणिका आदि पुरुष की कामुक मनोवृत्ति का परिचय देती है । बाणभट्ट स्त्री शरीर को देवी मंदिर समझता है । समाज की घृणा की पात्रा निपुणिका में भी वह मर्यादा और आदर्श देखता है । वह भट्टिनी से पद के गौरव के अनुसार व्यवहार करता है । इसलिए कि बाणभट्ट की कभी देवीमंदिर के समान पवित्र नारी शरीर को अपवित्र दृष्टि से देखना और अपवित्र व्यवहार करना नहीं चाहता ।

लेखक ने इस उपन्यास में हर्षकालीन भारत की स्त्री संबन्धी नैतिक धरातल को छूने का प्रयास किया है । उच्चकुलीन नारी भट्टिनी और निम्नवर्गीय नारी निपुणिका दोनों का जीवन एक सीमा तक समान है - दोनों पुरुषों के अत्याचार का पात्र बन जाती है ।

उचित अनुचित की नयी व्याख्या बाणभट्ट ने प्रस्तुत की है। बाणभट्ट बंधी बंधायी नैतिक संहिता पर विश्वास नहीं करता "साधारणत: लोग जिस उचित अनुचित के बंधे रास्ते से सोचते हैं, उससे मैं नहीं सोचता मैं अपनी बुद्धि से उचित अनुचित की विवेचना करता हूँ । मैं मोह और लोभ वश किये गये समस्त कार्यों को अनुचित मानता हूँ ।[50]

---

50. बाणभट्ट की आत्मकथा - हज़ारी प्रसाद द्विवेदी - पृ.27

लेखक ने यहाँ वैयक्तिक नैतिकता को श्रेष्ठता देने का, उसे तर्क संगत बनाने का प्रयास किया है । लेखक की दृष्टि में मोह और लोभ से परे अपनी बुद्धि के विश्लेषण में जो खरा उतरता है वही उचित है ।

भट्ट मनुष्य की प्रवृत्तियों के स्वाभाविक प्रस्फुटन की आशा करता है । उनकी दृष्टि में मनुष्य की "प्रवृत्तियों को दबाना भी नहीं चाहिए और उनसे दबना भी नहीं चाहिए । प्रत्येक व्यक्ति का देवता अलग होता है । देवता का परिचय शायद प्रवृत्तियाँ ही कराती है[51]।"

समाज में सत्य की बुरी स्थिति को द्विवेदीजी ने व्यक्त करना चाहा है । सत्य के स्थान पर झूठ को ही यदि कोई समाज व्यवस्था प्रश्रय देती है तो उस समाज में समाज के कल्याण कार्य केलिए झूठ का सहारा लेना पडेगा । "सत्य इस समाज में प्रच्छन्न होकर वास कर रहा है..... सत्य वह हैजिससे लोक का आंतरिक कल्याण होता है[52]। इसलिए द्विवेदीजी की दृष्टि में झूठ भीकिसी अवसर पर सत्य का स्थान लेता है । झूठ कहने से यदि किसी समाज का कल्याण होता है तो वही झूठ सत्य का काम करता है और असली सत्य अस्थान पर विष का काम भी करता है । "औषध के समान अनुचित स्थान पर प्रयुक्त होने पर सत्य भी विष हो जाता है[52]। द्विवेदी जी ने हमारा ध्यान सत्य की कालानुगत सापेक्षता की ओर आकर्षित किया है । उपन्यास में ऐतिहासिक कथा तो वर्णित है फिर भी समाज के विभिन्न विचारणीय तथ्यों पर उपन्यासकार ने प्रकाश डाला है ।

---

51. बाणभट्ट की आत्मकथा - हज़ारीप्रसाद द्विवेदी - पृ.100
52. वही - पृ.111
53. वही - पृ.112

पचास के बाद के उपन्यासकारों की नैतिक दृष्टि

अज्ञेय के उपन्यासों में नैतिकता

अज्ञेय का 'शेखर एक जीवनी' आत्मकेन्द्रित युवा के मानसिक संघर्षों की कहानी है । शेखर का जीवन दरअसल परिस्थितियों से समझौता नहीं विद्रोह है । शेखर के जीवन में यौन संबन्धों के प्रति आकर्षण है । इसलिए वह लडकियों से भावनात्मक संबन्ध रखता है । लडकियों के प्रेमाकर्षण में अपने को धन्य समझनेवाला शेखर स्वर्ग रसि का भागीदार भी बन जाता है । अपनी मौसेरी बहन शशि, बहन सरस्वती, शारदा, शांति जैसी लडकियाँ शेखर के आत्मकेन्द्रित व्यक्तित्व की व्याख्या करने का प्रयास करती दीखती हैं । इन लडकियों में शेखर की दृष्टि शारदा की ओर सबसे पहले कामुकता पूर्ण रहती है । बाद में मौसेरी बहन में वह अपनी आत्मीयता देखता है ।

शेखर स्वतंत्रता आन्दोलनों में भाग लेता है इस कारण जेल यात्रा करनी पडती है । उसकी अनुपस्थिति में शशि का विवाह हो जाता है । शेखर जेल से लौट आता है और वह शशि के पास जाता है । शेखर को जीवन में प्रेरणा देने वाली, उसपर सहानुभूति रखनेवाली शशि का वैवाहिक जीवन पति की शंकालु दृष्टियों के कारण नष्ट होने लगता है । उसकी शंका इतनी बढ़ जाती है कि एक दिन शशि घर से बहिष्कृत हो जाती है । वह शेखर के साथ रहने लगती है । शशि का स्वास्थ्य दिनों दिन बिगडता जाता है और एक दिन उसकी मृत्यु हो जाती है ।

अज्ञेय जी ने शेखर एक जीवनी के माध्यम से एक आत्मकेन्द्रित व्यक्ति की, उसकी मर्यादाओं की, आदर्शों की व्याख्या की है । शेखर का व्यक्तित्व अहं, भय और सेक्स की भावनाओं से पूर्ण है । अपनी बाल्यावस्था से ही विद्रोह करनेवाला शेखर सामाजिक नियमों की उपेक्षा करता है ।

मौसेरी बहन शशि के साथ अनोखा आत्मिक संबन्ध स्थापित करके शेखर समाज के स्त्री पुरुष संबन्धों की संकुचित दृष्टि के प्रति अपना विरोध प्रकट करता है । शेखर समाज को व्यक्तित्व के विकास में बाधा पहुँचानेवाली संस्था मानता है । इसलिए वह अपने जीवन में जो कुछ करता है,। उसमें समाज की बिलकुल चिंता नहीं करता । शेखर समाज के द्वारा निर्धारित नैतिक नियमों के आगे झुककर अपना जीवन बिताना नहीं चाहता । वैयक्तिक चेतना के प्रभाव स्वरूप शेखर इन सामाजिक मूल्यों को ठुकराकर नये प्रयोग की ओर अग्रसर होता है । इसलिए, परिवार जैसी संस्थायें शेखर की दृष्टि में कोई मूल्य नहीं रखती ।

उपन्यास में शेखर और शशि का आपसी संबन्ध नैतिक समस्या को ऊपर उठाने का प्रयास करता है । शेखर और शशि में नैतिक मर्यादाओं के प्रति कोई झुकाव ही नहीं बल्कि वे समाज के सामने अपने संबन्धों को प्रस्तुत करके बहन और भाई के बीच के संबन्धों की नयी समस्या को रूप देते हैं । अज्ञेय जी ने वैयक्तिक चेतना की परमोन्नत अवस्था के कार्यकलापों को मनुष्य के स्वाभाविक एवं वैध वृत्ति मानी है । जीवन के कुछ क्षण ऐसे होते हैं जिनसे एक प्रकार का आत्मिक संतोष मिल जाता है, उन क्षणों के संबन्धों पर अवैधता का रंग चढ़ाना व्यक्तिवादी चिंतन के अनुसार ठीक नहीं है । इस परिप्रेक्ष्य में शेखर और शशि के संबन्धों की परख करने से उनपर अनैतिक आचरण का आरोपलगाना अज्ञेय की मान्यताओं को समझने में सहायक सिद्ध नहीं होता ।

शेखर और शशि का संबन्ध चाहे प्रेमी प्रेमिका का हो चाहे भाई बहन का, उसे समाज शंका की दृष्टि से ही देखता है । इसलिए शशि का पति रामेश्वर शेखर और शशि के बीच के संबन्ध को अवैध संबन्ध मानकर उसे घर से निकाल देता है । यहाँ रामेश्वर की दृष्टि वैयक्तिक न होकर सामाजिक रही है । वह अच्छाई और बुराई का विश्लेषण सामाजिक दृष्टि से करता है ।

शेखर का व्यक्तित्व आत्म केन्द्रित है इसलिए स्त्री-पुरूष संबन्धों की सामाजिक मान्यताओं से उसे अरूचि पैदा होना स्वाभाविक ही है । स्त्री और पुरूषके संबन्धों पर वैयक्तिक दृष्टि रखनेवाला शेखर सामाजिक दृष्टि की परवाह बिलकुल नहीं करता । जब स्त्री और पुरूष अपनी कामना के अनुसार आपसी संबन्ध जोड्ते हैं और दोनों के मिलन जब उनके व्यक्तित्व का विकास करता है तब अनैतिकता की समस्या को उठाना व्यक्तिवाद के आधार पर गलत ही सिद्ध होगा ।

लेकिन शेखर जैसे व्यक्तिवादियों का जीवन समाज की दृष्टि में हेय है । समाज उन लोगों को स्वीकार नहीं करता बल्कि धिक्कारता है । यह तो निर्विवाद सत्य है कि शेखर जैसे आत्मकेन्द्रित व्यक्ति समाज की आचरण संहिता पर ठेस पहुँचाता है और समाज की बनी बनायी मर्यादाओं को नष्ट कर देता है[54] ।

'शेखर एक जीवनी' में अज्ञेय ने स्त्री पुरूष संबन्धों की नयी व्याख्या प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । अज्ञेय जी ने सामाजिक नैतिकता के स्थान पर जिस मूल्य धारणा को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है उस मूल्य धारणा को हम वैयक्तिक नैतिकता कह सकते हैं । शेखर एक जीवनी में अज्ञेय जी ने अपनी बुद्धि के सहारे नैतिकता का वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है । इस उपन्यास में आनुषंगिक रूप से पुरानी नैतिकता का समर्थन तो मिल जाता है । "जो भी भावना मानव और मानव के भेद को मिटाने की उसकी सीमाओं और बंधनों को अधिकाधिक प्रसारित करने की चेष्टा करती है वह आदर्श है जो रोष आदर्श केलिए है वह धर्म है । कोई भी मौलिक प्रवृत्ति तब गलत होती है जब हमारा आचारशास्त्र उसका समर्थन नहीं करता[54] ।

---

54. शेखर एक जीवनी - अज्ञेय - पृ.55

दूसरी ओर नैतिकता की निष्प्राणता के संबन्ध में भी अज्ञेय जी ने अपना मत प्रकट किया है । "हम लोगों की नैतिकता भौगोलिक नैतिकता है । विन्ध्याचल के इस पार उत्तर भारत है, उस पार दक्षिणी प्राय द्वीप है - उसी प्रकार यह नीति की रेखा है, एक निर्जीव और पिटी हुई लीक ।[55]

अज्ञेय जी की नैतिक भावना की व्याख्या इस तरह 'शेखर एक जीवनी' में दिखाई पड़ती है । वैयक्तिक नैतिकता और सामाजिक नैतिकता के भिन्न दायरों की संकीर्णता पहली बार इतनी सशक्तता के साथ हिन्दी उपन्यास में उभरी है ।

'नदी के द्वीप' उपन्यास में अज्ञेय जी ने भुवन, रेखा, चन्द्रमाधव जैसे प्रमुख पात्रों के सहारे वैयक्तिक नैतिकता की रूप रेखा की व्याख्या करने का प्रयास किया है । आधुनिक नारी रेखा का भुवन से फुलफिल हो जाना यही उपन्यास का प्रमुख पहलू रहा है ।

पति हेमेन्द्र रेखा के जीवन से अलग हो जाता है । रेखा की मुलाकात भुवन से हो जाती है । दोनों के बीच का परिचय बढ़ते बढ़ते प्रेम में परिणत हो जाता है । मर्यादा पुरुष भुवन के पुरुषत्व को जगाने केलिए रेखा कोशिश करती है । भुवन से शारीरिक संबन्ध जोड़ने में उसको सफलता मिलती है । इस सफलता को रेखा अपने जीवन की फुलफिलमेन्ट मानती है । इसी "फुलफिलमेन्ट" के परिणाम स्वरूप वह गर्भिणी बन जाती है । स्वच्छंद जीवन की कामना करनेवाली रेखा गर्भपात भी करवा लेती है । गर्भ गिराने में सहायता देनेवाले डॉ॰ रमेश चन्द्र से वह विवाह कर लेती है । रेखा के माध्यम से भुवन की आकांक्षाओं में गंभीर परिवर्तन आता है । भुवन अपनी प्रेमिका गौरा के साथ विवाह करने का निश्चय करता है । रेखा भुवन को शुभ कामनायें भेजती है ।

55॰ शेखर एक जीवनी - अज्ञेय - पृ॰206

आनुषंगिक होते हुए भी चन्द्रमाधव की कथा अत्यंत सशक्त है । चन्द्रमाधव स्वच्छंद प्रेम में विश्वास करता है । इसलिए वह अपनी पत्नी एवं बच्चों के साथ रहना नहीं चाहता । रेखा और गौरा से भी चन्द्रमाधव आकर्षित हो जाता है । लेकिन उनकी अनुकूलता के अभाव में वह एक अभिनेत्री से विवाह संबन्ध स्थापित करता है और कुछ दिन बाद कम्युनिस्ट बन जाता है ।

'नदी के द्वीप' में रेखा और चन्द्रमाधव के माध्यम से स्वच्छन्दतावादी मनोवृत्तियों का परिचय मिल जाता है । रेखा का भुवन के साथ शारीरिक संबन्ध स्थापित करना, चन्द्रमाधव का पत्नी कौसल्या और बच्चों से अलग होकर स्वच्छंद प्रेमी बनना आदि कार्य समाज में प्रचलित नैतिक मूल्यों के विरुद्ध हो जाते हैं ।

विवाहिता रेखा का जीवन अतृप्त है । इस अतृप्त मानस के मूलभूत कारण उसका अहं ही है । अनेक पुरुषों से शारीरिक संबन्ध जोडनेवाली रेखा स्त्री की आचरण संबन्धी नैतिक मान्यताओं को चुनौती देती है । भुवन से उसका फुलफिलमेंट हो जाना, गर्भपात करना, रमेशचन्द्र के साथ विवाह संबन्ध जोडना आदि रेखा के उच्छृंखल जीवन को व्यक्त करते हैं । रेखा सामाजिक बंधनों की उपेक्षा करती है । उसका यह व्यक्तित्व समाज की आचार संहिता पर ठेस पहुँचाता है ।

चन्द्रमाधव स्वच्छंद जीवन की कामना करता है । पत्नी और बच्चों को छोडकर रेखा और गौरा के प्रति आकर्षित हो जाना, अंत में एक अभिनेत्री के साथ विवाह संबन्ध जोडना आदि बातें उसके जीवन के नैतिक पतन को सूचित करती हैं । अपने सुख केलिए दूसरों को हानि पहुँचाने वाले चन्द्रमाधव का जीवन दर असल असामाजिक है ।

व्यक्तिवाद के परिप्रेक्ष्य में रेखा और भुवन के संबन्धों को परखनेपर इनपर अनैतिकता का आरोप करना गलत बात ही सिद्ध होती है । आधुनिक संदर्भ में स्त्री और पुरुष यदि आकर्षित हो, दोनों अपनी इच्छा से काम संबन्धों में जुड़ते हो तो उनपर अनैतिक आचरण का आरोप करना सही बात नहीं सिद्ध होती है ।

नदी के द्वीप में भी अज्ञेय जी ने नैतिकता संबन्धी नयी मान्यताओं को वाणी दी है । अज्ञेय जी नैतिक भावना के मूल में नकारात्मक प्रवृत्ति को ढूँढ़ निकालते हैं । "इस नैतिकता के मूल में निषेध है, इसलिए वह स्वयं नकारात्मक है । संसार के सभी स्मृतिशास्त्रों ..... में शाश्वत नीति के नाम पर मिलेंगी तीन समान सूत्र कि संतोष कर, सत्य बोल और अगम्य गमन न कर । गहरे जाकर देखें तो तीन बड़े निषेध । पहला मनुष्य की स्वाभाविक लोभ वृत्ति का निषेध, दूसरा उसके सहज भय का निषेध तीसरा उसकी सहज द्वन्द्ववृत्ति का अर्जन ।"[56] नयी नैतिकता की व्याख्या नदी के द्वीप के भुवन के ज़रिए मिलती है । "गौरा कोई किसी के जीवन का निर्देश करे यह मैं सदा से गलत मानता आया हूँ ..... दिशा निर्देश भीतर का आलोक ही कर सकता है, वही स्वाधीन नैतिक जीवन है बाकी सब गुलामी है ..... तुम्हारे भीतर स्वयं तीव्र संवेदना के साथ मानों एक बोध भी रहा है जो नीति का मूल है ।"[57] यहाँ अज्ञेय जी ने नैतिकता की अद्यतन व्याख्या प्रस्तुत की है ।

भारतीय सामाजिक संस्थाओं में विवाह संस्था अत्यंत गरिमा युक्त है । विवाह के संबन्ध में भी अज्ञेय ने अपनी सुधरी हुई दृष्टि का परिचय दिया है । "शादी तब होती जब तुम स्वयं अपनी इच्छा से उधर

---

56. नदी के द्वीप - अज्ञेय - पृ.206
57. वही - पृ.273

बढ़ते, स्वयं अपनी संगिनी चुनते फिर सारी दुनिया से लड़कर उसे ग्रहण करते[58]।

इस तरह नदी के द्वीप उपन्यास में बदलनेवाली नैतिक मान्यताओं की ओर स्पष्ट संकेत मिलता है। बदलनेवाली परिस्थितियों के अनुसार रूप परिवर्तन करनेवाली नैतिक मान्यतायें आधुनिक जीवन बोध से जुड़ी हुई लगती हैं।

फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यासों में नैतिकता

फणीश्वनाथ रेणु ने अंचल विशेष की आशाओं और निराशाओं की अभिव्यक्ति अपने उपन्यासों के ज़रिए की है। उन्होंने पिछड़े हुए मेरीगंज गांव के चित्रण के द्वारा देहाती वातावरण का उसकी अच्छाईओं और बुराईओं के साथ वर्णन मैला अंचल में किया है।

मेरीगंज गाँव में तीन जातीय दलों की प्रमुखता है : कायस्थ, राजपुत और यादव। कायस्थ टोली को अन्य लोग मालिक टोला कहते हैं। कायस्थ टोली के मुखिया विश्वनाथ प्रसाद मल्लिक, राजपुत टोली के मुखिया ठाकुर राम किरपाल सिंघ, यादवों के मुखिया रामखेलावन यादव मेरीगंज गांव के प्रमुख जातीय नेता हैं। मैला अंचल की प्रमुख कथा डॉ॰ प्रशांत और कमला के प्रेम और जीवन की है। इस कथा के साथ मेरीगंज गांव के व्यक्ति विशेषों की छोटी फिर भी रंगीली कहानियाँ भी मिल जाती हैं।

डॉ॰ प्रशांत विदेश जाने का अवसर त्यागकर मेरीगंज गाँव को मलेरिया और काला आज़ार का अनुसंधान क्षेत्र चुन लेता है। डॉ॰ प्रशांत घर घर जाकर लोगों की सेवा शुश्रूषा करता है और लोगों का प्यारा बन

58॰ नदी के द्वीप - अज्ञेय - पृ॰322

जाता है । विश्वनाथ प्रसाद की पुत्री कमला का इलाज डॉ॰ प्रशांत करता है । इलाज करते करते दोनों के बीच प्रेम का संबन्ध पुष्ट हो जाता है ।

मेरीगंज गाँव के मैले वातावरण की अभिव्यक्ति लक्ष्मी कोठारिन, महंत सेवादास, लरसिंध्दास, नागदास आदिके वासनामय जीवन एवं धर्म की आड में किये जानेवाले अनैतिक आचरणों से होने लगती है ।

मेरीगंज गाँव के मठ की दासी लक्ष्मी कोठारिन से महंत सेवादास यौन संबन्ध स्थापित करता है । सेवा दास की मृत्यु के उपरांत रामदास नया महंत बन जाता है । रामदास भी लक्ष्मी कोठारिन से वासनामय संबन्ध स्थापित करना चाहता है । लेकिन रामदास को उस प्रयत्न में सफलता नहीं मिलती और वह लक्ष्मी को आश्रम से निकाल देता है । लक्ष्मी कोठारिन गांधी भक्त बालदेव की शरण में चली जाती है ।

गाँव में चर्खा सेन्टर खोला जाता है । चर्खा सेन्टर की मास्टरनी मंगलादेवी डॉ॰ प्रशांत को उनके प्रयत्नों में सहायता देती है । मंगलादेवी सोश्यलिस्ट कालीचरन के प्रति आकर्षण का अनुभव करती है । उपन्यास में अंकित फुलिया की कहानी नीच जातों के जीवन के नैतिक पतन को व्यक्त करती है । खवासी की पत्नी फुलिया उच्चजात सहदेव मिश्र के साथ शारीरिक संबन्ध जोड़ती है और फिर रेलवे स्टेशन के पाईन्ट मेन के साथ जीवन बिताने लगती है ।

इधर डॉ॰ प्रशांत और कमला के बीच का संबन्ध गहरा बनता जाता है । डॉ प्रशांत से कमला गर्भिणी बन जाती है । क्रांतिकारी दलों से संबन्ध रखने के झूठे अपराध में डॉ॰ प्रशांत जेलखाना पहुँच जाता है । सहपाठिन ममता की सहायता से प्रशांत का उद्धार हो जाता है । प्रशांत प्रेमिका कमला को अपनी पत्नी के रूप में स्वीकारता है ।

रेणुजी ने इस उपन्यास में मेरीगंज गाँव के माध्यम से भारतीय ग्राम्य जीवन की झाँकी प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । यह उपन्यास अनैतिक आचरणों की, अंधविश्वासों की व्याख्या प्रस्तुत करता है । गैनेश की नानी को गाँववालों के द्वारा डाईन कहलवाकर और लक्ष्मी कोठारिन, फुलिया आदि के जीवन के अनैतिक कुरूप पक्षों का अंकन कर उपन्यासकार ने पापाचार में डूबे हुए मेरीगंज गाँव की कथा को यथार्थता की भूमि पर खडा किया है ।

महंत सेवादास और रामदास के द्वारा मठों में होनेवाले अधार्मिक आचरणों की, बलदेव जैसे गांधीवादियों की आदर्श हीनता की, फुलिया जैसी नीच औरतें एवं सहदेव मिश्र जैसे उच्चजातिवालों की कामुकता की. कहानी कहकर उपन्यासकार ने उपन्यास के नाम को सार्थक बनाया है ।

फणीश्वर नाथ रेणु लक्ष्मी कोठारिन के अभिशप्त व्यक्तित्व को उभारकर स्त्री-पुरुष संबन्धों की नैतिक व्याख्या प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं । लक्ष्मी कोठारिन अभिशप्त नारी है। वह आवारा अभागिन नारी, समाज के सामने प्रश्न चिह्न खडा कर देती है । लक्ष्मी कोठारिन को परि-स्थिति के प्रेरणावश महंत सेवादास के शारीरिक भूख की शिकार बनना पडता है । आवारा नारी हर समाज में क्रय विक्रय की, पुरुष की कामुकता की शिकार बनती है । इस सत्य की ओर लेखक ने लक्ष्मी कोठारिन के माध्यम से हमारा ध्यान आकर्षित किया है ।

उपन्यास से पता चलता है कि लक्ष्मी कोठारिन अपने को सुरक्षित रखने केलिए आश्रम में आ जाती है । लेकिन उसको महंत की अंक-शयिनी बननी पडती है । लेकिन फुलिया का उच्छृंखल जीवन परिस्थितियों के प्रभाव के कारण नहीं स्वयं उसकी कामुक मनोवृत्ति के फल स्वरूप ही है ।

विश्वनाथ प्रसाद की पुत्री कमला का आचरण उच्चवर्गीय जीवन के अनैतिक पक्षों को व्यक्त करता है । बिलकुल अपरिचित में डॉ प्रशांत के साथ उसका खुलकर व्यवहार विश्वनाथ प्रसाद की दृष्टि में गलत कार्य नहीं है । लेकिन जब वह गर्भिणी बन जाती है तब विश्वनाथ प्रसाद क्रोध से बावला हो जाता है ।

इस तरह मैला अंचल का सारा वातावरण अनैतिक आचरणों से युक्त प्रतीत होता है । लेखक ने मेरीगंज गाँव की नैतिक अराजकता की ओर हमारा ध्यान खींचा है ।

परती परिकथा में रेणुजी ने परानपुर गाँव के जीवन की अभिव्यक्ति की है । 'परती परिकथा' उपन्यास अनेक कथाओं में खंडित है फिर भी मुख्यकथा जितेन्द्र और ताजमनी की है । ताजमनी में जितेंद्र अपनी माता की झलक पाता है इसलिए ताजमनी से उसका संबन्ध एक अबोध युवक सा है । आलिंगन और चुम्बन तक सीमित जितेंद्र और ताजमनी के बं के संबन्धों पर परानपुर के लोग अवैधता का रंग चढ़ाते हैं । जितेन्द्र के मन चाहे क्रियाकलापों के कारण परानपुर के लोग उसपर पागल आदमी का लेबल चिपका देते हैं । अनेक बार कामुक पुरुषों के शिकार बननेवाली हराकती जितेन्द्र में देवता की झलक पाती है ।

जितेन्द्र परती भूमि को उपजाऊ बनाने केलिए कोशिश करता लेकिन अंधविश्वास से पागल परानपुर के लोग इस परिश्रम का विरोध करते इस स्थिति में जुत्तों जैसे अपढ़ राजनीतिज्ञों का पदार्पण होता है । हरिज अध्यापिका मलारी और भूमिहार युवक सुरेशलाल के विवाह से परानपुर गाँव में कोलाहल मच जाता है ।

इस उपन्यास के ज़रिए उपन्यासकार ने एक मामूली गाँव के सांस्कारगत विचारों एवं विरोधों की अभिव्यक्ति की है । लुत्तो जैसे राजनीतिज्ञों के द्वारा बेईमानी, घूसखोरी, दलाली जैसे झूठे आचरणों की व्याख्या प्रस्तुत करने के साथ ही साथ हरिजन अध्यापिका और भूमिहार युवक के विवाह के द्वारा सामाजिक विद्रोह का चित्रण भी लेखक ने किया है । जितेन्द्र के विरुद्ध पत्रों में वार्ता छापने के कार्य समाचार पत्रों के झूठे धर्म का पर्दाफाश करता है । ताजमनी और जितेन्द्र का संबन्ध विशेष प्रकार का है जिसके अंदर एक सेक्स की भावना तो है परंतु उसको कामुकता की कोटि तक लेखक ने नहीं पहुँचाया है ।

जितेन्द्र के कमरे में टाँगे नग्न चित्रों को देखकर परानपुर के लोग उसके उच्छृंखल जीवन एवं उसकी कामुकता का मिसाल पेश करते हैं । जितेन्द्र और ताजमनी के संबन्धों पर भी लोग अवैधता का आरोप करते हैं । लुत्तो जैसे स्थानीय राजनीतिज्ञों का, मन बहलाव केलिए वेश्याओं के घर जाना उनके पतित जीवन को प्रस्तुत करता है । परानपुर के कामुक लोग पराये घर की बहु बेटियों को बहकाने का परिश्रम करते हैं और अपनी बहु बेटियों को पर्दे के अंदर छिपाकर रखते हैं ।

रेणु जी के अन्य उपन्यासों की भाँति परती परिकथा भी सामाजिक एवं असामाजिक तत्वों को ऊपर उठाने का प्रयत्न करता है । एक साधारण गाँव के असली चित्रण करने का प्रयास लेखक ने किया है जहाँ झूठ बोलने की, रिश्वत लेने की, अन्यों पर मिथ्या आरोप करने की, शोषण की कथा भरपूर दृष्टिगत होती हैं ।

फणीश्वरनाथ रेणु का 'जुलूस' गोडियर गाँव और नबी नगर कोलनी की कहानी है । नबी नगर कोलनी शरणार्थियों की कोलनी है । गोडियर गाँव के लोग नबी नगर कोलनी को पाकिस्तानी टोला कहते हैं । नबी नगर एवं गोडियर गाँव के बीच अलगाव की भावना जन्म लेती है ।

नबी नगर कोलनी में दीदी ठकुराईन अर्थात् पवित्रा देवी की प्रतिष्ठा है । उसकी मंगनी विनोद मुखर्जी नामक व्यक्ति से हो चुकी थी । लेकिन पवित्रा की बालसखा कासिम दादा से विनोद की हत्या हो जाती है । अभागिन पवित्रा देवी गोडियर और नबी नगर कोलनी के बीच की अलगाव की भावना को समाप्त करने की कोशिश करती है ।

गोडियर गाँव का तालेवर गोढ़ी अत्यधिक संपन्न व्यक्ति है । तालेवर गोढ़ी मंत्र तंत्र जानता है । अपने ईश्वरीय साधना को पूर्ण करने केलिए सवर्ण औरतों को मंगवाता है । तालेवर गोढ़ी पवित्रा देवी को चाहता है और इसकेलिए तंत्र मंत्र करता है । पवित्रादेवी गोडियर और नबी नगर कोलनी के बीच की वैमनस्य भावना को दूर करने के प्रयत्नवश तालेवर गोढ़ी को घर आती है । गोडियर गाँव की साधारण जनता पवित्रादेवी के तालेवर गोढी का घर आना मंत्र का प्रभाव स्वरूप ही समझती है । लेकिन उसके पवित्रादेवी बेटी बेटी जैसी लगती है । तीर्थ यात्रा के अवसर पर भी औरतों से संबन्ध जोड़नेवाले तालेवर गोढ़ी के मन का परिवर्तन पवित्रा देवी के प्रभाव के कारण ही होता है ।

दीपा की माँ सरस्वती देवी अध्यापिका है । उसके ऊपर बदचलन की शिकायत रहती है । वह पारसनाथ और रामजयसिंह जैसे व्यक्तियों से अवैध संबन्ध जोड़ती है ।

पंडित रामचन्द्र चौधरी गोडियर गाँव का प्रमुख व्यक्ति है । उसकी सारी संपत्ति पुत्र काम-देव चौधरी की बुरी आदतों के कारण नष्ट हो जाती है । निकल गयी संपत्ति को दुबारा प्राप्त करने केलिए रामचंद चौधरी और उसका पुत्र गाजे का व्यापार करते हैं ।

नबी नगर कोलनी की बैठक में पवित्रा देवी की कटु आलोचना हो जाती है और वह त्याग पत्र देती है । पटना के प्रसिद्ध अंग्रेज़ी साप्तहिक 'इन्कलाब' के प्रतिनिधि नरेन्द्रवर्मा से उसका परिचय हो जाता है । पवित्रादेवी नरेन्द्रवर्मा में विनोद की झलक पाने लगती है ।

गोडियर गाँव में भीषण प्रलय होता है । उस समय भी पवित्रा देवी गाँव की सहायता करती है, और अपने को एक विशाल परिवार की बेटी समझने लगती है ।

उपन्यासकार ने ब्राह्मण चौधरी, तालेवर गोढ़ी, सरस्वती देवी के माध्यम से उच्चवर्गीय एवं शिक्षित लोगों की बुरी मनोवृत्तियों की ओर संकेत किया है । तीर्थयात्रा के समय पर भी स्त्री से संबन्ध स्थापित करनेवाला तालेवर गोढ़ी, अध्यापिका होते हुए भी वासना से विवश होकर जीवन बितानेवाली सरस्वतीदेवी, गाँजा जैसे नशीली वस्तुओं का व्यापार करनेवाला ब्राह्मण चौधरी आदि गोडियर गाँव के नैतिक पतन के नमूने ही सिद्ध होते हैं ।

फणीश्वर नाथ रेणु का 'कितने चौराहें' स्वतंत्रता संग्राम की पृष्ठभूमि में अररियाकोर्ट के जनजीवन की कथा का वर्णन प्रस्तुत करता है । उपन्यास के नायक मनमोहन की शिक्षा अररिया कोर्ट स्कूल में होती है ।

उस समय वह दूर के रिश्तेदार मोहरिल मामा के साथ रहता है । मोहरिल मामा की बेटी एवं साइमन बायकोट मोर्चे के शहीद सुन्दर राय की विधवा शीरबतिया मनमोहन को पाते ही आत्म विभोर हो जाती है और उसके प्रति पुत्रवत् व्यवहार करती है । कभी उसके बाल संवारती है, कभी उसको प्रेमपूर्वक चूमती है कभी उसके साथ सो जाती है । शीरबतिया के इस व्यवहार से उसकी माता और पिता भी गलत ढंग से समझने लगते हैं । मोहरिल मामा घर में ही दारू का सेवन करता है । उसके घर में हमेशा गाली गलौज होती रहती है । इस वातावरण से ऊब कर मनमोहन सन्यासियों के द्वारा संचालित स्टुडेंट्स होम में रहने लगता है ।

आश्रम का जीवन मनमोहन की रुचि के अनुकूल है । इसलिए वह पूर्ण रूपेण आश्रम के किशोर क्लब के क्रियाकलापों में भाग लेता है । मनमोहन अपने दोस्त प्रियोदा की प्रेरणा से स्वतंत्रता संग्राम में हिस्सा लेता रहता है । हड़तालके दिन जुलूस में भाग लेकर मनमोहन अपने देश प्रेम की भावना को व्यक्त करता है । ट्रेज़री पर भारतीय झंडा फहराने के प्रयत्न में कृत्यानंद शिवनाथ, प्रियोदा आदि मारे जाते हैं । मनमोहन अपनी प्रेमिका नीलू के बलपूर्वक प्रयत्न के कारण बच जाता है । उसका हृदय आत्मग्लानि से भर जाता है।वह गृहस्थ जीवन की उपेक्षा करके स्वामी सच्चीदानंद बन जाता है । मनमोहन का भाई फ्लैट लेफटनेन्ट जन मोहन भारतीय-पाक युद्ध में मारा जाता है इस संवाद से स्वामी सच्चिदानंद चंचल बन जाता है और अपनी माता के पास दौड जाना चाहता है । लेकिन उसकी अभिलाषा पर विराम की विजय होती है ।

इस उपन्यास के ज़रिए उपन्यासकार ने "अरिया कोर्ट" अंचल के जनजीवन को वाणी देने का प्रयत्न किया हैं । मोहरिल मामा के घर के वातावरण का चित्रण निम्नवर्गीय जीवन के नैतिक पतन को व्यक्त

करता है । नामी पियक्कड मोहरिल मामा के परिवार को समाज बुरी निगाहों से देखता है । अवसर बे अवसर पर गाली गलौज, घर में ही दारु का सेवन, मामी और मटरु का भी उसमें सहयोग एक निम्नवर्गीय परिवार की नैतिक यथार्थता को प्रस्तुत करते हैं ।

रेणुजी के उपन्यास ग्रामीण जीवन के अनैतिक आचरणों की व्याख्या करके ग्रामीण जनता के असली जीवन का वर्णन प्रस्तुत करते हैं । वैसे नैतिकता को एक समस्या के रूप में स्वीकार कर उसके विभिन्न पक्षों का सर्वांगीण विवेचन उनका लक्ष्य नहीं है । समूची रचनाओंमें समाज में व्याप्त अनैतिकता का चित्रण मिलता है । आचरण की भ्रष्टता से लेकर राजनैतिक जाँजली तक में नैतिक अवमूल्यन का बोध पूर्णतया झलकता है । इधर रेणु ने अन्य उपन्यासकारों की भाँति नैतिकता के पक्ष या विपक्ष में लंबे चौडे वक्तव्य नहीं दिये हैं फिर भी चारित्रिक दृष्टि से उनके पात्र समाज के नैतिक पतन के विरुद्ध जनमत को खडा कर देते हैं । देहातों में व्याप्त नैतिक पतन को एक रोग ग्रस्त मनोवृत्ति के रूप में रेणु ने देखा है और इससे जन मुक्ति की कामना भी की है ।

नागार्जुन के उपन्यासों में नैतिकता

नागार्जुन के उग्रतारा में एक गंवारिन युवति की परिस्थिति जन्य विषमताओं और उसके आदर्शों की अभिव्यक्ति मिलती है । विधुर कामेश्वर और विधवा उगनी आपस में प्रेम करते हैं । लेकिन उन दोनों का विवाह समाज स्वीकार नहीं करता । गांव की मर्यादा को उल्लंघन करने की असमर्थता के कारण उगनी और कामेश्वर गांव से भाग जाते हैं । इस सिलसिले में दोनों को कारावास का दंड भी भुगतना पडता है । जिला जेल के रतनपुर के सिपाही जमादार भभीखन सिंह जेल से मुक्त उगनी को स्वीकारता है । परिस्थिति की विषमता के कारण उसे जमादार की पत्नी बननी पडती है।

उगनी भभीखन सिंह से गर्भिणी हो जाती है । जेल से छूटे कामेश्वर का मिलन उगनी से रतनपुर में होता है । सिपाही के द्वारा गर्भिणी होकर भी कामेश्वर उगनी को अपनी पत्नी के रूप में स्वीकारकलेता है । जमादार के प्रति अपना आदर एक चिट्टी के द्वारा उगनी प्रकट करती है ।

इस उपन्यास में एक-निष्ठ प्रेम का वर्णन नागार्जुन ने किया है विधवा का विवाह समाज स्वीकार नहीं करता । विधवा का विवाह करना समाज में अनैतिक आचरण समझा जाता है । कामेश्वर, उगनी के अन्य व्यक्तियों के साथ हुए शारीरिक संबन्धों को तुच्छ मानकर प्रेम की श्रेष्ठता को अपने जीवन के द्वारा प्रकट करता है । मन की पवित्रता कामेश्वर की दृष्टि में शारीरिक पवित्रता से श्रेष्ठ है । इसलिए उगनी का जमादार की पत्नी बन जाना उससे गर्भिणी हो जाना कामेश्वर केलिए अनैतिक बातें नहीं होतीं ।

यहाँ नागार्जुन ने नैतिकता को वैधता और अवैधता की समस्या से जोड्कर देखने का प्रयास किया है ।

स्वतंत्रता संग्राम की पृष्ठभूमि में लिखा गया 'बलचनमा' उपन्यास जमीन्दारी मनोवृत्तियों का परिचय देता है । उपन्यास यह सूचित करता है कि साधारण किसान वर्ग का जीवन जमीन्दारों की दुर्वासनाओं का शिकार होता है ।

बलचनमा एक साधारण किसान है । उसके द्वारा उपन्यास में जमीन्दारी प्रथा की कुरूपताओं की अभिव्यक्ति मिलती है । फूल बाबू नामक ज़मीन्दार के नौकर के रूप में बलचनमा पटना जाता है । फूलबाबू स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेकर जेल जाता है और अपनी पढ़ाई को समाप्त कर देता है ।

बलचनमा अपना गांव वापस आता है और बहन रेबनी का गौना कराने केलिए कोशिश करता है । गांव वापस आने पर बलचनमा किसान बन जाता है । इस बीच छोटे मालिक रेबनी से बलात्कार करने का प्रयास करता है । किसानों के विरुद्ध किये जानेवाले अत्याचारों पर वह आवाज उठाने लगता है । इस सिलसिले में बलचनमा को बहुत अधिक परेशानियां उठानी पड़ती हैं ।

बलचनमा में सामंतीय नैतिकता की व्याख्या की गयी है । जमीन्दारों की दृष्टि में स्त्री केवल भोग की वस्तु है । इसलिए चाहे नौकरानी हो चाहे दूसरों की बहु बेटी उससे मनचाहा व्यवहार करते हैं । "किसी की लड़की सयानी हुई नहीं कि निशाना साधने लग जाते हैं वह नहीं कि बहन बेटी सब की बराबर होती है ।"[59] बलचनमा उन जमीन्दारों के प्रति अपनी घृणा व्यक्त करता है जो जमीन्दार स्त्री को भोग की चीज़ मानते हैं । "मैं नहीं चाहता था कि मेरी बहन के तन पर उन कुत्तों की चंगुल पड़े, मैं नहीं चाहता था कि मेरी मां अपनी लड़की को आमदनी का ज़रिया बनाये । गरीबी नरक है, भैया नरक, चावल के चार दाने छींटकर बहेलिया जैसे चिड़ियों को फंसाता है उसी तरह ये दौलतवाले गरजमंद औरतों को फंसा मारते हैं ।[60] बलचनमा की बहिन को भी अठन्नी दिखाकर आकर्षित करने का प्रयास छोटा मालिक करता है । लेकिन ज़माना बदल गया था । "जब वे नौजवान थे तो इसी गाँव में दुअन्नी के बदले जवान लड़की मिलती थी[61]

यहां उपन्यासकार ने सामंतीय भोग लिप्सा की ओर संकेत किया है । दर्जी के साथ भाग निकलनेवाली गौरी शंकर चौधरी की विधवा-बेटी जयमंगला, बलचनमा को अपनी वासना की तृप्ति का उपकरण बनाने केलिए कोशिश करने वाली सुखिया आदि के माध्यम से युवा विधवा नारी की

---

59. बलचनमा - नागार्जुन - पृ.70
60. वही - पृ.71
61. वही - पृ.78

मानसिक यंत्रणाओं की, अतृप्त आशाओं की एवं उच्चवर्गीय नारी की काम पिपासा की व्याख्या करने की कोशिश उपन्यासकार ने की है । राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार का चित्रण भी नागार्जुन ने फूल बाबु जैसे व्यक्तियों के माध्यम से किया है ।

नागार्जुन का 'बाबा बटेसरनाथ' भी जमीन्दारों के जीवन की असली अभिव्यक्ति करता है । स्वतंत्रता संग्राम की पृष्ठभूमि में लिखा गया यह उपन्यास कांग्रसियों और कम्युनिस्टों के बीच की टकराहट को व्यक्त करता है । स्वतंत्रता संग्राम के समय सभी के सभी जमीन्दार कांग्रेसी बन गये इन कांग्रसियों के भ्रष्टाचार से ग्रामीण जनता संत्रस्त होने लगी । फलत: जेकिशन जैसे नवशिक्षित युवा वर्ग कम्युनिज़म के प्रति सहानुभूति रखने लगे । पूंजीपतियों के द्वारा किये जानेवाले अत्याचारों के विरोध का वर्णन करके नागार्जुन ने उभरती नयी चेतना को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है । नागार्जुन के इस उपन्यास में किसी विशेष नैतिक समस्या को उठाया नहीं गया है । केवल जमीन्दारों के अनैतिक, अत्याचारमय जीवन की अभिव्यक्ति करना उनका विशेष लक्ष्य प्रतीत होता है ।

नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में नैतिकता को एक समस्या के रूप में प्रस्तुत नहीं किया है । परंतु उनके सभी पात्र किसी न किसी घटना से इस तरह बंधे रहते हैं कि नैतिक और अनैतिक समस्यायें स्वयमेव उनके सामने उभरने लगती हैं । प्रगतिवादी दृष्टिकोण को अपनानेवाला लेखक स्त्री-पुरुष संबन्धों को और उनकी वैधता और अवैधता को बिना किसी पूर्वाग्रह के, प्रस्तुत किया है । यह उनकी नयी दृष्टि का परिचायक है ।

राजेन्द्रयादव के उपन्यासों में नैतिकता

श्री राजेन्द्र यादव का उपन्यास, उखडे हुए लोग में युद्धोत्तर कालीन स्त्री पुरुष के बिगडते, बदलते, बनते संबन्धों की और राजनीतिक नेताओं के अनैतिक आचरणों की अभिव्यक्ति मिलती है ।

शरद और उसकी प्रेमिका जया घर से भागकर देशबन्धु के स्वदेश महल में शरण पाती है । वहाँ उन लोगों का परिचय सूरज नामक संपादक से हो जाता है । मायादेवी देश बंधु के साथ उसके रखैल के रूप में रहती है । मायादेवी की पुत्री पद्मापुरी और शरद क्लास मेट रहे हैं । स्वदेश महल में शरद और जया विवाह संबन्ध न जोडकर साथ रहने लगती हैं ।

खद्दर पोशी देश बन्धु बहुत बोलता है, गरीबों के प्रति आंसु गिराता है, थोडी देर बाद हंसी मज़ाक भी करता है । देश बन्धु के विभिन्न मुखौटे देखकर शरद अचंभे में पड जाता है । मायादेवी अपने पति की हत्या करके अपनी कामनानुसार देशबन्धु की रखैल बन जाती है । हमेशा पदमापुरी को पदमा बेटी पुकारनेवाला देश बन्धु उसके साथ बलात्कार करने का प्रयास करता है ।

सूरज का व्यक्तित्व क्रांतिकारी है । देशबन्धु के मिलों के मज़दूरों पर हमदर्दी करके लेख लिखने की वजह से सूरज को पत्र के संपादकत्व से हाथ धोना पडता है ।

पदमा के साथ बलात्कार करने का परिश्रम हो जाने पर शरद और जया देशबन्धु के असली चेहरे की पहचान करती है और देशबन्धु के स्वदेश महल से भाग जाती है ।

इस उपन्यास के शरद और जया आधुनिक युग के स्त्री और पुरुष का प्रतिनिधित्व करते हैं। दोनों साथ साथ जीवन बिताते हैं, विवाह के रस्म को पूरा न करके। समाज की दृष्टि में विवाह सूत्र में बँधित होने के पहले स्त्री और पुरुष का साथ साथ रहना अवैध आचरण बन जाता है। लेखक ने मायादेवी और पदमा के चरित्रचित्रण द्वारा स्वच्छंद आचरण की विषय का परिचय दिया है। मायादेवी देशबन्धु को पाने के प्रयास में अपने पति की हत्या करने में भी नहीं हिचकती है और देश बन्धु के रखैल बनकर अपनी कामुकता एवं अधार्मिकता का परिचय देती है। माता की गुप्त आचरणों को जानते हुए भी चुप होकर सब कुछ सहनेवाली पदमा "ये सब क्यों होता है, कैसा होता है" जैसे प्रश्न प्रस्तुत करने में असफल ही दीखती है।

देशबंधु देश का महान नेता है। वह खद्दर धारण करता है। एक ओर वह गरीबों पर रोता है तो दूसरी ओर मज़दूरों का शोषण करके धनार्जन करता है। वैयक्तिक जीवन में वह अनैतिक कार्य कर रहा है। मायादेवी के साथ नाजायज संबन्ध जोड़कर वह अपनी आदर्शहीनता का परिचय देता है। क्रांतीकारी व्यक्तित्ववाले सूरज को संपादकत्व से हाथ धोना पड़ता है क्योंकि देशबन्धु उच्चविचारों को अपने पत्र द्वारा पनपना नहीं देता।

लोग गरीबी हटाने केलिए मात्र नारा लगाते फिरते हैं और अपनी कमाई की वृद्धि करते हैं। भारतीय राजनीतिक क्षेत्र पूँजीपतियों एवं नकली समाजवादियों से खचाखच भरा है। गरीबी हटाने के कार्यान्वयन के तरीके में मत भेद होने के कारण, ये राजनीतिज्ञ कोई कार्य नहीं करते, आपस में लड़ते झगड़ते रहते हैं।

इस प्रकार 'उखड़े हुए लोग' में लेखक ने स्वातंत्र्योत्तर भारत के राजनीतिक एवं सामाजिक क्षेत्र के उखड़े रूपों का पर्दाफाश किया है । इस उपन्यास में नैतिकता संबन्धी पूर्व मान्यतायें उखड़ गयी हैं । वैभवपूर्ण जीवन बिताने केलिए, पति की हत्या करने केलिए समाज सेविका का मुखौटा धारण कर मायादेवी अत्याचार का प्रश्रय लेती है । उधर देशबन्धु अपनी शारीरिक भूख को मिटाने केलिए नये नये रिश्तों के आधार पर संबन्ध बढ़ाता है और पद्मा पर बलात्कार करके संबन्धों के खोखलेपन को व्यक्त करता है । इस तरह इस उपन्यास में नैतिक अराजकता और आचरण की अर्थ हीनता आदि दिखाई पड़ती है ।

राजेन्द्र यादव ने उखड़े हुए समाज की नैतिक समस्याओं को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । पुरानी नैतिकता और आधुनिक नैतिकता के बीच की टकराहट का चित्रण उनके इस उपन्यास में प्राप्त होता है । लोग जानते हैं कि पुरानी नैतिकता की प्रासंगिकता अब नहीं रही है । लोग पुरानी नैतिकता को अनावश्यक नियम, समाज के विकास में अड़चन पैदा करनेवाली चीज़ मानने लगे हैं । "बौद्धिकता ने हमारे सारे विश्वासों की जड़ें हिला दी है भगवान, धर्म, नैतिकता, समाज व्यवस्था, आदर्श सभी के प्रति एक अविश्वास । एक भयंकर अविश्वास हमारी नस नस में समाया हुआ है - क्योंकि उन सब का हमने निर्मम रूप से विश्लेषण कर डाला है और पाया है कि सचमुच हम बन्दरिया के बच्चे की तरह इन मरी हुई चीज़ों को और कैसे इतने अधिक समय छाती से चिपकाये रहे हैं[62] ।

---

62. उखड़े हुए लोग - राजेन्द्र यादव - पृ.229

इन मरी हुई नैतिक मान्यताओं के स्थान पर लोग नयी नैतिक मान्यताओं की स्थापना करना चाहते हैं । लेकिन ..... "हम नयी नैतिकता की, नये आदर्शों की बात करते हैं, नये समाज की बात करते हैं और इतने ज़ोर से करते हैं कि अपने चारों ओर एक भ्रम, एक मायाजाल बनाये रखना चाहते हैं कि ये बातें सच है लेकिन सच पूछा जाय तो उनमें से एक भी सिद्धांत, एक भी आदर्श पर हमें विश्वास नहीं है ।[63]

जब हम जीवन की नैतिक आचरण संबन्धी मान्यताओं पर विचार करने लगते हैं तब सहसा दिमाग में केवल सेक्स की बात उठने लगती है इसलिए लोग सेक्स की दृष्टि से, स्त्री के उच्छृंखल व्यवहार की दृष्टि से, अच्छी या बुरी, नैतिक या अनैतिक का निर्धारण करते हैं । यादवजी कहते हैं ; "क्या सेक्स के अतिरिक्त आदमी अपने आप में कुछ नहीं है । यदि सेक्स की दृष्टि से वह शुद्ध,एक निष्ठ है तो अच्छा है - या अच्छी है वर्ना कितनी भी अच्छाई उसमें क्यों न हो, उसका कोई महत्वमूल्य नहीं है । हमारा संस्कार गत और धार्मिक दृष्टिकोण जितना ही सेक्स को नगण्य, महत्वहीन और साधारण बताने के नारा लगाता है, व्यवहार में उतना ही, अपने आप को उस पर केन्द्रित कर लेता है । मनुष्य की सारी अच्छाई और बुराई सब कुछ उसीसे नापता है ।[64]" अपनी इस दृष्टि के समर्थन केलिए यादव जी ने सोमर सेट मॉम के कथन को प्रस्तुत किया है । "जब हम सदाचार की, वर्च्यु की बात करते हैं तो हमारे दिमाग में सिर्फ एक चीज़ होती है वह है सेक्स ।"[65]

---

63. उखडे हुए लोग - राजेन्द्र यादव - पृ.229
64. वही - पृ.213
65. वही - पृ.213

उपन्यासकार ने नैतिकता की अत्यंत नवीन व्याख्या प्रस्तुत की है । उनकी दृष्टि में निराकार प्रशंसा और साकार प्रशंसा में मूलगत अंतर तो नहीं है । "स्त्री से आप यदि यह कहते हैं कि आप बडी अच्छी हैं तो कुछ नहीं बिगडता । लेकिन यदि इसी सूक्ष्म या निराकार प्रशंसा के बदले आप उसका चुम्बन लेकर उसी प्रशंसा को साकार कर देते तो आपके सारे धर्म और नैतिकता के टट्टू चीखने लगते हैं ।[66]"

राजेन्द्र यादव ने विवाह की पवित्रता एवं गरिमा को बनाये रखने केलिए स्त्री को पुरुष के समानाधिकार देने की आशा की है । "विवाह का जो रूप वास्तव में स्त्री की गरिमा और इज्जत को सुरक्षित रखेगा । वह तो तब तक संभव नहीं है जब तक कि इच्छा और अर्थ दोनों दृष्टियों से नारी को बराबर का स्थान मिले । आज तो नारी के श्रम का उचित मूल्य ही नहीं आंका जाता और शरीर को खिलौना बना दिया है[67]

यादवजी के 'सारा आकाश, 'शह और मात,' "अन देखे अन जान पुल" 'आदि उपन्यासों में नैतिक समस्याओं का अंकन उतना नहीं मिलता जितना उखडे हुए लोग में मिलता है । 'सारा आकाश' संयुक्त परिवार की विषम परिस्थितियों का अंकन करता है । उपन्यास की शिक्षिता नारी प्रभा, पर्दा न धारण करती है। पर्दा न धारण करने के कारण प्रभा पर उच्छृंखल व्यवहार का आरोप सास और ससुर करते हैं । मुन्नी के जीवन के द्वारा स्त्री पर किये जानेवाले अत्याचारों का वर्णन मिलता है । पति की पशुता के कारण मुन्नी की मृत्यु हो जाती है । यहाँ लेखक ने किसी विशेष नैतिक समस्या को ऊपर उठाने का प्रयत्न नहीं करता है । फिर भी उपन्यास की घटनाओं में नैतिकता और अनैतिकता की समस्याओं का ज्ञान मिलता है ।

'शह और मात' कथाकारों के भाव जगत् की अभिव्यक्ति करता कथाकार उदय एक जासूस की तरह अन्यों के जीवन की इतनी सूक्ष्म परख करता अपर्णा, सुजाता जैसी स्त्रियाँ उसकी परख एवं सूक्ष्म दृष्टि का विषय मात्र बन जाती हैं। लेखक ने उच्च कुलजाता अपर्णा के जीवन की विडंबनाओं का चित्रण किया है। पति के नपुंसकत्व के कारण अपर्णा उससे अलग हो जाती है। अपर्णा राजकुमारी है इसलिए वह दुबारा विवाह संबन्ध जोड नहीं सकती। पति नपुंसक होकर भी पति के प्रति पतिव्रता धर्म का निबाह करना कितनी विषम स्थिति है। स्त्री चाहे राजकुमारी हो या साधारण स्त्री हो पुरुष उससे एक निष्ठ प्रेम चाहता है।

नैतिक आचरण की जिम्मेदारी सिर्फ औरत पर ही रह गयी है औरत जो कुछ चाहती है, वह कर नहीं सकती, समाज उसकी छूट नहीं देता। स्त्री वह राजकुमारी हो या नौकरानी हो उसकी हालत हमेशा एक जैसी है। "उसकी प्रतिष्ठा उसकी शरीर शुद्धता की परंपरागत मान्यता पर है।"[68]

'अनदेखे उन जानपुल' उपन्यास में एक काली कलूटी लडकी निन्नी के जीवन की आकांक्षाओं एवं विषमताओं की अभिव्यक्ति मिलती है। काली कलूटी लडकी होते हुए भी उसके प्रति समाज के नियम निर्दय ही होते हैं। एक स्त्री का किसी अन्य व्यक्ति के साथ बाहर जाना, किसी से खुलकर बातें करना, ये सभी बातें समाज की दृष्टि में बुरी हैं।

उपन्यास में शिक्षा क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार का वर्णन मिलता है "अच्छे नम्बरों में पास होने केलिए, प्रोफेसरों की तारीफ लेने केलिए गोरी चमडी की ज़रूरत है। ~~जितनी ये उंची से उंची तारीफ लेने केलिए गोरी चमडी की ज़रूरत है।~~ जितनी ये उंची से उंची तारीफ पानेवाली लडकियाँ है,

---

"दद्य
68. शह और मात - राजेन्द्र यादव - पृ.59

उनके गरेबान में झांककर देखो, वे सचमुच प्रतिभा और योग्यता से वहां पहुंची हैं या कुछ और कीमत भी इसकेलिए उन्हें चुकानी पडी है[69]। चाहे काली कलूटी निन्नी ने ईर्ष्यावश सुन्दर लडकियों के संबन्ध में ऐसी बात कही हो फिरभी उपर्युक्त कथन आज के संदर्भ में बहुत ही खरा उतरता है ।

राजेन्द्र यादव जी ने आधुनिक युग की बदलती परिस्थितियों का चित्रण इसतरह अपने उपन्यासों के ज़रिए पुस्तुत कियाहै। समाज की विभिन्न संस्थाओं पर व्याप्त अनैतिक आचरणों की, सफेद पोशी लोगों के जीवन के मिथ्याचरणों की व्याख्या प्रस्तुत करके यादव जी ने अपने में एक जागरूक कलाकार का परिचय दिया है ।

अमृतलाल नागर के उपन्यासों में नैतिकता

अमृतलाल नागर का "बूंद और समुद्र" समाज की यथार्थता का अंकन करता है । उपन्यास में स्त्री की शोषित स्थिति के प्रतीक के रूप में ताई का चित्रण हुआ है । सास की नज़रों में गिर जाने के कारण ताई पति के घर में बहुत अधिक कष्ट सहने केलिए विवश हो जाती है । इसीबीच ताई एक लडकी की मां बन जाती है । घरवालों को लडकी की हत्या करने की कोशिश में रत समझकर वह अपनी लडकी को, अपने ही कमरे में छिपाकर रहने लगती है । स्वाभाविक रूप से लडकी की मृत्यु हो जाती है । ताई के मन में घरवालों के प्रति प्रतिशोध की भावना जागती है । जिस दिन राजा बहादुर दूसरा विवाह करके बहु को घर लाता है उसी दिन ताई घर छोडकर पुरानी हवेली में चली जाती है । उसकी प्रतिशोध की भावना मात्र राजा साहब पर नहीं, समुचे समाज पर विकीर्ण होने लगती है । जादू टोना, मंत्र तंत्र आदि उसके जीवन का धर्म बन जाते

---

69. अनदेखे अनजानपुल - राजेन्द्र यादव - पृ.114

मुहल्ले के चित्र बनाने केलिए आये सज्जन नामक चित्रकार ताई का किरायेदार बन जाता है । सज्जन से ताई को सांत्वना मिलती है । सज्जन का परिचय वनकन्या से हो जाता है । वनकन्या अपने परिवार के अनैतिक आचरण के प्रति विक्षुब्ध है । अपने पिता के विरुद्ध भी मुकदमा लड़ने केलिए वह तैयार हो जाती है । वनकन्या और सज्जन दोनों का परिचय प्रेम में परिवर्तित हो जाता है और दोनों विवाह के बंधनों में बंधि जाते हैं । वनकन्या की प्रेरणा से प्रभावित होकर सज्जन अपनी सारी संपत्ति समाज के अभ्युदय केलिए समर्पित करता है ।

असफल लेखक महिपाल प्रगतिशील विचारों का व्यक्ति है । आर्थिक दृष्टि से असफल उसको पारिवारिक जीवन में सुख नहीं मिलता, वह कुंठाग्रस्त जीवन बिताता है । महिपाल शीला स्त्री से प्रेम करता है । लेकिन लोकापवाद के भय से महिपाल शीला को अपनी जीवन संगिनी स्वीकार नहीं करता । उसके द्वारा की गयी चोरी का रहस्य खुल जाने पर महिपाल आत्महत्या करता है ।

भूखी सुनार की बडी बहू और विरहेश का प्रेम, तारा वर्मा की कहानी आदि का वर्णन अत्यंत विशेष धरातल पर हुआ है । "बूंद और समुद्र" उपन्यास पारिवारिक जीवन की समस्याओं को व्यक्त करने का प्रयास करता है ।

"अमृत और विष" में दो प्रमुख कथायें हैं । एक अरविंद शंकर के पूर्व जों की कथा है और दूसरी अरविंद शंकर द्वारा रचित उपन्यास की कथा । अरविंद शंकर कीकथा वर्तमान सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक पहलुओं की व्याख्या प्रस्तुत करती है । अरविंद शंकर की षष्ठिपूर्ति के अवसर पर नगर वासी एक गंभीर समारोह की आयोजना करते हैं । लेकिन उस समारोह के अवसर पर भी अरविंद शंकर उदासीन रहता है, उसका मन उथल पुथलों का शिकार रहता है । वह जनता द्वारा आयोजित समारोह में आत्मीयता का अभाव देखता है और ढोंगें का अनुभव करता है ।

अरविंद शंकर का पारिवारिक जीवन सुखद नहीं है । ससुराल में दबी पडी उसकी बडी लडकी, क्षयरोग ग्रस्ता छोटी लडकी, अलग जीवन बिताने वाला पुत्र भवानी शंकर आदि अरविंद शंकर के जीवन की विषम स्थितियों को सूचित करते हैं । यक्ष्मा ग्रस्ता कुमारी लडकी का गर्भवती हो जाना, छोटे पुत्र उमेश की आत्महत्या आदि घटनायें अरविंद शंकर के जीवनको झकझोर कर देती हैं ।

अरविंद शंकर द्वारा रचित उपन्यास मध्य एवं निम्नवर्गीय परिवारों की कथा कहता है । पुरोहित पुत्ती गुरू का लडका रमेश और रद्दूसिंह की बाल विधवा रानीबाला दोनों आपस में प्रेम करते हैं । रानी-बाला और रमेश साथ साथ जीवन बिताने का निर्णय करते हैं । उनके विवाह के विरोध में गाँव के बुजुर्ग लोग खडे हो जाते हैं । फिर भी संपादक खन्ना साहब की सहायता से दोनों का विवाह संपन्न हो जाता है । स्वार्थी राजनीतिक नेताओं के सामने रमेश के नेतृत्व में नयी पीढ़ी खडी हो जाती है

आनुषंगिक कथाओं में लच्छु की कथा अत्यंत स्वाभाविक है । गरीब लच्छु खन्ना की सहायता से समाजवादी नेता आत्माराम का सेक्रटरी बन जाता है । लच्छु को उच्च वर्गीय अनैतिक आचरणों का पता तो मिल जाता है फिर भी वह उस वातावरण में घुल मिलकर रहने लगता है । माथुर की पत्नी के साथ अवैध संबन्ध स्थापित करके लच्छु अपने भ्रष्ट आचरण का परिचय देता है

चरित्र भ्रष्ट लाल साहब और वहीदन, नवाब मिर्जा और गैहाबानु, राम सिंधी और उसकी बलचलनवाली बेटियाँ आदि चरित्र निम्न वर्गीय जीवन के नैतिक पतन को सूचित करते हैं । 'अमृत और विष' में उपन्यासकार ने नैतिकता के बिलकुल व्यापक पक्ष को लिया है । नैतिकता का सामाजिक स्वरूप व्यक्ति प्रधान नहीं होकर समष्टि प्रधान होता है ।

अमृत और विष स्वातंत्र्योत्तर कालीन समाज के एक ऐसे समाज की जीवन गाथा है जो निराशा ग्रस्त है और धन और दौलत की कोशिश में लगा रहता है । सामाजिक मूल्य किस तरह च्युत हो गये हैं, इसकी ओर उपन्य ने प्रभावात्मक ढ़ंग से संकेत किया है ।

नैतिकता के संबन्ध में अमृतलाल नागर की मान्यता "अमृत और विष" में मिल जाती है । "नैतिकता इस बात में नहीं कि आदमी कितना सच्चा, त्यागी, तपस्वी और प्रामाणिक है । प्रश्न यह है कि व्यक्ति को अपनी इच्छाओं, आकांक्षाओं और आचार व्यवहार को गति देने में मुक्ति कितनी मिलती है । प्रामाणिकता का आग्रह झूठा और बेकार है[70]।" नागरजी की नैतिकता संबन्धी यह मान्यता उनकी नयी दृष्टि का सूचक है ।

अमृत लाल नागर के उपन्यासों में, समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार को, स्त्री पुरूष संबन्धों के ढ़ीलेपन को अभिव्यक्ति मिली है । उपन्यास चा 'बूंद और समुद्र' हो, चाहे "अमृत और विष" हो उसमें समाज में व्याप्त बुराई का चित्रण अवश्य मिल जाता है । नागरजी ने समाज में छाये अनैतिक आचार व्यवहारों को 'अमृत और विष' में वाणी दी है । "हमारे यहाँ लूट है, मुनाखोरी है, क्षुद्र स्वार्थ है ..... गले काटेंगे फिर अखण्ड रामायण भी करेंगे । तीसों दिन आठों पहर झूठ बोलेंगी और पूर्णमासी के दिन सत्य नारायण की कथा बंचवाय के स्वर्ग लाभ करेंगी[71]। जनता के ये आचरण समाज में नैतिक मान्यताओं के खोखलेपन को व्यक्त करते हैं ।

---

70. अमृत और विष - अमृतलाल नागर - पृ.549

71. वही - पृ.405

'अमृत और विष' के उच्चवर्गीय पात्रों के द्वारा नागरजी ने उच्च वर्गीय जीवन के अनैतिक वातावरण को चित्रित किया है । "ऊँचे अफसरों में सभी तो दूसरे की पत्नियों को अपनी रखैलें बनाते हैं । अपने अफसरी अनुशासन को संगठित करने का मानो यह "बीबी बाजी" भी एक तरीका है । पति जानता है कि अफसर उसके घर की इज्जत का भी मालिक है । वह जानता है कि पत्नी अपने यार के विरुद्ध किसी भी साजिश में उसे फंसा सकती है हाँ प्रसन्न रखे जाने पर वह अपने पति का भाग्योदय भी करा सकती है ।"[72] अफसरों की खुशामद करने केलिए कार्यरत मज़दूर केवल अपनी उन्नति की बात सोचता है । उन्नति के मार्ग को सरल बनाने केलिए पत्नी के पतिव्रता धर्म को भी स्वाहा करने केलिए तैयार रहता है । ऊंचा अफसर भी अपने अधिकारों का दुरुपयोग करता है । नयी नयी रूमानी सामग्रियों की खोज में व्यस्त ऊंचे से ऊंचे अफसर अपने आदर्शों को तिलांजलि दे देते हैं । "डाक्टर आत्माराम के सबसे अधिक विश्वास पात्र, उनके संगठन की सफलता की कुंजी चीफ एडमिनिस्ट्रेटर प्रकाश चन्द्र सेन बार-एट-ला तक अपने कुआरेपन को परायी बीबियों से एक रात के ब्याह करके उतारा करते हैं ।"[73]

नागर जी ने स्त्री पुरुष-संबन्धों के मूल्य विघटन को प्रस्तुत करके समाज की पथभ्रष्टस्थिति का वर्णन किया है । उनकी दृष्टि में वैयक्तिक नैतिकता और सामाजिक नैतिकता के बीच की टकराहट इसलिए होती है कि वैयक्तिक आचार और व्यवहार को सामाजिक प्रतिष्ठा नहीं मिलती । "हर नव सामाजिक सत्य की प्रभा से व्यक्ति का नैतिक सौंदर्य खिलता है ।"[74]

---

72. अमृत और विष - अमृतलाल नागर - पृ.375
73. वही - पृ.375
74. वही - पृ.134

धर्मवीर भारती के उपन्यासों में नैतिकता

मध्यवर्गीय जीवन का सफल कथाकार धर्मवीर भारती का "गुनाहों का देवता" मध्यवर्गीय जीवन की बुरी परिस्थितियों का चित्रण प्रस्तुत करता है ।

चंदर और सुधा प्रेमी और प्रेमिका है, वे दोनों विवाह करने की कामना करते हैं । लेकिन सुधा की बुआ की हठ के कारण कैलाश नामक व्यक्ति के साथ सुधा को शादी करनी पड़ती है । चंदर को सुधा का अभाव अखरता है और वह सुधा की बहन विनती के इर्द गिर्द चक्कर काटने लगता है, एग्लो इंडियन लड़की पम्मी से बलात् आलिंगन करने का प्रयत्न करता यहाँ तक कैलाश की अनुपस्थिति में "सुधा के साथ शारीरिक संबन्ध स्थापित करने का परिश्रम भी करता है । सुधा अंदर ही अंदर घुटती घुटती रहती है । वह कैलाश के साथ शारीरिक संबन्ध स्थापित तो करती है । लेकिन उसका मन हमेशा चंदर के साथ रहता है । गेसु की सहायता से चंदर के मन का मालिन्य दूर होने लगता है, और वह सुधा की आदर्श एवं महत्ता की पहचान करता है सुधा का स्वास्थ्य दिनों दिन नष्ट होता जा रहा है । चंदर और विनती के विवाह की कामना चंदर के सामने व्यक्त करके सुधा इस दुनिया से चली जाती है ।

धर्मवीर भारती ने सुधा के माध्यम से एक आदर्श नारी की परिकल्पना की है । सुधा परिस्थिति से समझौता करके कैलाश के साथ जीवन बिताती है । जीवन की इन निराशापूर्ण परिस्थितियों के सामने भी वह सर नहीं झुकाती, आदर्शों के विरुद्ध आचरण नहीं करती । सुधा से शारीरिक संबन्ध जोड़ने केलिए चंदर की कोशिश इसलिए असफल होती है कि सुधा इसका विरोध करती है । इस उपन्यास में परिस्थितियों के कारण

अलग होने केलिए बाध्य दो प्रेमी अपने जीवन को किस तरह तबाह कर देतेहैं । इसका चित्रण है । पुरूष की निराशा नैतिक उच्छृंखलता में परिवर्तित हो जाती लेकिन स्त्री की पीडा उसे अन्दर ही अन्दर खा जाती है । उच्छृंखल बनकर भी चंदर जीवित रह सकता है पर कुंठाग्रस्त होकर सुधा नहीं जी सकती । प्रेम और नैतिकता की समस्या को मिला करके भारती ने एक अविश्वसनीय उपन्यास की रचना की है ।

"सूरज का सातवां घोडा" जीवन की यथार्थता को अभिव्यक्त करता है। जमुना और मणिक बचपन के साथी रहे हैं । यौवन के दिनों में उनका संबन्ध तन्ना के पिता महेसर दलाल के कारण नष्ट हो जाता है । मणिक का मन जमुना के प्रति आकर्षित है । फिर भी जमुना का विवाह किसी दूसरे व्यक्ति के साथ हो जाता है । संतानहीनता के कारण दु:खी जमुना गंगास्नान करती है, पूजा पाठ करती है । किसी मंत्र तंत्र से उसकी कामना पूर्ण हो जाती है । साथ ही साथ पति की मृत्यु भी हो जाती है ।

जमुना के प्रेम से वंचित तन्ना का विवाह एक संपन्न युवती से हो जाता है । अपनी स्त्री का छलामय व्यवहार, ईमान्दार होने से उत्पन्न नौकरी की कठिनाईयां, अर्थ का अभाव आदि के कारण तन्ना का जीवन कष्ट तर बन जाता है । एक दुर्घटना में उसकी मृत्यु हो जाती है ।

सत्तो नामक लडकी महसेर दलाल, चमन ठाकुर जैसे कामुक पुरूषों की वासना की शिकार बनती है। उनके वासनामय व्यवहारों से तंग आकर वह मणिक मुलला की सहायता की कामना करती है । लेकिन मणिक उसे नहीं स्वीकारता है । इसकारण सत्तो को पुन: चमन ठाकुर के यहां जाना पडता है ।

मणिक को आर,एम,एस, में नौकरी मिल जाती है । वह सुखपूर्ण जीवन बिताने लगता है ।

इस उपन्यास में लेखक ने मध्यवर्गीय जीवन की झांकी प्रस्तुत की है । जमुना और तन्ना का प्रेम फलीभूत नहीं होता । इसलिए दोनों को जीवन में बहुत अधिक कष्ट सहने पड़ते हैं । आर्थिक विषमताओं के बीच ईमान्दारी की सारहीनता का अंकन तन्ना के जीवन के चित्रण के द्वारा लेखक ने किया है । सत्तों जैसी नारी के चित्रण के द्वारा पुरुषों की कामुक मनोवृत्तियों का और स्त्री के शोषण का पता चलता है ।

मध्यवर्गीय जीवन पर व्याप्त अनैतिक आचरणों की काली छटा को देखकर लोग अपनी आँखें मूंद लेते हैं। करते हैं । वे उसके विरुद्ध कभी विद्रोह करते नहीं दीखते । महेसर दलाल, चमन ठाकुर जैसे कामुक पुरुष समाज में अनैतिकता के अंकुर को पनपने देते हैं । इन लोगों के माध्यम से लेखक ने मध्यवर्गीय जीवन के अनैतिक वातावरण का चित्रण किया है । यहाँ पर यह भी सिद्ध करने का प्रयास किया है कि सभी संबन्धों का बनना और बिगडना अर्थ के आधार पर है । प्रेम और नैतिकता को आर्थिक व्यवस्था का अंग मानकर चलना भारती को ठीक लगता है ।

चतुरसेनशास्त्री के उपन्यासों में नैतिकता

आचार्य चतुरसेनशास्त्री ने भारतीय राजनीति का एक ज्वलंत चित्र "बगुला के पंख" उपन्यास के ज़रिये प्रस्तुत किया है । जगन प्रसाद नामक एक साधारण खान-सामा राजनीति में उतर कर बहुत बडा नेता बन जाता है । जगन प्रसाद की यह कथा राजनीति के क्षेत्र के अवांछनीय तत्वों एवं समाजद्रोही व्यक्तियों के संबन्ध में हमें जागरूक करती है ।

मुरादाबाद के मेहतर जाति के जगन प्रसाद को अंग्रेज़ों के बैरा खानसामा के रूप में पहले नौकरी मिली थी । उस समय उन्होंने काफी अंग्रेज़ी और उर्दु पढ़ी थीं । अंग्रेज़ों के चले जाने के बाद जगन एक कर्नल के यहाँ नौकर बन जाता है । बाद में उसको मुरादाबाद के एक परिवार में बवर्ची का काम मिलता है । वहाँ से वह चोरी करके भागने का प्रयत्न करता है लेकिन पकडा जाता है । उसे आठ मास की सजा मिलती है । जेल में उसका परिचय शोभाराम नामक कांग्रसी नेता से हो जाता है । शोभाराम की सहायता से वह पहले कांग्रस का ज्वान्ट सेकटरी और बाद में म्युनिसिपल चेयरमान बन जाता है । शोभाराम की पत्नी पदमा से जगन अनुचित लाभ उठाना चाहता है ।

डॉ॰ खन्ना, मजिस्ट्रेट जोगेन्द्रसिंह, सेठ फकीरचंद आदि संपन्न व्यक्तियों से जगन प्रसाद का परिचय हो जाता है । मजिस्ट्रेट जोगेन्द्र सिंह और सेठ फकीर चंद के साथ जगन प्रसाद वेश्यागृह जाता है । वेश्याओं का दलाल नवाब जगनप्रसाद का उपदेशक बन जाता है । जगन प्रसाद एम॰पी॰ बाद में वाणिज्य का मिनिस्टर बन जाता है ।

जगन का परिचय अध्यापक राधेमोहन से होता है । जगन के बीमार बन जाने पर उसे राधेमोहन अपना घर ले जाता है । राधेमोहन की सुन्दरी पत्नी गोमती को लम्पट जगन की सेवा शुश्रूषा करनी पडती है और जगन के काम की पिपासा की शिकार बननी पडती है । पति के सामने रहस्य खुल जाने पर पति परायणा गोमती का मन कुंठित हो जाता है और वह आत्महत्या कर लेती है ।

जगन म्युनिसिपालिटी के चेयरमॉन बुलाकी दास की बाँझ पत्नी के साथ भी अवैध-संबन्ध स्थापित करने की कोशिश करता है । शोभाराम की मृत्यु हो जाने के बाद वैवाहिक सुखों से वंचिता नारी पद्मा जगन के चंगुल में आ फंसती है । उस अतृप्त नारी की असहाय स्थिति का

अनुचित लाभ उठाकर भी जगन अपनी कामुकता की आग को शांत नहीं कर पाता । सेठ फकीरचंद की सहायता से जगन खन्ना की पुत्री शारदा को ब्याहने का प्रयत्न करता है । अपने जीवन के रहस्य के पर्दाफाश होने से जगन पदमा को साथ ले भागने की कोशिश करता है । लेकिन जगन के जीवन की वास्तविकता की जानकारी से पद्मा उसके साथ चलने केलिए राजी नहीं होती ।

चतुरसेन शास्त्री ने जगनप्रसाद के माध्यम से मौका परस्त लम्पट राजनीतिज्ञों के जीवन की असली झांकी प्रस्तुत की है । राजनीतिक क्षेत्र में व्याप्त अनैतिकता का स्वरूप प्रस्तुत उपन्यास में दिखाया गया है । निम्न स्तरीय जगन का भाग्य की विडंबना से नेता बनना, वेश्या गृह जाना, अनेक औरतों से शारीरिक संबन्ध जोडना आदि समसामयिक राजनीतिक क्षेत्र में व्याप्त अनाचार को सूचित करते हैं ।

शास्त्रीजी भारतीय परंपरा एवं नैतिक आचरणों पर विश्वास करते हैं, इसलिए अनैतिकता का आचरण उन्हें बिलकुल नहीं भाता । उन्होंने काम और स्त्री-पुरुष संबन्धों की व्याख्या 'बगुला के पंख' में दी है । "काम बुभुक्षा चाहे जैसी भी हो, चाहे जितनी भी हो, भिन्न लिंगी युवक चाहे जिस स्थिति में सुलभ भी हो, परंतु उनका यौन संपर्क नहीं हो सकता । स्त्री और पुरुष नहीं मिल सकते, पति और पत्नी मिल सकते हैं । पति पत्नी ही परस्पर यौन संपर्क स्थापित कर सकते हैं । यही समाज की मर्यादा है ।"[75] राधेश्याम की पत्नी गोमती का जगन से शारीरिक संबन्ध और गोमती की आत्महत्या ने शास्त्रीजी के उपर्युक्त सत्य को उजागर किया है ।

---

75. बगुला के पंख - चतुरसेनशास्त्री - पृ.29

शास्त्रीजी के प्रस्तुत उपन्यास में प्रमुख रूप से राजनीति में व्याप्त बुराईओंका चित्रण मिलता है । उन्होंने अपने उपन्यास में राजनीतिज्ञों की कथनी और करनी के बीच के अंतर को व्यक्त करने की कोशिश की है । "बडी बडी कोठियों में मिनिस्टर और सेक्रटरी जो रहते थे, वे सब देखने में तो खद्दर पोश थे, पर नौकर चाकरों केलिए सूखे ठूठ थे । ये अछूतोद्धार करनेवाले कांग्रसी न उन्हें छू सकते थे न उनका छुआ खा सकते थे । केवल उन्हें हरिजन का खिताब देकर उनके प्रति अपनी सब जिम्मेदारी से पाक साफ हो गये थे ।[76]

शास्त्रीजी कांग्रेस सरकार पर तीव्र व्यंग्य करते हैं । "भारत सरकार की यह एक विशेषता है कि जो शायद भारत की राजनीति के इतिहास में अद्वितीय है कि शीर्ष स्थान गधों केलिए सुरक्षित रखते हैं । चाहे म्युनिसिपल चेयरमान हो या मिनिस्टर उनकी योग्यता की नाप तोल करने की कांग्रेस सरकार को आवश्यकता नहीं है । योग्य कर्मचारी उनकी अर्दली मे रहते हैं ..... इन कुर्सी नशीन गधों को केवल दस्तखत करने पडते हैं ।[77]

राजनीति के क्षेत्र में ईमान्दारी का कोई मूल्य नहीं रह गया है मौका परस्ती राजनीतिज्ञों की धर्म सी बन गयी है । इसलिए समसामयिक राजनीतिक क्षेत्र खलनायकों की, मौका परस्तों की क्रीडास्थली बन गया है । शास्त्रीजी कहते हैं "आप में चाहे जितनी ऊंची योग्यता हो, ऊंची कुर्सी आपको नहीं मिल सकती ..... ऊंची कुर्सी केलिए ऊंचा पद चाहिए और ऊंचे पद केलिए ऊंची अवसरवादिता चाहिए । आप सब ऊंची कुर्सियों पर

---

76. बगुला के पंख - चतुरसेन शास्त्री - पृ. 9

77. वही - पृ.98

प्रायः गधे को बैठा देखोगे । घोडे सिर्फ बोझ खींचते हैं । गधे ऊंची कुर्सियों पर ऊंघते हैं । आज के सभ्य शिष्ट समाज का यही दस्तूर है[78] ।

दरअसल चतुरसेन शास्त्री जी के प्रस्तुत उपन्यास में राजनीतिक भ्रष्टाचार को बहुत गहरी अभिव्यक्ति मिली है । आज के राजनीतिक संदर्भ में यह कहना अत्युक्ति नहीं होगी कि अवसरवादिता, आदर्शहीनता एवं पैसे की सहायता से यहां भ्रष्ट राजनीतिज्ञ मंत्री तक बनकर लोगों को मुर्ख बना रहे हैं और न्याय, सत्य, ईमान्दारी आदि मूल्यों की मूल्यहीनता को अभिव्यक्त कर रहे हैं ।

" वैशाली की नगरवधु " के सहारे चतुरसेनशास्त्री बौद्ध कालीन भारत का चित्रप्रस्तुत करते हैं । वैशालि में नगर की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी को सार्वजनिक संपत्ति बनाने की प्रथा प्रचलित थी । वैशाली नगर के यशस्वी गणतंत्र के कलंक के रूप में चतुरसेन शास्त्री ने इस प्रथा का चित्रण किया है ।

गणतंत्र द्वारा अम्बपाली सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी घोषित की जाती है । नगरवधु अम्बपाली वैशाली के आकर्षण का केन्द्र बन जाती है । यहां तक मगध सम्राट बिंबसार भी अम्बपाली के प्रति मोहित हो जाता है, अम्बपाली को राजमहिषी बनाने की आशा करता है । इस बीच मगध और वैशाली के बीच युद्ध छिड जाता है । विजय की अंतिम घडियों में मगध सेनापति सोमप्रभ को जानकारी मिलती है कि कामातुर बिंबसार वैशाली की नगरवधु के आवास में है । इसलिए उसको युद्ध रोकना पडता है । युद्ध रुक जाने के कारण मगध महासेनापति आर्य भद्रिक को लिच्छवियों के सामने आत्मसमर्पण करना पडता है ।

78· बगुला के पंख - चतुरसेनशास्त्री - पृ·146

महासम्राट बिंबसार और सेनापति सोमप्रभ के बीच भीषण युद्ध होता है । युद्ध के अंत में बिंबसार बन्दी हो जाता है । आर्य मातंगी उस समय प्रत्यक्ष होती है और रहस्यों का उद्घाटन करती है । पता चलता है कि सोम प्रभ का पिता मगध सम्राट बिंबसार है और अम्बपाली आर्य वर्षकार की पुत्री है । आर्य वर्षकार की भगिनी मातंगी किसी संयोग वश इससे गर्भिणी बन जाती है और अम्बपाली की माँ बन जाती है । दरअसल अम्बपाली का जन्म अवैध है ।

अपने जीवन संबन्धी रहस्य खुल जाने पर अम्बपाली जीवन से विरक्त होकर सन्यास ग्रहण कर लेती है । सेनापति सोमप्रभ भी वैरागी बनकर चला जाता है ।

'वैशाली की नगरवधु' के माध्यम से लेखक ने राजा-महाराजाओं के अनैतिक जीवन की ओर संकेत किया है । मगध सम्राट बिंबसार वासना ग्रस्त होकर अपने राज्य की भलाई को जोखिम में डालने केलिए तैयार हो जाते है । वैशाली में सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी को नगरवधु की संज्ञा देकर सार्वजनिक नारी बनाने की प्रथा चालु थी। इसलिए कहा जा सकता है कि अम्बपाली की नगर वधु बन जाना वैशाली की प्रचलित मान्यताओं के अनुसार सही ही सिद्ध होता है । वैशाली में प्रचलित धार्मिक रूढ़ियों का खुलकर वर्णन प्रस्तुत उपन्यास में प्राप्त होता है । "गणपति अम्बपाली से कहता है : "तुम्हारा यह दिव्य रूप यह अनिंद्य सौन्दर्य, यह विकसित यौवन, यह तेज, यह दर्प, यह व्यक्तित्व स्त्रीत्व के नाम पर किसी एक नगण्य व्यक्ति के दासत्व में क्यों सौंप दिया न जाय ? तुम्हारी जैसी असाधारण स्त्री क्यों एक पुरुष की दासी बने; यही क्यों धर्म है ? देवी अम्बपाली समय पाकर रूढ़ियाँ ही धर्म का रूप धारण कर लेती है और कापुरुष उन्हीं की लीक पीटते हैं ।"[80]

---

80. वैशाली की नगरवधु - चतुरसेन शास्त्री - पृ.25

उक्त पंक्तियों के द्वारा वैशाली में प्रचलित धार्मिक रूढ़ियों की अभिव्यक्ति लेखक ने की है । गणपति स्त्री का एक व्यक्ति से प्रेम और उससे विवाह बंधन में फंसकर सदा केलिए उसकी दासी बन जाना एक प्रचलित रूढ़ि ही समझते हैं ।

अम्बपाली नगरवधु के स्थान तो लेती है और उस रूढ़ि के प्रति आक्रोश प्रकट करती है । "बज्जी संघ का यह धिक्कृत कानून वैशाली जनपद के यशस्वी गणतंत्र का कलंक है भी मेरा अपराध केवल यही है कि विधाता ने मुझे यह अथाह रूप दिया । इसी अपराध केलिए आज मैं अपने जीवन के गौरव को लांछना और अपमान के पंक में डूबो देने को विवश की जा रही हूँ । इसीसे मुझे स्त्रीत्व के उन सब अधिकारों से वंचित किया जा रहा है जिनपर प्रत्येक कुलवधु का अधिकार है । अब मैं अपनी रूचि और पसंद से किसी व्यक्ति का प्रेम नहीं कर सकती । उसे अपनी देह और अपना हृदय अर्पण नहीं कर सकती । अपना स्नेह से भरा हृदय और रूप से लथपथ यह अधम देह लेकर अब मैं वैशाली की हाट में ऊंचे नीचे दाम में बेचने बैठूंगी ।[8]

अम्बपाली इस नियम का धिक्कार करती है । उसकी कामना एक व्यक्ति से प्रेम और विवाह करके कुलवधु के जीवन बिताने की है । अम्बपाली भारतीय आदर्श नारी के मन की परिकल्पनाओं को व्यक्त करती है ।

युद्ध की नैतिकता और अनैतिकता का प्रश्न भी इस उपन्यास में उठाया गया है । वैशाली और मगध के युद्ध के अवसर पर मगध सम्राट बिंबसार अम्बपाली के आवास में था । मगध की विजय होनेवाली थी । लेकिन वैशाली में अम्बपाली के आवास में पडे कामातुर बिंबसार की जानकारी मिलते ही सेनापति सोमप्रभ ने युद्ध बन्द कर दिया । वह बिंबसार से कहता है, "युद्ध बन्द कर दिया - इस कारण कि युद्ध का उद्देश्य दूषित था, एक स्त्रैण

---

8. वैशाली की नगरवधु - चतुरसेनशास्त्री - पृ.18

कापुरुष कर्तव्यच्युत सम्राट ने अपनी पद मर्यादा और दायित्व का उल्लंघन कर एक सार्वजनिक स्त्री को पट्ट राजमहिषी बनाने के उद्देश्य से युद्ध छेडा था।"[82]

उपर्युक्त कथन यह सूचित करता है कि राजा के भोग विलास की पूर्ति केलिए साम्राज्य की सेना का उपयोग करना गलत एवं अनैतिक कार्य ही है। जब जनता केलिए युद्ध किया जाता है, वह युद्ध नैतिक बन जाता है, युद्ध में की गयी हत्या आदि नैतिक बातें बन जाती हैं। लेकिन किसी व्यक्ति के स्वार्थ की पूर्ति केलिए युद्ध किया जाता है तब वह युद्ध अनैतिक बन जाता है, इसलिए दूषित भी बन जाता है।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में अम्बपाली के जीवन के माध्यम से उपन्यासकार ने तत्कालीन नैतिकता के स्वरूप का उद्घाटन किया है। सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी को सार्वजनिक संपत्ति घोषित कर उसके रूप का पान करना प्राचीन नैतिकता के विरुद्ध नहीं है। विशेषकर वैशाली गणतंत्र के संदर्भ में यह बात स्वीकारित है। नैतिकता के इस स्वरूप को दिखाकर उपन्यासकार ने समय के साथ बदलनेवाली नैतिक दृष्टि को भलीभाति समझाने की कोशिश की है

साठोत्तरी उपन्यासों में नैतिक मूल्य

हिन्दी का साठोत्तरी उपन्यास जीवन की वास्तविकताओं का सूक्ष्म निरीक्षण करता है। नवीन जीवन परिस्थितियों के दबाव से बिगडनेवाले पारिवारिक संबन्धों की कहानी साठोत्तरी उपन्यासकार बहुत सफलता के साथ प्रस्तुत करते हैं। नैतिकता के संबन्ध में उपन्यासकारों में अलग अलग दृष्टिकोण पाया जाता है।

मोहन राकेश के उपन्यासों में नैतिकता

मोहन राकेश ने आधुनिक संदर्भों से जोडकर व्यक्तियों के आचरण की विशेषता का विश्लेषण किया है। उनके उपन्यास नैतिकता को एक समस्या के रूप में नहीं उठाते। बदलते हुए परिवेश में जीवन की गतिशीलता से उत्पन्न समस्याओं के अन्दर नैतिक प्रश्न अपने स्वयमेव खडे होने लगते हैं।

---

82. वैशाली की नगरवधु - चतुरसेन शास्त्री - पृ.422

हरबंस और नीलिमा के सहारे राकेश जी ने 'अंधेरे बन्द कमरे' की सृष्टि की है । हरबंस और नीलिमा प्रेमी और प्रेमिका हैं । लेकिन विवाह संबन्ध जोड़कर वे गलती करते हैं । वैवाहिक जीवन उनका सफल नहीं होता । हरबंस और नीलिमा के विचारों में, आपसी व्यवहारों में दूरी बढ़ जाती है फलत: हरबंस विदेश चला जाता है । वहाँ हरबंस अकेलापन का अनुभव करता है । उस अकेलेपन की विषमता को समाप्त करने केलिए वह नीलिमा को बुला लाता है । नीलिमा के आते ही वह घुटन का अनुभव करने लगता है । नीलिमा उमादत्त नामक नर्तक के साथ पैरिस घूमती है और एक बर्मी कलाकार के साथ पैरिस ठहर जाती है । हरबंस को अपने जीवन से अलग न करनेवाली नीलिमा हरबंस के यहाँ पुन: पहुँच जाती है । दोनों का संबन्ध और भी बिगड जाता है । नीलिमा उससे अलग होकर रहने लगती है । हरबंस मन की शांति केलिए शराब की शरण लेता है ।

उपन्यास के पात्र मधुसूदन की कथा भी अत्यंत सशक्त लगती है । मधुसूदन का परिचय पत्रकार महिला सुषमा श्रीवास्तव से हो जाता है । सुषमा श्रीवास्तव के चरित्र संबन्धी बुराईयों की जानकारी मिलते ही मधुसूदन उससे अलग हो जाता है ।

राकेशजी ने आधुनिक मानव मन को एक अंधेरे बन्द कमरे के रूप में चित्रित किया है । यह उपन्यास आधुनिक मानव के चरित्रोद्घाटन करने का प्रयास सा दीखता है । आधुनिक मानव मन असल में एक बन्द कमरा है । उस कमरे में जन्म लेनेवाली भाव लहरियों के संबन्ध में जानकारी प्राप्त करना अत्यधिक मुश्किल कार्य सिद्ध होता है । एक व्यक्ति का अन्य व्यक्तियों के साथ संबन्धकिस आंतरिक प्रेरणा से संचालित है, उसे समझना और उसके धूमिल पड जाने से उत्पन्न संबन्ध विच्छेद को परखना अत्यंत कठिन कार्य है ।

प्रेमी और प्रेमिका, हरबंस और नीलिमा विवाह के पूर्व सुख एवं मानसिक उल्लास का अनुभव करते हैं । लेकिन विवाह के बाद साथ साथ रहने में मनोनुकूल व्यवहार करने में वे हिचकते हैं; घुटन का, अकेलेपन का अनुभव करते हैं । भारतीय नैतिक मान्यताओं के अनुसार विवाहिता नीलिमा का नर्तक उमादत्त के साथ पैरिस घूमना, बर्मी कलाकार के साथ पैरिस ठहर जाना आदि अनैतिक आचरण ही कहलाने योग्य है । नृत्य क्षेत्र में सफल बन जाने की कोशिश में रत नीलिमा पति की महत्ता को भूल जाती है ।

उच्चवर्गीय नारी की कमज़ोरियों का चित्रण सुषमा श्रीवास्तव के ज़रिए हुआ है । सुषमा श्रीवास्तव अनैतिक आचरण करती है । वह नये नये रूमानी साधनों की खोज करती रहती है । उसकी यह खोज कभी न समाप्त होनेवाली लगती है ।

'अंधेरे बन्द कमरे' के माध्यम से राकेश ने पति और पत्नी के संबन्धों की नैतिकता का और उसकी शिथिलता का परिचय दिया है । स्वातंत्र्योत्तर कालीन समाज में, नगरीय परिवेश में रहनेवाले पति और पत्नीनेअपने संबन्धों को बिलकुल यांत्रिक बना दिये हैं । इस कारण वैधता अवैधता का सवाल उनके सामने नहीं उठता । एक स्त्री अनेक पुरुषों के साथ और एक पुरुष अनेक स्त्रियों के साथ संबन्ध जोड सकते हैं । विवाह का बंधन कोई विधि निषेध का बोधक नहीं रहा । घुटन से भरपूर बन्द कमरों के रूप में उनकी जिन्दगी अंधेरे में डूबती जा रही है ।

"न आनेवाला कल" में फादर बर्टन बोर्डिंग स्कूल के दमघोटू वातावरण में जीनेवाले लोगों की आकांक्षाओं की और जीवन की विसंगतियों की कथा अंकित है । स्कूल के हेडमास्टर से लेकर चपरासी तक उस विषम

वातावरण में जीने केलिए मज़बूर हैं । वे सब आनेवाले कल की प्रतीक्षा करते हैं । स्कूल का हिन्दी अध्यापक मनोज सक्सेना नौकरी से इस्तीफा देकर, आने वाले कल की प्रतीक्षा में उस दमघोटू वातावरण से भागने केलिए तैयार हो जाता लेकिन जीवन की वास्तविकतायें उसका साथ नहीं देतीं । मनोज अपने मन की बेबसी और घुटन को शोभा के साथ विवाह संबन्ध स्थापित करके खत्म करना चाहता है । शोभा अपने को आनेवाले कल में सुरक्षित रखने केलिए ही मनोज से विवाह संबन्ध जोड़ती है । शादी के बाद मनोज के मन की पीडा और भी बढ़ जाती है । साथ साथ रहनेवाले, शारीरिक संबन्ध जोड़नेवाले मनोज और शोभा के बीच में अपरिचय की भावना जन्म लेती है । अपरिचय की इस भावना के फल स्वरूप दोनों का संबन्ध विच्छेद हो जाता है ।

अपनी आंतरिक पीडा को शांत करने केलिएं मनोज बानी नामक लड़की से भी शारीरिक संबन्ध जोडने की कोशिश करता है । सेक्स की पवित्रता पर विश्वास न करनेवाली, नैतिकता नामक आचरण संहिता पर विश्वास नहीं रखनेवाली, काश्मी, बानी जैसी औरतें स्त्री के उच्छृंखल आचरणों को व्यक्त करती हैं । मनोज का-शोभा, बानी, काश्मी आदि स्त्रियों से शारीरिक संबन्ध, उसमें उसकी असफलता आधुनिक जीवन की मानसिक यंत्रणाओं को सूचित करती है । इस उपन्यास के कई पात्र अपने ही अंदर कुछ पाने की लालसा रखते हैं । लेकिन उनको बाहरी या आंतरिक तौर पर सान्त्वना नहीं मिलती ।

आधुनिक जीवन से संबन्धित अपरिचय, कुंठा, विवशता, एकरसता जैसी मानसिक वृत्तियाँ व्यक्ति के जीवन के सामाजिक संतुलन को नष्ट करने लगी हैं । जिन्दगी में एकरसता का बोध व्यर्थता का सूचक है । मनोज अपने अंदर की तडपन को समाप्त करने केलिए अनेक स्त्रियों से संबन्ध स्थापित करता है । उन स्त्रियों से उसका आकर्षण केवल तन का है मन का नहीं

मानसिक मेल के बिना कोई भी संबन्ध वायवी संबन्ध रह जाता है । मन का मेल ही व्यक्ति के आंतरिक चेतना को जाग्रत करके उसके जीवन में गति ला सकता है । इस आंतरिक चेतना का प्रस्फुटन एवं विकास जब ठीक तरह से नहीं होता, तब असामाजिकता का विष उसे मटमैला कर देता है । अहं से संचालित व्यक्ति आधुनिक युग में अपनी जीवन यात्रा में पग पग विषमताओं से टकराकर ही आगे बढ़ सकता है और इस जीवन यात्रा में उसे सफलता नहीं मिलती। मोहन राकेश के सारे पात्र आत्मिक शांति की खोज में है जो उनको कभी नहीं मिल पाती और उसके साथ कभी आनेवाले कल की प्रतीक्षा धूमिल पडने लगती है ।

राकेश के उपन्यास 'अन्तराल' के श्यामा और कुमार अपने जीवन की रिक्तता को दूर करने केलिए आपसी संबन्ध स्थापित करते हैं । लेकिन अतीत की यादों से उन्हें छुटकारा नहीं मिलता । श्यामा अपने पूर्वपति देव की यादों से और कुमार अपनी प्रेमिका लता की यादों से पीडित है । पति पत्नी होकर जीने केलिए कोशिश करनेवाले श्यामा और कुमार केवल यांत्रिक रूप से शारीरिक संबन्ध तो स्थापित करते हैं । लेकिन उनका मन दूसरों की यादों में भूला भूला सा रहता है । कुमार और श्यामा का जीवन यह सूचित करता है कि व्यक्ति की नैतिकता परिवेश जन्य होती है । परिस्थिति के अनुसार उसमें हेरफेर होना बिलकुल स्वाभाविक है ।

मन्नूभंडारी के 'आप का बंटी' में नैतिकता

मन्नूभंडारी के 'आपकाबंटी' में आधुनिक युग के पति और पत्नी के बीच के संबन्धों की नयी व्याख्या मिलती है । अजय और शकुन पति-पत्नी है, बंटी उनका पुत्र है । कथा की शुरूआत के समय अजय और शकुन अलग अलग जीवन बिताने लगते हैं । अजय मीरा नामक औरत से विवाह करके शकुन से

अलग हो जाता है और शकुन जोशी के साथ संबन्ध जोड़ती है । बंटी पहले अपनी मम्मी को प्यार करता था लेकिन अपनी माता की शादी दूसरे व्यक्ति से हो जाने पर बंटी मम्मी के प्यार से वंचित हो जाता है । मम्मी के प्यार से वंचित बंटी पिता की याद करता है, कलकत्ता जाने का आग्रह करता है । अपने पापा के साथ वह कलकत्ता जाता है, यहाँ कथा का अंत होता है ।

मन्नूभंडारी ने माता और पिता के स्नेह से वंचित एक बच्चे के मन की उथलपुथलों की और उसकी आशा-निराशाओं की अभिव्यक्ति की है । आधुनिक जीवन का यह चित्रण इस बात का समर्थन करता है कि पति और पत्नी के संबन्धों में ढ़ीलापन आ जाने से किसी भी समय वह संबन्ध टूट सकता है, किसी भी समय पति एवं पत्नी अपने लिए और भी योग्य पत्नी या पति की खोज में निकल सकते हैं । मन्नूभण्डारी के इस उपन्यास के अजय और शकुन भारतीय पारिवारिक पवित्रता पर कठोर आघात करती हैं ।

बंटी का जीवन समाज के सामने सवाल खडा कर देता है । माता एवं पिता का वैयक्तिक अहंबोध दोनों के सुखमय दाम्पत्य जीवन को नष्ट करने के साथ ही बंटी के जीवन को क्षति पहुँचाता है । जब मम्मी और पप्पा एक साथ रहते थे तब बंटी सुख एवं प्यार का अनुभव करता था । मम्मी और पप्पा जब अलग हो गये तब बंटी पप्पा और मम्मी के प्यार से वंचित रह गया । मम्मी और पप्पा साथ साथ रहे यहीं बंटी की कामना है । पप्पा की पत्नी के रूप में केवल अपनी माता को ही बंटी देखता है । उस स्थान पर दूसरी मम्मी की प्रतिष्ठा वह कर नहीं सकता । उसी प्रकार मम्मी के पति के रूप में अपने पप्पा के स्थान पर दूसरे व्यक्ति को देखना बंटी नहीं चाहता । माता और पिता के प्यार से वंचित बंटी, माता पिता की दायित्व हीनता को हमारे सामने प्रस्तुत करता है ।

अपने अपने सुख की कामना करनेवाले पुरुष और स्त्री समाज के अंदर विषमतायें पैदा करती हैं । अपने बच्चे के जीवन के स्वास्थ्यपूर्ण विकास को अवरुद्ध करते हुए, अपनी अपनी अलग अलग जिन्दगी को रूपायित करने में रत पुरुष और नारी वास्तव में दायित्वहीन हो जाती हैं और इसके प्रभाव से उत्पन्न वेदना बच्चे के जीवन को कलुषित कर देती हैं । सामाजिक नियमों की दृष्टि से स्त्री-पुरुष का अलग अलग हो जाना अनैतिक नहीं कहा जायेगा । जब किसी बच्चे को इस संबन्ध विच्छेद के दुष्परिणाम को भोगना पड़ता है तब इस तरह का संबन्ध विच्छेद दु:ख दायक एवं अनैतिक कार्यों की सीमा तक पहुँचने लगता है ।

निर्मलवर्मा के "वे दिन" में नैतिकता

निर्मल वर्मा का 'वे दिन' उपन्यास विदेशी वातावरण में स्त्री-पुरुष संबन्धों की व्याख्या करता है । चेक के प्राग शहर में पढ़नेवाला एक भारतीय विद्यार्थी मरियम और फ्रान्ज के जीवन का साथी रहा है । फिल्मी निर्देशन के अध्ययन केलिए शोधवृत्ति पाकर आया फ्रान्ज़ मरियम से प्रेम करता है । दोनों विवाह के रस्मों को पूरा किये बिना साथ साथ रहते हैं । फ्रान्ज़ अध्ययन छोड़कर बर्लिन जाना चाहता है। मरियम भी उसके साथ चलने केलिए तैयार होती है । लेकिन विज़ा के मिलने में कठिनाई होती है । मरियम यदि फ्रान्ज़ की विवाहिता पत्नी हो तो उसे विज़ा मिल सकती है, लेकिन फ्रान्ज़ उससे विवाह संबन्ध जोड़ना नहीं चाहता ।

मिसेज़ रैमान टूरिस्ट बनकर प्राग आती है । भारतीय विद्यार्थी उसका गाइड बनता है । वह उसे प्राग के विविध स्थानों का दर्शन कराता है ।

गाइड और रैमान के बीच थोडे ही दिनों में एक ऐसा संबन्ध स्थापित होता कि दोनों एक दूसरे को चाहने लगते हैं । गाईड के हास्टल में मिसेज रैमान एक रात बिताती है और गाईड के साथ शारीरिक संबन्ध भी स्थापित करती है । मिसेज़ रैमान के मन में गाईड के प्रति कभी अपरिचय का बोध होता है कभी आत्मीयता का । वह किसी प्रेरणावश गाईड से दूरी बरतने कोशिश करती है तो कभी कभी उसको देखने की लालसा भी प्रकट करती है ।

मिसेज़ रैमान अब भी अपने प्रति जाक से प्रेम करती है, जाक को हफ्ते में एक बार देखना चाहती है, उसके साथ बातचीत करना चाहती है लेकिन उसके साथ जीने में वह मज़बूरी का अनुभव करती है । गाईड के साथ धुल मिल जाने की लालसा को मन में दबाकर रैमान वियन्ना केलिए रवाना हो जाती है ।

निर्मल वर्मा का यह उपन्यास स्त्री पुरुष संबन्धों की नयी व्याख्या प्रस्तुत करता है । पाश्चात्य देशों में शरीर की पवित्रता नाम्क चीज़ नहीं होती । एक व्यक्ति के साथ संबन्ध जोडने के बाद दूसरे व्यक्ति से वहां के नारीपुरुष प्रेम करते फिरते हैं । मरियम फ्रान्ज़ को अपना सब कुछ समर्पित करती है । लेकिन फ्रान्ज़ उसके साथ विवाह संबन्ध जोडना नहीं चाहता । इसलिए किसी मानसिक तनाव के बिना फ्रान्ज़ मरियम को छोड कर चला जाता है । मरियम से उसका संबन्ध केवल प्राग के चहार दीवारी के अन्दर ही सीमित है । मिसेज रैमान का जीवन आधुनिक जीवन की विसंगतियों को प्रस्तुत करता है । जाक के साथ उसका जीवन कभी संतोषपूर्ण नहीं होता । इसलिए दोनों अलग अलग हो जाते हैं । रैमान और जाक, मरियम और फ्रान्ज़ के संबन्ध स्त्री पुरुष संबन्धों की अस्थिरता एवं खोखलेपन को सूचित करते हैं ।

निर्मल वर्मा ने इस उपन्यास के ज़रिए वैयक्तिक इच्छा-अनिच्छा और वैवाहिक संबन्धों पर पड़नेवाले उसके प्रभाव को अभिव्यक्ति दी है, साथ ही साथ भारतीय नैतिक आचरण के बिलकुल विपरीत स्थित एक नैतिक संहिता का परिचय भी दिया है । इस उपन्यास में गाईड के रूप में काम करनेवाला नायक भारतीय पात्र है । भारतीय मन की भावुकता और पाश्चात्य मन की यांत्रिकता का अंतर बहुत ही प्रभावात्मक ढंग से 'वे दिन' उपन्यास में दर्शाया गया है ।

राजकमल चौधरी के 'मछली मरी हुई' उपन्यास में नैतिकता

राजकमल चौधरी के 'मछली मरी हुई' में उच्चवर्गीय लोगों के भ्रष्ट मानस एवं अनैतिक आचरणों की अभिव्यक्ति मिलती है । स्वजातीय रति में आधुनिक युवक और युवतियाँ लैंगिक सुख पाती हैं । उपन्यास की युवतियाँ शीरी, भागवत, और प्रिया स्वजातीय रति के सहारे अपनी लैंगिक भूख को मिटाती हैं । उपन्यास का नायक निर्मल भागवत स्त्रियों को लैंगिक तृप्ति देने में असफल रहता है । निर्मल भागवत की पहली प्रेमिका कल्याणी डाक्टरी की पढ़ाई केलिए न्यूयार्क आती है । न्यूयार्क के स्वच्छंद वातावरण में कल्याणी इतनी धुलमिल जाती है कि उसे पढ़ाई अधूरी छोडनी पडती है । और वेश्या बननी पडती है । कल्याणी का परिचित डा॰ रघुवंश उससे विवाह करता है । रघुवंश को कल्याणी से एक लडकी पैदा होती है । कल्याणी से पुनर्मिलन केलिए निर्मल जब कलकत्ता पहूँचता है तब उसे कल्याणी की मृत्यु का पता मिल जाता है । कल्याणी की पुत्री प्रिया में वह कल्याणी की छाया देखता है और प्रिया से बलात्कार करता है । जीवन में प्रथम बार वह स्त्री को रति सुख देने में सफल बन जाता है ।

पूँजीपति मेहता की पत्नी शीरी निर्मल के साथ जीने लगती है लेकिन शीरी को निर्मल से रति सुख नहीं मिलता । शीरी का निवस्त्र होते ही निर्मल की सारी प्यास बुझ जाती है । बचपन से लेकर अपनी बहन के साथ समलिंग रति करती आयी शीरी प्रिया को भी समलिंग रति की ओर आकर्षित कराती है । लेकिन प्रिया का, निर्मल के हाथों बलात्कार उसके जीवन को नयी गति एवं स्फूर्ति देता है । प्रिया पुरुष की ओर उन्मुख होती है, साथ ही साथ निर्मल भागवत पुरुषत्व पाता है ।

राजकमल चौधरी ने अपने उपन्यास के ज़रिए नैतिकता संबन्धी अपनी नयी दृष्टि का परिचय दिया है । उनकी मान्यता है कि "पाप की तरह नैतिकता भी नशा है, नैतिकता भी आदत है, नैतिकता भी आदमी को गुलाम और अंधा बनाती है, जैसे किसी औरत का प्यार अंधा बनाता है .... नैतिकता क्या है ? नैतिकता एक ऐयाशी की आदत के सिवाय क्या है ?[83] राजकमल चौधरी की नैतिक मान्यताओं की और भी अभिव्यक्ति निर्मल भागवत के माध्यम से हुई है । "निर्मल सोचता रहा कि उसे भाग्य पर विश्वास नहीं है । वह कर्म लेख पर भरोसा नहीं करता, धर्म पर नहीं, नैतिकता पर नहीं । वह किसी ईश्वर पर भी विश्वास नहीं करता । "कर्म लेख अकर्मण्यता सिखाती है, नैतिकतायें गलत कैदखाने की दीवारें हैं, धर्म अंधा बनाता है[84] ।

नैतिक मान्यताओं पर आधुनिक लोगों की आस्था नष्ट होती जा रही है । वे देखते हैं कि नैतिक संस्थायें ही अनैतिकता के वातावरण की सृष्टि करती हैं । लेखक वेश्या, सिद्ध पुरुष और राजनीतिज्ञों के अनैतिक जीवन पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं,: "सिद्ध पुरुष, शासन करनेवाले राजनीतिज्ञ और साडी बांधने और साडी खोलने की विद्या में प्रसिद्ध नारियां

---

83. मछली मरी हुई - राजकमल चौधरी - पृ.86

84. वही - पृ.86

निर्मल ने तय किया कि ये ही तीन व्यक्ति बीसवीं सदी के किसी भी बडे शहर में आत्मज्ञान और मोक्ष प्राप्त करते हैं । ये ही तीन व्यक्ति और इनके पीछे हाथ बांधे, सिर झुकाये, आखें बन्द किये, चलते हुए व्यापारियों और उनके कर्मचारियों की श्रद्धालू भीड ।[85]

आधुनिक नारी पतिव्रता धर्म पर विश्वास नहीं करती है । वह किसी भी व्यक्ति के साथ शारीरिक संबन्ध जोड सकती है, तोड सकती है यहाँ तक एबार्शन भी करा सकती है । "दोनों मालिक अपनी अपनी सेक्रेटरी या स्टेनो लडकी की कमर में हाथ डालकर, जूट, चाय, इस्पात और लोहे कोयले की बातें करते हुए रात्रिभोजन केलिए ..... चले आते हैं वक्त मिलते ही एक स्टैनो दूसरी स्टेनो से पूछती है । तुझे क्या पगार मिलती है ? कितनी बार तू एबार्शन करा चुकी है ।"[85] इस कथन के सहारे स्त्री की उच्छृंखल मनोवृत्ति एवं अनैतिक आचरणों पर लेखक ने व्यंग्य किया है । "मछली मरी हुई" उपन्यास उच्चवर्गीय जीवन में स्वीकारे जानेवाले नये नैतिक मूल्यों की व्याख्या प्रस्तुत करता है ।

नरेश मेहता के उपन्यासों में नैतिकता

नरेश मेहता के उपन्यासों में भी नैतिक समस्यायें सामाजिक यथार्थ से जुडकर खडी होती है । "डूबते मस्तूल" एक अतृप्त नारी की मन वृत्तियों का परिचय देता है । इस उपन्यास में नारी के उच्छृंखल जीवन अभिव्यक्ति मिलती है ।

लखनऊ में बसे पुरी नामक व्यक्ति की खोज में कानपूर व आदमी लखनऊ आता है । दोस्त पुरी के वास स्थान पर पहूंचकर पुरी

85. मछली मरी हुई - राजकमल चौधरी - पृ.34

उसकी मुलाकात रंजना नामक स्त्री से होती है । वह रंजना को पुरी की पत्नी समझता है । लेकिन बाद में पता चलता है कि रंजनी को पुरी की पत्नी समझता है । लेकिन बाद में पता चलता है कि रंजना पुरी की पत्नी नहीं है, किसी कर्नल कुलकर्णि की पत्नी है । रंजना पुरी के दोस्त को अपना प्रेमी अकलंक समझती है । पुरी के दोस्त के सामने रंजना की कहानी खुल जाती है ।

सीमा प्रदेश में रहते समय रंजना का परिचय सैयद नामक मुस्लीम युवा से हो जाता है, वह परिचय प्रेम में परिणत हो जाता है । लडकियों का व्यापार करनेवाले सैयद की हत्या रंजना के हाथों से हो जाती है । उसके बाद उसका प्रेम अकलंक नामक राजनीतिज्ञ से हो जाता है । स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने के कारण अकलंक को काले पानी की सज़ा मिलती है ।

इसके बाद रंजना का विवाह रायबहादुर के पुत्र से हो जाता है माता पिता की मृत्यु हो जाने पर रंजना की संपत्ति पर उसका पति कब्जा करता है और बच्ची के साथ वह घर से बहिष्कृत हो जाती है । परित्यक्त रंजना बंबई आकर मिलिटरी में नर्स बन जाती है । कमाण्डर रेनाल्ड से वह बलात्कार का शिकार बनती है । बाद में मेजर जेंस्टिन नामक डाक्टर से उसका विवाह होता है । रंजना को साथ लेकर जेंस्टिन होलंड चला जाता है वहाँ वानिकोलस नामक चित्रकार से उसका प्रेम होताहै । मेजर जेंस्टिन की मृत्यु के बाद रंजना बंबई चली आती है और कर्नल कुलकर्णि से विवाह संबन्ध जोडती है । कुलकर्णि से परित्यक्त होकर वह लखनऊ आती है । लेखनऊ में पुरी के दोस्त से उसका मिलन हो जाता है । अपने जीवन की सारी विषमता का बोझ पुरी के दोस्त के सामने उतारकर वह आत्महत्या करती है ।

नरेश मेहता के डूबते मस्तूल में एक स्त्री के जीवन की विषमताओं एवं विडंबनाओं का सफल वर्णन हुआ है । रंजना की कहानी अतिरंजित सी प्रतीत होती है । रंजना जैसी स्त्री भारतीय समाज में प्राय: न मिलेगी । फिर भी रंजना के अनेक व्यक्तियों से प्रेम और शारीरिक संबन्ध स्त्री पुरुष संबन्धों की पाश्चात्य दृष्टि को व्यक्त करता है ।

रंजना दर असल अतृप्त नारी है । वह अनेक व्यक्तियों से प्रेम करती है और शादी करती है । फिर भी उसको कहीं से प्रेम नहीं मिलता, सुख नहीं मिलता । प्रेम पाने के लंबे यज्ञ में रंजना के जीवन की सारी मर्यादायें नष्ट हो जाती हैं, वह पतिता नारी बन जाती है ।

रंजना का जीवन समाज के सामने प्रश्न चिह्न खडा कर देता है रंजना जैसी स्त्रियों का उच्छृंखल जीवन समाज की दृष्टि में अत्यंत अनैतिक ही बन जाता है । समाज में नारी की स्थिति अत्यंत नाजुक है । नारी कुछ न कर सकती है, न वह उच्छृंखल जीवन बिता सकती है, न वह अनेक पुरुषों से प्रेम कर सकती है । जब नारी उच्छृंखल होकर अनेक व्यक्तियों के साथ प्रेम संबन्ध जोड़ती है, शारीरिक संबन्ध जोड़ती है तब समाज के द्वारा उस नारी पर अनैतिक आचरण का आरोप लगाया जाता है ।

लेकिन पुरुष पर समाज का शासन उतना कठोर नहीं होता जितना स्त्री पर होता है । पुरुष प्रधान नैतिक संहिता को मान्यता देनेवाले समाज के पुरुष स्त्री से एक निष्ठ प्रेम की कामना करते हैं । "यह भारतीय नैतिक संहिता कमी है।" रंजना का चित्रण भारतीय वातावरण के अनुकूल न होने पर भी स्त्री पुरुष संबन्धों की नयी व्याख्या प्रस्तुत करता है । अनेक व्यक्तियों से विवाह संबन्ध जोड़नेवाली रंजना पर हम अनैतिकता का आर लगा सकते हैं । लेकिन विवाह के पूर्व वह यौन संबन्ध स्थापित नहीं करती, उच्छृंखल जीवन नहीं बिताती । इसलिए पूर्ण रूप से उसके जीवन को अधार्मिक या अनैतिक कहना गलत ही प्रतीत होता है ।

उपन्यास यह सूचित करने का प्रयास करता है कि विवाह संबन्धों में स्त्री और पुरुष के बीच में मानसिक एकता होनी चाहिए । मानसिक एकता के अभाव में ही रंजना का वैवाहिक जीवन नष्ट हो जाता है, वह समाज की दृष्टि में पतिता नारी बन जाती है ।

कई पुरुषों से विवाह संबन्ध जोड़कर जीवन बितानेवाली रंजना का जीवन नैतिक है या अनैतिक ? यह भी विचारणीय विषय है । जैसे कपडे बदलते जाते हैं उसी प्रकार वह पतियों को बदलने केलिए विवश है । समाज द्वारा मान्यता प्राप्त विवाह के बंधन में रह कर भी अनेक पुरुषों के साथ जीवन बिताना एक स्त्री केलिए कहाँ तक नैतिक बात बनती है । इस पर जागरूक पाठक का ध्यान जाता है । यद्यपि एक समस्या के रूप में लेखक ने इसको नहीं उठाया है फिर भी यह हमारी नैतिक मान्यताओं पर प्रश्न खड़ा करनेवाली स्थिति है । रंजना इसका उदाहरण हमारे सामने प्रस्तुत करतीहै ।

नरेश मेहताके "यह पथ बन्धु था" उपन्यास में श्रीधर पाठक नामक व्यक्ति की आकांक्षाओं और असफलताओं की मार्मिक अभिव्यक्ति मिलती है । ग्राम के विद्यालय में इतिहास और गणित का प्रतिभावान अध्यापक था श्रीधर । अपनी आदर्शप्रियताके कारण उसे नौकरी से हाथ धोना पड़ता है ।

वह घरवालों को छोड़कर उज्जैन चला जाता है । उज्जैन से इन्दौर जाकर वह कांग्रेसी बन जाता है । इन्दौर में उसका परिचय बिशन बाबु, रतना आदि क्रांतिकारियों से, और वेश्या वृत्ति में फंसी मालती दीदी से हो जाता है ।

श्रीधर बाबू के घर छोड़ने से उसकी पत्नी सरो को बहुत अधिक परेशानियाँ उठानी पड़ती है ; पुत्री गुणवती का जीवन नरक समान बन जाता है ।

वर्षों के बाद श्रीधरबाबू अपने गाँव लौट आता है उस समय उसका परिवार टूट चुका होता है । श्रीधर बाबू राजनीतिक क्षेत्र में भी असफलता का अनुभव करता है, गाँववालों की दुनियां में भी वह माननीय व्यक्ति नहीं बन पाता । थके हारे व्यक्ति के रूप में वह हमारे सामने खड़ा होता है ।

"यह पथ बन्धु था" में नरेश मेहता ने किसी समस्या का अंकन विशेषतया नहीं किया है । फिर भी राजनीति के क्षेत्र में होनेवाले अत्याचारों का वर्णन नरेश मेहता ने किया है । साथ ही साथ वेश्या वृत्ति में फँसी मालती दीदी के द्वारा वेश्यावृत्ति के प्रति वेश्याओं के मन में व्याप्त वेदना की मार्मिक अभिव्यक्ति भी लेखक ने की है ।

लेखक नैतिकता पर अर्थ एवं प्रभुता का प्रभाव देखते हैं । उनकी दृष्टि में नैतिक आचरण या नैतिक मर्यादा केवल साधन हीनों केलिए ही होती है । सम्पन्नों केलिए कोई नैतिक आचरण नहीं होता । वे जो करते हैं वही सही आचरण बन जाता है । "साधन हीनों केलिए आदर्श शक्ति नहीं विवशता होती है । लेकिन शक्ति तो संपन्नों केलिए है । क्योंकि आदर्श, नैतिकता मुखौटा होनाचाहिए, आपके चरित्र नहीं ।[86]

---

86. यह पथ बन्धु था - नरेश मेहता - पृ.202

"धर्म को व्यक्ति की निष्ठा माननेवालें श्रीधर बाबू का जीवन साधन हीनों की विवशता एवं उनके नैतिक आचरणों की अर्थ हीनता को व्यक्त करता है ।

नरेश मेहता ने अंग्रेज़ों के शासन काल की पृष्ठभूमि में एक छोटे बच्चे के जीवन का इतिहास अपने उपन्यास "नदी यशस्वी है" में प्रस्तुत किया है । एक बच्चे की अमूर्त, अपूरित मनोवृत्तियों का सफल चित्रण इस उपन्यास में मिल जाता है । "नदी यशस्वी है" का नायक उदयन के चाचाजी अंग्रेज़ों के बहुत बडे अफसर रहे हैं । महु नामक स्थान से उसके चाचाजी का स्थानांतरण हो जाता है । नौकर लच्छमन, मुनीरखाँ आदि के परिचय से बालक उदयन के सामने बालकों के लिए निषिद्ध बातों का रहस्य खुलने लगता है । इन बातों की जानकारी से जन्मी उत्तेजना के फलस्वरूप उदयन कावेरी नामक नौकरानी से अवैध संबन्ध स्थापित करता है, किरण दीदी के मांसल-कोमल शरीर से सटकर सोना चाहता है ।

उदयन की दीदी शांति की मृत्यु हो जाती है । तोरनोद काण्ड में जीजा जी का कारावास होता है । अध्यापक लाल सिंह की बातों के प्रेरणावश उदयन कांग्रेस का अनुभावक बन जाता है ।

"नदी यशस्वी है" उपन्यास में बाल्यावस्था में बुरे संग से उत्पन्न अनैतिक आचरणों को उपन्यासकार ने प्रस्तुत किया है । उदयन के मानस में वासना का बीज मुनीरखाँ, लच्छमन आदि बोते हैं और इसका बुरा परिणाम निकलता है । कावेरी नामक नौकरानी से उसका अवैध संबन्ध उसके भ्रष्ट मानस का सूचक है ।

उदयन के चाचाजी का बलूलभ बुआ के साथ यौन संबन्ध उच्च वर्गीय लोगों के वासनामय जीवन को व्यक्त करता है ।

लेखक समाज के द्वारा बनी बनायी नैतिक मान्यताओं को ठुकराना नहीं चाहते, वे समाज के नियमों का पालन करना ही व्यक्ति केलिए उचित मानते हैं । व्यक्तिगत रूचि के विपरीत हमें समाज के हित में बहुत कुछ करना पड़ता है । "वैयक्तिक इच्छा न होने पर भी प्राय: किसी काम की एक सामाजिक या समुदायवादी इच्छा भी होती है । हम अधिकतर काम, आचार व्यवहार इसी समुदायवादी इच्छा के एक अभिभाज्य अंग बन कर ही करते हैं जब कि हमें लगता है कि यह हमारी वैयक्तिक इच्छा थी[87] ।

शैलेश मटियानी के 'भागे हुए लोग' में नैतिकता

शैलेश मटियानी का "भागे हुए लोग" व्यक्ति के मन की कुंठाओं एवं वासनामय जीवन की अनुभूतियों का चित्रण है ।

इस उपन्यास का नायक, नरोत्तम काम वासना से पीड़ित है। इसलिए पति परायणा पत्नी पार्वती की ठीक पहचान नरोत्तम ठाकुर से नहीं हो पाती । नरोत्तम अपनी पत्नी पार्वती में ग्राम सेविका चारूलता और श्यामसिंह की पंजाबिन पत्नी ईंदिरा जैसी स्त्रियों की चटुलता देखना चाहता है । पार्वती पूरे मन से अपने पति की सेवा करती है । लेकिन नरोत्तम तृप्त नहीं होता । बाबा विघ्नेश्वर प्रसाद की बीजधारी भागवती को नरोत्तम अपनी दूसरी पत्नी के रूप में स्वीकारता है । नरोत्तम यह नहीं जानता है कि भागवती बाबा की ओर से गर्भिणी है । पार्वती अपने पति को धोखेबाज़ी का शिकार जानकर, पति को लोक लांछन से मुक्त करने केलिए कहानी गढ़ कर फैलाती है कि नरोत्तम भागवती से पूर्व परिचित है ।

87. नदी यशस्वी है - नरेश मेहता - पृ.।।0

लेकिन पतिपरायण पार्वती को नरोत्तम घर से निकाल देता है । भागवती पर आसक्त नरोत्तम का नशा धीरे धीरे उतरने लगता है । उसको पार्वती की श्रेष्ठता एवं भागवती की तुच्छता का आभास मिल जाता है । नरोत्तम अपनी पत्नी पार्वती को दुबारा घर वापस लाने का परिश्रम करता है लेकिन असफल रहता है ।

नरोत्तम का जीवन यह सूचित करता है कि काम से पीड़ित व्यक्ति किस सीमा तक पतित हो सकता है । नरोत्तम का मन काम विचार से इतना उत्तेजित है कि श्याम सिंह की माँ के शव संस्कार के अवसर पर भी वह श्याम सिंह की पत्नी इंदिरा के मांसल शरीर पर विचार करता है और श्यामसिंह के प्रति ईर्षालु बन जाता है । नरोत्तम का अनैतिक आचरण उसके घर के वातावरण को कलुषित कर देता है ।

लेखक ने झूठी धार्मिक मर्यादाओं पर करारा व्यंग्य किया है । बाबा विघ्नेश्वर प्रसाद का विलासमय जीवन मठों और मंदिरों में चलनेवाले घोर अनैतिक आचरणों का पर्दाफाश करता है । उपन्यास यह व्यक्त करता है कि स्वातंत्र्योत्तर काल के अन्य क्षेत्रों की तरह धार्मिक क्षेत्र भी भ्रष्ट हो गया है, बडे बडे धार्मिक आचार्य घोर व्यभिचारी बन गये हैं, धर्म केवल भोग का साधन बन गया है । "हमारे देश में साधुओं सन्यासियों में सबसे बडी संख्या ऐसे ही लोगों की है, जो सांसारिक सुखों के भोग केलिए सन्यास लेते हैं ।"[88]

---

88. भागे हुए लोग - शैलेश मटियानी - पृ.165

बाबा समाज के सामने कई प्रश्न चिह्न खडा कर देता है । कुपथ पर चलनेवाला कोई भी व्यक्ति जब सन्यासी बनजाता है तब दुनिया उसकी पूजा करने लगती है । लेकिन जब एक संन्यासी, विवाहित जीवन बिताना चाहता है तब समाज उसको पापी या व्यभिचारी समझने लगता है । 'भागे हुए लोग' का बाबा कहता है "यहाँ इस धर्मकुण्ड में रहकर मैं लाख औरतों के साथ भोग करूँ तो भी मैं साधु सन्यासी और ब्रह्मचारी बाबा ही रहूंगा । मगर कहीं कल यहाँ से मैं किसी एक .....औरत के साथ बाहर निकलकर एक इन्सान की जिन्दगी बिताना चाहूँ तो स्साले, तुम्हारे धर्मप्राण और संत पूजक समाज के ही चुगद लोग मुझपर जूते लेके टूट पडेंगे कि बाबा पापी है, बाबा व्यभिचारी है ।[89]

बाबा के अवैध संबन्धों से उत्पन्न गर्भों को गिराने का काम करनेवाली अनुराधा डाक्टरनी के माध्यम से उच्चवर्गीय लोगों के अनैतिक जीवन की अभिव्यक्ति इस उपन्यास में मिली है । "आज भी ..... शहर के कई प्राईवट डाक्टर बाबा विघ्नेश्वरानंद के यहाँ, भक्तिभाव के साथ साथ इस मूल कारण से आते हैं कि कोई विधवा, कुंवारी, परित्यक्ता, गर्भवती बाबा की शरण में जाय तो उनके भी दोनों कार्य सिद्ध हो ।"[90]

उपन्यास की परमेश्वरी माता का जीवन स्त्रियों के प्रति किये जानेवाले अत्याचार एवं लोगों की अंधी भक्ति को सूचित करता है । दो बच्चों को छोडकर बेचारी को सन्यासिनी बननी पडी । इसलिए कि व्यभिचारिणी बताकर उसकी ससुरालवालों ने निकाल दिया । रंडी बन कर आगरा कोठों पर रह आयी । आखिर सिफलिस की बीमारी से बेकार हो गयी तो संन्यासिनी बन गयी ..... और आज हालत यह है कि उसी को लोग माता माता कहते हैं और बहुत से चरणों में माथा तक टेक देते हैं ।[91]

---

89. भागे हुए लोग - शैलेश मटियानी - पृ.145
90. वही - पृ.64
91. वही - पृ.167

लेखक ने आधुनिक भारतीय समाज के नैतिक मूल्यों के विघटन की भी मनोवैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की है । पूरी की पूरी मनुष्य जाति संस्कृति और सभ्यता के आधुनीकरण के माध्यम से अपने आदिम परिवेश में लौटने की चेष्टा करती है तो कहीं धर्म और ईश्वर के माध्यम से अपनी दमित वासनाओं और कुंठाओं की परितृप्ति का प्रयास । कहीं नाईट क्लबों के माध्यम से तो कहीं कीर्तन पूजन और मठ मंदिरों के माध्यम से अपनी आदिम प्रवृत्तियों का विस्फोट ..... कहीं सूर्यस्नान के माध्यम से तो कहीं गंगास्नान के माध्यम से अपनी शारीरिकता का सार्वजनिक प्रदर्शन, एक दूसरे को उसके आदिम रूप में देखने की ज़बरदस्त भूख[92] । इस भूख के कारण ही आधुनिक व्यक्ति समाज की बनी बनायी नैतिक संहिता का तिरस्कार करके अपनी काम तुष्टि केलिए नये साधन जुटाने का प्रयत्न करके दीखते हैं ।

श्रीलालशुक्ल के राग दरबारी में नैतिकता

राग नाथ शहर में शोध कार्य कर रहा है । उसके मामाजी वैद्यजी शिवपाल गंज का ज़मीन्दार, कालेज का मानेजिंग डायरेक्टर और सहकारी समिति का अध्यक्ष भी है । दसवीं कक्षा में पढ़नेवाले रूपपन बाबु गाँव के स्थानीय नेता है । अध्यापन कार्य में रूचि न रखनेवाला मोतीराम कालेज का साइन्स अध्यापक है । कालेज में दो गुट पैदा होते हैं । एक प्रिंसिपल का और दूसरा खन्ना अध्यापक का । सहकारी संघ में गबन हो जाता है । सरकारी रकम गबन हो जाने के मामले में वैद्यजी का भी हाथ है ।

शिवपाल गंज के सारे के सारे व्यक्तियों का जीवन अनोखा है निकम्मा आदमी सनीचर गाँव का प्रधान बन जाता है । बद्री पहलवान जिसको केवल अखाडे की जानकारी है कालेज का मैनेजर बन जाता है ।

92. भागे हुए लोग - शैलेश मटियानी - पृ.188

प्रिन्सिपल साहब अपने को बडा विद्वान समझकर चलते है । साईन्स का अध्यापक मोतीराम आपेक्षिक सिद्धान्त के संबन्ध में कुछ नहीं जानता । वैद्यजी की वाणी संतों जैसी है लेकिन करनी बिलकुल दूसरी ।

शिवपाल गंज में अफीम का कारोबार करने वाले एक नये व्यक्ति का आगमन अनेक नयी समस्याओं को जन्म देता है । धोगामल विद्यालय इन्टर कालेज में वैद्यजी का एक छत्र शासन था । अफीम का कारोबार करनेवाला रामाधीन अपना एक गुट कालेज में बनाता है । सहकारी संघ का चुनाव हो जाता है । इसमें ब्रह्मदीबाबु मैनिजिंग डायरेक्टर बन जाता है । कालेज में अत्यंत नाटकीय वातावरण में खन्ना और मालवीय को इस्तीफा देना पडता है ।

श्रीलाल शुक्ल ने प्रस्तुत उपन्यास में शिक्षा एवं राजनीतिके क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टता का परिचय दिया है । निकम्मा सनीचर का गाँव का मुखिया बन जाना, कालेज के शासन कार्य में अफीम का कारोबार करने वाले रामाधीन का आ घुसना, साईन्स बिलकुल न जाननेवाले मोतीराम का कालेज में अध्यापक बन जाना आदि घटनायें अतिशयोक्तिपूर्ण होकर भी सत्य के अंश को झलकाती है ।

लेखक ने रूप्पन बाबु के माध्यम से राजनीति पर व्यंग्य किया है रूप्पन बाबु की दृष्टि में दारोगा एवं चोर एक समान है । लेखक कहते हैं - उनके नेता होने का सबसे बडा आधार यह था कि वह सबको एक ही निगाह से देखता है । "थाने में दारोगा और हवालात में बैठा हुआ चोर दोनों उनकी निगाह में एक थे । उसी तरह इम्तहान में नकल करनेवाला विद्यार्थी और कालेज के प्रिंसिपल उनकी निगाह में एक थे । वे सबको दयनीय समझते थे

सबकौ काम करते थे, सबसे काम लेते थे[93]। राजनीतिज्ञों की कथनी और करनी में इतना बडा अंतर पैदा हो गया है कि जनता उनके शब्दों पर विश्वास नहीं करती । राजनीतिज्ञ खूब बोलते हैं, भाषण देते हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि वे लोग भाषण को भारत के विकास कार्य को आगे बढ़ाने केलिए अत्यंत सफल औज़ार मानते हैं ।

आज के युग में राजनीति या किसी भी क्षेत्र में योग्यता का कोई मूल्य नहीं रहा है । अयोग्य एवं पतित व्यक्ति ऊंचे ऊंचे पदों पर विराजमान है । श्रीलाल शुक्ल बद्रीबाबु के कालेज के मैनेजर बन जाने की खबर देकर उपर्युक्त सत्य की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं । इस प्रकार उपन्यास के अन्य पात्र सनीचर, मोतीराम, रामाधीन आदि भी अयोग्य होकर आदरणीय पद के अधिकारी बनते हैं ।

इस उपन्यास के माध्यम से श्रीलाल शुक्ल ने स्वातंत्र्योत्तर कालीन भारत के एक विकासशील गाँव के शिथिल जीवन की कहानी प्रस्तुत की है ।

❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀

93· राग दरबारी - श्रीलाल शुक्ल - पृ·2।

पांचवाँ अध्याय

यथार्थ मूल्य और दृष्टि

पांचवां अध्याय

यथार्थ, मूल्य और दृष्टि

सामाजिक यथार्थ और बदलते परिप्रेक्ष्य

जीवन में बडे पैमाने पर जो घटनायें होती रहती हैं, उन घटनाओं के अंदर हम जीवन के यथार्थ की झलक पा सकते हैं। आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक परिवेश से जुडी हुई मान्यताओं को हम सामाजिक यथार्थ की संज्ञा दे सकते हैं। "आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक परिस्थितियों का समुच्चय ही सामाजिक यथार्थ है।"[1] जीवन में जो यथार्थता है उसको आधुनिक जागरूक कलाकारों ने अपनी कृतियों में प्रस्तुत करने की कोशिश की है।

---

1. हिन्दी साहित्य कोश - धीरेन्द्र वर्मा - पृ.840

आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक क्षेत्रों की बदलती परिस्थितियों के कारण प्राचीन मूल्य विघटित होने लगे हैं । उसके स्थान पर नयी मर्यादायें पनपने लगी हैं । नये मूल्य एवं पुराने मूल्य की टकराहट के कारण जीवन के सभी क्षेत्रों में असंतुलन की स्थिति जन्म लेने लगी है । निश्चित मानदण्डों के अभाव में जीवन के क्षेत्र कलुषित हो गये हैं । "समाज में वह व्यक्ति महत्वपूर्ण बन गया जो येन केन प्रकारेण सत्ता हथियाने में सफल हुआ या रिश्वत खोरी, काला बाज़ारी, तस्करी, मिलावट, निर्माण कार्य में बेईमानी या कमज़ोर आदमी की मजबूरियों का फायदा उठाकर धन जमा करने में सफल हो गया ..... पैसों के बलपर ही मंत्री, मुख्यमंत्री आदि बनने की संभावनायें कायम हो गयी और इस प्रकार भारत में पूरी तरह से पैसा तंत्र कायम हो गया[2] ।

अर्थ के इस अतिशय प्रभाव के कारण मनुष्य के जीवन के सभी क्षेत्र मटमैले हो गये हैं । अर्थ समाज में नयी मर्यादाओं की सृष्टि करने लगा है । लोगों के जीवन में अर्थ की प्रमुखता के कारण नये संबन्ध,- आर्थिक संबन्ध, उभरने लगे हैं । व्यक्ति-व्यक्ति के बीच के प्रेम, करुणा, दया आदि मूल्य संकट-ग्रस्त बनने लगे हैं । आज आदमी किसी भी व्यक्ति की हत्या कर सकता है, किसी भी स्त्री के चारित्र्य का खंडन कर सकता है । पैसे के बल पर व्यक्ति की सारी कमज़ोरियाँ, दुर्वासनायें साकार रूप पाकर उभरने लगी हैं । अर्थ संचालित इस नये युग में ईमानदारी जैसे मूल्य की कोई सार्थकता ही नहीं है । "ईमान्दारी अपनी प्रासंगिकता खोती जा रही है । आज ईमान्दारी मूर्खता का पर्याय बन गयी है । सात्त्विक आचरण जैसा नैतिक मूल्य आज हँसी का पात्र बन गया है[3] ।"

2• हिन्दी का आधुनिक आर्थिक संकट और नया उपन्यास - डॉ•गोपाल (अनुशीलन में संग्रहीत लेख)- पृ•103

3• वही - पृ•104

समाज की अर्थ संपन्न नीति के प्रभाव स्वरूप समाज में अनैतिकता का जाल फैल गया है । साधारण व्यक्ति से लेकर बडे धार्मिक आचार्यों और राजनीतिक नेताओं के आचरण तक अर्थ का विषैला प्रभाव दिखाई पडता है । भ्रष्टाचार समाज के जीवन को कलंकित करने लगा है । "प्रधान मंत्री बनने से लेकर वेश्या बनने तक की सारी स्थितियाँ गंदी और अनैतिक है और इन सबके पीछे शोषित होने की प्रक्रिया बनी रहती है[4]।"

उच्च वर्गीय जीवन की गंदगी एवं अनैतिक आचरण समाज में यों ही बने रहते हैं । स्वतंत्रता के बाद ज़मीन्दारी उन्मूलन तो हुआ था, राजा महाराजाओं से सत्ता छीन ली गयी थी, लेकिन उनकी कामुकता एवं विलासिता की मनोवृत्ति स्वतंत्र भारत के मंत्रियों में पायी जाती है । "दु:ख केवल इस बात का है ! सामंती व्यवस्था तो समाप्त हो गयी, किंतु सामंतवादी प्रवृत्ति का अंत नहीं हुआ, अंतर केवल इतना है कि जो प्रवृत्ति पहले राजा महाराजाओं में थी अब वह मंत्रियों और नेताओं में आ गयी है[5]।

जनतंत्र के आदर्शों को अनदेखा करने वाले ये राजनीतिज्ञ दर असल स्वतंत्रता के सामान्य अर्थ को भी समझने में असफल दीखते हैं । इसलिए भारत में गरीबों का शोषण अब भी हो रहा है, अमीरों का शोसन परोक्ष रूप से अभी भी ज्यों का त्यों बना रहता है । इसलिए लोग समझने लगे हैं कि भारत में स्वतंत्रता के बाद सत्ताधिकारी तो बदले, लेकिन उनकी मनोवृत्ति नहीं बदली ; शोषण करने की प्रवृत्ति ज्यों की त्यों बनी रही ।

---

4. साम्प्रतिक हिन्दी कहानी - परमानंद गुप्त
5. द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास - लक्ष्मी सागर वार्ष्णे पृ.13

इसलिए "कुछ लोग यहाँ तक सोचने लगे हैं स्वतंत्रता और संस्कृति कुछ अल्पसंख्यक वर्ग विशेष को ही मिली है । सामान्य जन के भाग्य अब भी नहीं फिरे[6] ।

स्वतंत्र भारत में भ्रष्टाचार ऊपर से नीचे तक व्याप्त हो गया है भ्रष्टाचार के इस विषाक्त वातावरण ने सामाजिक स्वास्थ्य को नष्ट कर दिया हैं । समाज के द्वारा बनी बनायी आचरण संहिता केवल पोथीबद्ध नैतिक संहिता मात्र रह गयी है । इसलिए "समाज के अंतर्गत कामुकता पनप रही है । अश्लीलता का बोल बाला है । फैशन परस्ती के नाम पर वासनाओं का खुलकर प्रदर्शन हो रहा है, विविध प्रकार के भ्रष्टाचार विकसित हो रहे हैं[7] ।

समाज दरअसल व्यक्ति तथा परिवार को सुसंघटित करनेवाली संस्था है । आज समाज की पकड व्यक्ति और परिवार पर ढ़ीली बनती जा रही है । आर्थिक अभाव और व्यक्तिवाद का उदय व्यक्ति और परिवार के संबन्धों को शिथिल बनाने लगे हैं । व्यक्ति-व्यक्ति के बीच की ममता नष्ट हो गयी है, उसके स्थान पर आर्थिक भावना प्रमुख होने लगी है । संयुक्त परिवार का विघटित होना तथा एकांगी परिवार का उदय, स्त्री का स्वच्छंद आचरण, पतिव्रता धर्म की अवहेलना, परंपरागत धर्म पर अनास्था आदि आधुनिक भारत पर पडे आर्थिक दबाव को व्यक्त करते हैं । आर्थिक प्रभाव का सबसे बडा दुष्परिणाम यह हुआ कि स्त्री-पुरुष संबन्ध शिथिल बन गये हैं । स्त्री और पुरुष में प्रेम एवं त्याग की भावना नष्ट होने लगी है । केवल शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति विवाह का लक्ष्य बन गया है। इसलिए आधुनिक समाज में पुरुष और स्त्री आपसी संबन्ध जोडकर भी एक निष्ठ प्रेम नहीं कर सकते । "एक दूसरे के प्रति विश्वास और निष्ठा की कमी,

---

6. [redacted] - [redacted] - [redacted] द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास - लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय - पृ.43
7. अमृत - पाक्षिक - पृ.3।
डॉ. द्वारिका प्रसाद

व्यक्तिवाद की प्रवृत्ति, त्याग भावना का अभाव, घर की जिम्मेदारियों को नकारने की मनोवृत्ति, बाहरी दुनिया में अपने को महत्वपूर्ण दिखाने की आकांक्षा या बाहर के प्रति प्रतिबद्धता, अहंभाव आदि तत्व आज के दाम्पत्य जीवन में कटाव ला रहे हैं।[8]" पारिवारिक संबन्धों का विघटन समाज के शृंखलाबद्ध जीवन को क्षति पहूँचाता है ।

समाज में व्यापक पैमाने पर व्याप्त राजनीतिक भ्रष्टाचार सामाजिक जीवन को कलुषित करने लगा है । भ्रष्टाचार सामाजिक जीवन का एक धर्म सा बन गया है । राजनीतिज्ञ जनता के बीच जातीय, साम्प्रदायिक भावनाओं को भड़काकर राष्ट्रीय भावना को हानि पहूँचाता है । इस भ्रष्टाचार के कारण यहाँ वोटें खरीदी जाने लगी हैं, एम॰एल॰ए॰ खरीदे जाने लगे हैं, दल बदल होने लगे हैं, काला बज़ारी एवं तस्करी को प्रश्रय देनेवाले राजनीतिज्ञ जनता की सेवा की आड में आत्मा सेवा करने लगे हैं ।

पहले, समाज में धर्म का जो महत्व था उसमें कमी आ गयी है । धार्मिक क्षेत्र भी धर्मच्युत होता जा रहा है । लोगों के मन में असली धार्मिक भावना का लोप हो गया है, धार्मिक संस्थाओं पर लोगों का विश्वास नष्ट हो चुका है । लोग समझने लगे हैं कि बडे बडे धार्मिक आचार्य भी धर्म की आड में ऐयाशी करते हैं, विलासमय जीवन बिताते हैं, अनैतिक आचरण करते हैं ।

शिक्षा का क्षेत्र भी आर्थिक दबाव के कारण अपने मूल्यों को छोडने लगा है । यहाँ उपाधियाँ बिकने लगी हैं । न्यायालय भी भ्रष्ट हो गया है । अर्थ के सामने न्यायालय भी यहाँ सर झुकाकर खडा है । यहाँ तो न्याय खरीदा जा सकता है ।

8॰ अनुशीलन - पृ॰106

समाज के विविध क्षेत्रों के इस अवमूल्यन की स्थिति ही आधुनिक सामाजिक यथार्थ है । जीवन का यह सामाजिक यथार्थ, ईमानदारी, दया, सहानुभूति, सत्य, अहिंसा आदि परंपरागत मूल्यों के विघटन को प्रस्तुत करता है । पैसे के बल पर असत्य की विजय, जीने केलिए काला बज़ारी-रिश्वतखोरी जैसे नये नये तौर तरीके, धार्मिक और राजनीतिक क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार, व्यक्ति की स्वार्थ भावना, स्त्री पर किये जानेवाले अत्याचार, पारिवारिक संबन्धों की शिथिलता आदि हमारे सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति करते हैं । रामदरश मिश्र का मन्तव्य इस संदर्भ में बहुत ही समीचीन लगता है । "यह यथार्थ है कि ईमान्दार लोग भूखों मरते हैं, अनेक कष्ट पाते हैं और बेईमान तथा मक्कार आराम से गुसर बसर करते हैं । सज्जन प्रताड़ित और पराजित होते हैं तथा दुर्जन विजयी होते हैं ।[9]

स्वातंत्र्योत्तर कालीन सामाजिक स्थितियों के विश्लेषण से पता चलता है कि परंपरागत मूल्यों का विनाश हो गया है और नयी परिस्थितियों में नये मूल्य उभर रहे हैं । इन मूल्यों को परंपरागत दृष्टि से देखने पर बहुत सारी अनैतिकता और अधार्मिकता दिखाई पड सकती है । परंतु बदलते हुए परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखते हुए सामाजिक यथार्थ के नये स्वरूप को आंकना ही उचित होगा । ऊपर से नीचे तक व्याप्त भ्रष्टाचार, असत्य, बेईमानी, अर्थ-लोलुपता, स्वार्थ, कामासक्ति आदि एक बदले हुए समाज की दृष्टि को सूचित करनेवाली मनोवृत्तियाँ ही लगती हैं । समसामयिकता के प्रति जागरूकता रखनेवाला साहित्यकार इन सब को अनदेखा नहीं कर सकता । उनमें विश्लेषण के प्रति किस तरह की दृष्टि अपनायी जाती है, यही उसकी सर्जनात्मक प्रक्रिया का बोध करा सकती है ।

---

9. साहित्य संदर्भ और मूल्य - रामदरश मिश्र - पृ.18

कृतियों में प्रतिबिंबित वास्तविकता

सामाजिक यथार्थ पचास के पूर्व के उपन्यासों में

हिन्दी के प्रारंभिक उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ की खोज अधिक उपयोगी सिद्ध नहीं होगी, क्योंकि हिन्दी के प्रारंभिक उपन्यास मनोरंजन एवं उपदेश प्रधान रहे हैं। मानव जीवन की यथार्थता का अंश इन उपन्यासों में बहुत कम ही है। लेकिन प्रेमचंद युग में आकर उपन्यासकारों की दृष्टि समाज के विभिन्न पहलुओं पर पड़ी और उन्होंने समाज की यथार्थवादी व्याख्या प्रस्तुत करने की कोशिश की।

प्रेमचंद युग के सशक्त उपन्यासकार जयशंकर प्रसाद ने 'कंकाल' के माध्यम से बाह्याडंबरों से लिपटा तत्कालीन भारतीय समाज की शल्य क्रिया करने की कोशिश की है। धर्म के नाम पर समाज में व्याप्त मिथ्याचरणों का पोल खोल कर समाज की कुरूप तस्वीर प्रस्तुत करने का प्रयास उपन्यास में दृष्टिगत होता है। मंदिरों में बैठकर मौज उडानेवाला धार्मिक आचार्य देवी निरंजन, धार्मिक कार्यों की आड में व्यभिचार करनेवाली किशोरी, पराई स्त्री से अनैतिक संबन्ध जोडनेवाला श्रीचंद आदि तत्कालीन उच्चवर्गीय जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत करते हैं।

'तितली' में भी प्रसाद जी ने उच्चवर्गीय जीवन की कामुकता का परिचय दिया है। अपने उच्छृंखल जीवन के द्वारा सामंतीय नैतिकता का परिचय देनेवाला विलासी श्यामलाल, धन संचय एवं विलास को धर्म माननेवाला महंत आदि प्रसाद युगीन सामाजिक स्थिति का पर्दाफाश करते हैं। प्रसाद ने आचरण के क्षेत्र पर व्याप्त चारित्रिक कलंक की ओर अपनी यथार्थ-पूर्ण दृष्टि डाली है।

प्रसाद के उपन्यासों में जो यथार्थ झलकता है वह समाजवादी चेतना से चालित नहीं, अपितु समाज के उच्च वर्गीय जीवन में व्याप्त कालुष्य का चित्रण प्रस्तुत करता है। इस कारण यथार्थ का जो स्वरूप प्रसाद प्रस्तुत करते हैं वह आंशिक है सही अर्थ में सामाजिक यथार्थ का द्योतक नहीं है ।

इलाचन्द्र जोशी ने अपने 'लज्जा' उपन्यास में उच्चवर्गीय समाज की कामुक मनोवृत्तियों का वर्णन किया है । उच्चवर्गीय स्त्री चाहे वह किसी भी ज़माने की हो वह सब कुछ कर सकती है । समाज उसके विरोध में कभी खडा भी नहीं होता । लेकिन निम्नवर्गीय या मध्यवर्गीय स्त्री पर समाज के नियमों की कडी निगाह पडती रहती है । उच्च वर्गीय स्त्री क्लब जा सकती है, पुरुषों के साथ घूम सकती है । लेकिन निम्न वर्गीय या मध्य वर्गीय स्त्री ये कार्य कर ही नहीं सकती और यदि करने की कोशिश करती है तो उसे कुलटा कह कर उसके सर्वनाश केलिए समाज उतावला हो जाता है ।

जोशी का 'सन्यासी' उपन्यास पुरुष के मन का विश्लेषण करने का प्रयास है । पुरुष एक से अधिक स्त्रियों के साथ संबन्ध स्थापित कर सकता है, लेकिन कभी अपनी स्त्री को पर पुरुष से प्रेम करने नहीं देगा । पुरुष द्वारा निर्धारित यह नियम स्त्री पुरुष संबन्धों की नैतिकता का आधार बन गया है । परिस्थितियां कितनी बदलीं फिर भी पुरुष द्वारा निर्धारित यह नैतिक मान्यता ज्यों की त्यों बनी है । व्यभिचारी पुरुष भी नारी से चारित्र्य की कामना करता है । जोशीजी ने पुरुष प्रधान समाज के इस नियम का बहुत ही यथार्थवादी ढंग का परिचय अपने उपन्यास में दिया है ।

'पर्दे की रानी' में जोशीजी ने समाज के एक कटु सत्य की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है । वेश्या की पुत्री चाहे वह कितनी सुशील क्यों न हो, समाज उसको शंका की दृष्टि से देखता है । समाज वेश्या की

पुत्री को वेश्या ही समझता है या उसके अंदर वेश्यागत मनोवृत्तियों का आरोप करता है । वेश्या की पुत्री निरंजना में भी वेश्यापन को ढूँढ निकालने केलिए प्रयत्नशील मनमोहन सिंह जैसे व्यक्ति पुरुष की कामुकता को सूचित करता है । अपनी बीबियों को घर के चहार दीवारी के अन्दर सुरक्षित रखकर परायी औरतों से खिलवाड करने केलिए तैयार कामातुर व्यक्ति पहले भी थे आज भी है ।

'प्रेत और छाया' में मानव मन की मनोवैज्ञानिक व्याख्या मिलती है । परिस्थिति ही लोगों के मानस को भ्रष्ट किया करती है । पत्नी पर वेश्या का लांछन लगानेवाला पुरुष, पुत्र को जारजपुत्र कहने वाला पुरुष इस-असल पत्नी और पुत्र के जीवन को कलुषित करता है । पति और पत्नी के बीच की शंका दोनों के जीवन को कलुषित करने के साथ ही बच्चों के जीवन को भी नष्ट कर देती है । जोशीजी ने इस तथ्य का रूपांकन 'प्रेत और छाया' में किया है । पारसनाथ के पतित जीवन के माध्यम से अशिक्षित, निम्न-मध्यवर्गीय जीवन की यथार्थता को पकडने का प्रयास उपन्यासकार ने किया है ।

ऐसे लोग बहुत अधिक मिल जाते हैं जिनकी प्रभुता एवं धूर्तता के नमूने समाज में हर कहीं दिखाई देते हैं, जिनके संबन्ध में अनैतिक जीवन की अफवाहें सुनाई पडती हैं । लक्ष्मीनारायण सिंह ऐसा एक आदमी है जिसके पास संपदा है, प्रभुता है । वह स्त्रियों से खिलवाड करके उनके जीवन को तबाह का देता है । लक्ष्मीनारायण सिंह जैसे उच्चवर्गीय व्यक्तियों की सफलता और महीप जैसे असंपन्न व्यक्तियों के जीवन की असफलता भारतीय समाज की अर्थ प्रधान नीति की अभिव्यक्ति करती है ।

'मुक्तिपथ' में जोशीजी ने स्त्री पुरुष संबन्धों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है । उपन्यास की कथा अतिरंजित है । समाज-कल्याण की चिंता में अपनी वैयक्तिक चिंता को बिलकुल नगण्य समझनेवाले

राजीव वर्मा जैसे पुरुष बहुत सारे मिल सकते हैं । समाज में ये धर्मात्मा के नाम से जाने जाते हैं । स्त्री-पुरुषों के संबन्धों के मूल में शारीरिक भूख ही प्रमुख है । इस शारीरिक भूख की पूर्ति के बिना स्त्री और पुरुष के संबन्ध खोखले बन जाते हैं । सुनंदा को शारीरिक तृप्ति राजीववर्मा इसलिए नहीं देता कि वह समाज कल्याण की भावना के आगे व्यक्तिगत सुख दु:खों की चिंता नहीं करता । राजीववर्मा का चरित्र अत्यंत दुर्बल एवं अस्वाभाविक प्रतीत होता है ।

जोशीजी का उपन्यास "जिप्सी" की कथा अतिरंजित है । रंजन जैसे चरित्र समाज में प्राय नहीं मिलेंगे । रंजन का, गली से जीवन संगीनी चुनना, पत्नी के आग्रह के अनुसार धर्म परिवर्तन करना आदि बातें अत्यंत अस्वाभाविक ही लगती हैं । इस उपन्यास में पुरुष की कामुक मनो-वृत्ति, स्त्रियों की विलास लोलुपता आदि का दर्शन तो अवश्य हो जाता है ,; लेकिन अन्य उपन्यासों की भाँति इस उपन्यास में जोशीजी ने सामाजिक यथार्थ को छूने का प्रयास नहीं किया है ।

जोशीजी ने यौन कुंठाओं से युक्त पात्रों के माध्यम से नैतिक यथार्थ के स्वरूप को उभारकर रखा है । नैतिक आचरण की यथार्थता और तज्जनित समस्यायें सामाजिक जीवन के एक पक्ष को मात्र प्रस्तुत करती हैं । जोशी के उपन्यास आंशिक रूप में सामाजिक जीवन के नैतिक यथार्थ को पकडने के प्रयास में लिखे गये हैं ।

जोशी के उपन्यासों में पुरुष द्वारा निर्धारित नैतिक संहिता के भीतर दबी पडी सिसकनेवाली नारी एक ओर तो मिलेगी तो दूसरी ओर यौनाकर्षण में संबन्धों को तुच्छ समझनेवाली नारियाँ भी । लेखक ने मनो-विज्ञान के सहारे व्यक्ति के मन का विश्लेषण करने का प्रयास किया है । इसलिए सामाजिक यथार्थ के नैतिक पक्ष को मात्र आंकने की कोशिश उनके उपन्यासों में मिलती है ।

जैनेन्द्र के उपन्यासों में यथार्थ की पहचान करना अत्यधिक दुष्कर कार्य है । उनके उपन्यासों को सामाजिक न कह कर वैयक्तिक कहना अधिक उचित होगा । जैनेन्द्र के स्त्री एवं पुरुष पात्रों को हमारे समाज में ढूँढ़ निकालना बहुत ही कठिन कार्य है ।

उदाहरणार्थ 'परख' का नायक सत्यधन जो झूठ बोलना नहीं चाहता, वकालत पढने केलिए जाता है और उसके सभी कार्य उतने संदिग्ध लगते हैं कि यथार्थ की दृष्टि से उसपर विश्वास ही नहीं किया जा सकता ।

'त्यागपत्र' में स्त्री की असहाय स्थिति की ओर हमारा ध्यान उपन्यासकार ने खींचा है । स्त्री का उच्छृंखल बन जाना समाज सह नहीं सकता । समाज की दृष्टि में घर से परित्यक्ता नारी अकुलीन है, कुलटा है, चाहे उसके शरीर और आत्मा पवित्र हो । जब समाज को पता चलता है कि मृणाल जज प्रमोद की बुआ है तब समाज की दृष्टि में प्रमोद की सारी कुलीनता नष्ट हो जाती है । उपेक्षिता नारी से यदि कोई व्यक्ति संबन्ध जोडता है वह भी समाज की दृष्टि में पतित बन जाता है । लेखक ने जीवन के इस सत्य की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है ।

'सुनीता' उपन्यास के सुनीता और श्रीकांत, जैसे पात्र समाज में न मिलने के बराबर है । अपनी पत्नी को दोस्त की सारी इच्छाओं की पूर्ति करने केलिए आदेश देनेवाला पति भारत में शायद ही मिलेगा । पुरुष की दृष्टि में पत्नी केवल अपनी निजी संपत्ति है । अपनी निजी संपत्ति को दोस्त के सामने प्रस्तुत करना, उनके बीच संबन्धों को बढ़ाना बहुत ही असाधारण बात लगती है । हरिप्रसन्न के साथ सुनीता का बन जाना, हरिप्रसन्न के आगे निर्वस्त्रा होना अत्यधिक, अस्वाभाविक अश्लील

एवं कामुक प्रसंग ही प्रतीत होता है । असली जीवन से इन घटनाओं का कोई संबन्ध नहीं है ।

'कल्याणी' उपन्यास एक उच्चवर्गीय युवती की जीवन गाथा है । कल्याणी का जीवन आधुनिक जीवन बोध को व्यक्त करता है । एक से प्रेम और अनेकों से शारीरिक संबन्ध, अनेकों से प्रेम और एक से शारीरिक संबन्ध स्थापित करनेवाले, मन एवं तन से व्यभिचार करनेवाले, पुरुष एवं स्त्री की भारतीय समाज में बहुतायत है । कल्याणी आधुनिक जीवन की विसंगतियों का परिचय देती है ।

व्यक्तिवादी उपन्यासकार जैनेन्द्र के सारे के सारे पात्र उच्छृंखल जीवन बितानेवाले हैं । कल्याणी, सुनीता, मृणाल आदि स्त्री पात्रायें उच्चवर्गीय हैं ही फिर भी पुरुष की दमन नीति को सहती है, झेलती है। जैनेन्द्र के पुरुष पात्र अपने आप में कापुरुष हैं, मानसिक यंत्रणाओं के शिकार हैं । जैनेन्द्र ने जिस यथार्थ को अपने उपन्यासों के माध्यम से प्रस्तुत किया है वह यथार्थ दार्शनिक सीमा पर खडा होता है । इस कारण उपन्यास में वर्णित घटनायें और पात्रों के आचरण सच्चाई से दूर जा पडते हैं । सच्चाई के अभाव के कारण सामाजिक यथार्थ का बोध या किसी सामाजिक सत्य का चित्रण अपने सही अर्थ में जैनेन्द्र के उपन्यासों में नहीं मिलता। लादी हुई घटनायें और झूठे लगनेवाले पात्र, अविश्वसनीय परिस्थितियाँ आदि के माध्यम से सामाजिक यथार्थ को चित्रित नहीं किया जा सकता । इस कारण जैनेन्द्र के उपन्यासों में प्रकट यथार्थ न समाज सापेक्ष है, न व्यक्ति सापेक्ष । लगता है कि लेखक एक दार्शनिक सत्य की खोज में है जिसका जीवन के यथार्थ से बहुत कम संबन्ध रह गया है । कुल मिलाकर जैनेन्द्र का यथार्थ जीवन का असली यथार्थ नहीं लेकिन कुछ इन गिने अबनार्मल व्यक्तियों के जीवन का यथार्थ है ।

प्रगतिवादी उपन्यासकार यशपाल के सारे के सारे उपन्यास सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति प्रस्तुत करते हैं । यशपाल ने अपने उपन्यासों में जीवन की समस्याओं की छानबीन करने के साथ साथ मार्क्सीय दृष्टिकोण के आधार पर उन पर प्रकाश भी डाला है ।

'मनुष्य के रूप' उपन्यास की अशिक्षित नायिका सोमा जीवन की विषम परिस्थितियों से गुज़रती हुई अंत में फिल्म अभिनेत्री बन जाती है । उच्चवर्गीय नारी मनोरमा एवं निम्नवर्गीय सोमा का जीवन भारतीय समाज में नारी की अत्यंत शोषित स्थिति को व्यक्त करता है । इस उपन्यास के माध्यम से उच्चवर्गीय जीवन के अनैतिक आचरणों का परिचय तो मिल जाता है साथ ही साथ साम्यवादियों के विरुद्ध उठाये जानेवाले षड्यंत्रों का भी पता चलता है ।

'पार्टि कामरेड' में साम्यवादियों के आचरणों के विरुद्ध समाज में व्याप्त मिथ्या धारणाओं का मुँह तोड जवाब देनेवाले उपन्यासकार गीता के माध्यम से वर्ग हीन समाज के निर्माण में सक्रिय भाग लेनेवाली नारी के रूप को भी प्रस्तुत करते हैं ।

'दादा कामरेड' में क्रांतिकारी जीवन के अंदर झांकने का प्रयास लेखक ने किया है । क्रांतिकारी हरीश से शारीरिक संबन्ध जोडकर गर्भिणी बन जानेवाली शैलबाला विवाह की नैतिकता पर ठेस पहुँचाती है । विवाह संबन्ध न स्थापित करके गर्भिणी बन जाना तो अनैतिक है लेकिन यह संबन्ध समाज में उभरनेवाली नयी मूल्य धारणा का सूचक बन जाता है । क्रांतिकारियों के जीवन के आदर्शों के खोखलेपन को व्यक्त करके लेखक ने समाज के बदलते परिवेश एवं बदलती मान्यताओं की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है ।

'देशद्रोही' में समाजवादी एवं क्रांतिकारी दलों के बीच की टकराहट का वर्णन एवं साम्यवादी विचारों का समर्थन मिलता है । शकालू पति राजाराम, पत्नी चंदा, खन्ना, राज, बद्रीबाबु-के माध्यम से जीवन के यथार्थ को अभिव्यक्त करना लेखक का लक्ष्य है ।

पचास के पूर्व लिखे गये यशपाल के इन उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ का स्वरूप झलकता है । वर्ग संघर्ष के आधार पर समाज में व्याप्त शोषण और अन्याय को आंकने की कोशिश यशपाल ने अपनी इन प्रारंभिक रचनाओं में प्रस्तुत की है । जिस सामाजिक यथार्थ का स्वरूप यशपाल के उपन्यासों में मिलता है वह पूर्णतया सामयिक है । रोटी की समस्या को, शोषित वर्ग की पीडा को एवं क्रांति की आवाज़ को उपर उठाने का सफल प्रयत्न यशपाल के उपन्यासों में यथार्थवादी जीवन स्पंदन को भर देता है ।

उग्र जी ने अपने उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ को सही रूप में चित्रित किया है । उनकी दृष्टि सुधारवादी रही है । 'चंद हसीनों के खुतूत' में हिन्दु मुस्लीम वैमनस्य की पृष्ठ भूमि में प्रेम की महत्ता अंकित की गयी है । नरगिस और मुरारिकृष्ण के माध्यम से जातीय एवं साम्प्रदायिक भावनाओं के भंवर में स्वाहा हो जानेवाला प्रेम हिन्दु मुस्लीम एकता की भावना को उजागर करता है । 'सरकार तुम्हारी आंखों में' भोग विलास को अपने जीवन के एक मात्र लक्ष्य समझनेवाले एक राजा की कथा वर्णित है । काम के नशे में अंधा हो जानेवाला राजा आत्मजा से भी बलात्कार करता है । यहाँ सामंतीय वातावरण के सहारे उपन्यासकार ने सामंत कालीन यथार्थ को दिखाया है ।

'जीजीजी' में उग्रजी ने अनमेल विवाह की समस्या को उठाया है । लेखक ने अनमेल विवाह के बुरे परिणामों को अपने उपन्यास द्वारा दिखाकर विवाह संबन्धी सामाजिक यथार्थ को व्याख्यायित किया है। पति को देवता समझनेवाली उपन्यास की नायिका प्रभा परंपरागत आदर्शों की प्रतिष्ठा करती है ।

शराब जैसे नशीले पदार्थों के दुष्प्रभाव का अंकन करनेवाला 'शराबी' उपन्यास सुधारवादी ढ़ंग का है । शराब के प्रभाव से पारसनाथ का घर उजड जाता है, उसकी कुलीनता नष्ट हो जाती है, पुत्री को वेश्या बननी पड़ती है ।

उग्र जी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से युगीन यथार्थता को परखा है । उनके उपन्यासों में सामाजिक भावना ही अधिक प्रबल है । समाज में व्याप्त बुराईओं की ओर लेखक ने हमारा ध्यान आकर्षित किया है । इस दृष्टि से इन उपन्यासों का यथार्थ एक विशेष कोटि का बन जाता है।

भगवतीचरण वर्मा का 'चित्रलेखा' उपन्यास एक विशेष कोटि का उपन्यास है जिसमें पाप और पुण्य की दार्शनिक व्याख्या की गयी है । 'तीन वर्ष' उपन्यास के द्वारा विवाह संबन्ध में आर्थिक लाभ की कामना करने वाली प्रभा, वेश्या होकर भी मन की पवित्रता को ज्यों की त्यों सुरक्षित रखनेवाली सरोज जैसी स्त्री पात्राओं के माध्यम से दो विभिन्न मनोवृत्तियों के चित्रण करने की कोशिश उपन्यासकार ने की है, साथ ही साथ अर्थाभाव से उत्पन्न आधुनिक युवा की कुंठा पाठकों के सामने उभर कर आने लगती है ।

स्वतंत्रता संग्राम की पृष्ठ भूमि में लिखा भागवतीचरण वर्मा का 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' कांग्रेसी, मार्क्सवादी एवं क्रांतिकारियों के जीवन का पर्दाफाश करके, अंग्रेज़ी शासन के अनुकूल एवं विरुद्ध काम करनेवाले व्यक्तियों के

आदर्शों के बीच की टकराहट को प्रस्तुत करता है । उपन्यास के पुरुष पात्र अपने आदर्शों के पीछे पागल है तो कुछ औरतें भी उनका सहयोग देती फिरती हैं । उपन्यास की नारियों में कुछ पतिव्रता धर्म पर विश्वास करती हैं तो कुछ आधुनिक जीवन बोध का परिचय भी देती है । वीणा जैसी स्त्री पात्रायें उभरती नयी चेतना को वाणी देती हैं ।

उपन्यास सम्राट प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में युगीन समस्याओं को अभिव्यक्त किया है । उनके उपन्यासों में भारतीय समाज का स्वाभाविक एवं अत्यंत यथार्थ वादी स्वरूप झलकता है । प्रेमचंद के उपन्यासों में समसामयिक बोध के साथ साथ सामाजिक यथार्थ का तटस्थ चित्रण भी दिखाई पड़ता है । अशिक्षित एवं अरक्षित सर्वहारा किसान वर्ग की दु:ख भरी कथा यथार्थ के आधार पर प्रस्तुत करके प्रेमचंद ने सामाजिक यथार्थ को अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचाया है ।

"प्रेमाश्रम" में विधवा विवाह की समस्या को प्रेमचंद ने ऊपर उठाया है । तत्कालीन समाज में स्त्री को, विधवा हो जाने पर अंत तक विधवा के जीवन का निर्वाह करना पड़ता था । लेखक ने विधवाश्रम की स्थापना करके इस समस्या को सुलझाने का प्रयत्न किया है । 'वरदान' असली रूप में एक प्रेमकथा है । प्रेमचंद ने 'वरदान' में अनमेल विवाह की समस्या का चित्रण किया है । वरदान का नायक प्रतापचंद्र वैरागी बन कर देश सेवा के मार्ग को चुन लेता है ।

" सेवासदन" में प्रेमचंद ने वेश्या समस्या को प्रस्तुत किया है । किसी स्त्री को वेश्या का लेबल मिल जाने से वह समाजच्युत नारी बन जाती है उसका सारा पारिवारिक सुख नष्ट हो जाता है । पुरुष वेश्याओं के साथ खिलवाड करते हैं, उसके घृणित जीवन के बारे में टिप्पणियाँ देते फिरते हैं,

लेकिन उस घृणित कार्य को समाप्त करने केलिए वे सहयोग नहीं देते । विवाह जैसे शुभ अवसरों पर वेश्या अवश्य वस्तु है ।

'प्रेमाश्रम' में ज़मीन्दारों के शोषण के फल स्वरूप धन एवं पारिवारिक सुखों से वंचित काश्तकारी वर्ग की विवशता को लेखक ने अंकित किया है । लोगों से रिश्वत लेनेवाला डाक्टर, काश्तकारों की जिन्दगी को पुलिस की सहायता से बरबाद करनेवाला ज़मीन्दार आदि समाज के शोषण-ग्रस्त वातावरण का परिचय देते हैं । विदेश जाने के कारण, समाज से भ्रष्ट हो जानेवाला प्रेमशंकर, धर्म से भ्रष्ट हो जाने के डर से पत्नि सेवा करने में हिचकनेवाली श्रद्धा आदि तत्कालीन धर्म के खोखलेपन को व्यक्त करते हैं ।

'कायाकल्प' अत्यंत अस्वाभाविक उपन्यास है । उपन्यास की कथा राजा महाराजाओं की है जिसमें कायापलट आदि अस्वाभाविक घटनाओं का वर्णन मिलता है । लेखक ने सामंतकालीन यथार्थ को पकड़ने का प्रयास इस उपन्यास में किया है ।

'गबन' उपन्यास दिखावे की भावना के दुष्परिणामों की अभिव्यक्ति करता है । जीवन के यथार्थ की ठीक पहचान के बिना किसी भी व्यक्ति का सामाजिक जीवन संतुष्ट नहीं हो सकता । यथार्थ से मुंह फेरकर चलना खतरे के बाहर का कार्य नहीं है । यथार्थ से समझौता करके जीने में ही हर व्यक्ति की भलाई निहित रहती है । जीवन के इस सत्य को वाणीबद्ध करने की कोशिश इस उपन्यास के ज़रिए प्रेमचंद ने की है । दिखावे की भावना के कारण झूठ के बाद झूठ बोलने केलिए मजबूर होनेवाला उपन्यास का नायक अनेक कष्ट झेलने केलिए बाध्य हो जाता है । अंत में उसका उद्धार समझदार पत्नी के द्वारा हो जाता है ।

'रंगभूमि' में प्रेमचंद ने पूंजीवादी व्यवस्था का विरोध किया है । सूरदास के माध्यम से जनता के मन से बिलकुल गायब ईमान्दारी, सत्य जैसे मूल्यों को पुन: प्रतिष्ठित करने की कोशिश उपन्यासकार ने की है । गाँव के पवित्र वातावरण को सुरक्षित रखने केलिए कटिबद्ध सूरदास कारखाने की स्थापना का विरोध करता है। जान सेवक असली पूजीपति का प्रतीक है जो अपने कारखाने केलिए कोई भी जघन्य कार्य करने से नहीं हिचकता । सोफिया और विनयसिंह के प्रेम के वर्णन से बदलती हुई प्रेम भावना को प्रेमचंद ने अंकित किया है ।

'कर्मभूमि' में उपन्यासकार ने मंदिर प्रवेश, अछूतों की समस्या आदि को विषय बनाया है । अर्थ ही सब बुराईओं की जड है, इस तथ्य का समर्थन इस उपन्यास में प्राप्त होता है ।

'निर्मला' में अनमेल विवाह की समस्या का वर्णन मिलता है । यहाँ विवाह के आंतरिक सत्य का उद्घाटन हुआ है ।

'गोदान' में शहरी एवं ग्रामीण समाज का चित्रण प्रेमचंद जी ने प्रस्तुत किया है । होरी का चरित्र गाँव के दयनीय किसान के असफल जीवन को प्रस्तुत करता है । होरी एक ऐसा किसान है जो ज़मीन्दारों पर अटूट विश्वास रखता है । उसकी आस्था ग्राम पंचायत पर है । पारिवारिक बंधनों से मुक्त होकर झुनिया नामक अहीरिन लड़की से विवाह करके एकांगी जीवन बितानेवाला गोबर उभरती नयी पीढ़ी का प्रतीक है । खन्ना, प्रो॰ मेहता, डॉ॰ मालती आदि के द्वारा शहर के धनी विभाग के विशेष वातावरण का चित्र प्रस्तुत करने के साथ साथ रायसाहब आदि के माध्यम से ज़मीन्दारी प्रथा के शोषण को चित्रित करने का प्रयास भी उपन्यासकार ने किया है ।

प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों के ज़रिए तत्कालीन समाज की यथार्थता को पकडने का प्रयत्न किया है । प्रेमचन्द ने युगीन समस्याओं को अपने उपन्यासों में प्रस्तुत करके उन उलझी हुई समस्याओं को सुलझाकर समाज को सही मार्ग निर्देशन कराने का प्रयत्न किया है । हिन्दी उपन्यास क्षेत्र में प्रेमचंद ऐसे एक कलाकार है जिन्होंने अपनी सामाजिक दायित्व को उपन्यासों के माध्यम से निभाया है । लगता है कि समाज के प्रति अपनी कर्तव्य भावना को निभाने के लिए ही प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों की सृष्टि की है । सामाजिक यथार्थ का चित्रण जिस दृष्टि से प्रेमचंद जी ने प्रस्तुत किया है, वह दृष्टि अत्यंत अनोखी है । क्योंकि तभी तक उपन्यास में इस तरह के सामाजिक यथार्थ को आश्रय नहीं मिला था । यथार्थ से उभरी हुई समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करते समय प्रेमचंद की दृष्टि पूर्ण रूप से यथार्थ पूर्ण नहीं रही । यह उनके यथार्थवाद को सीमित कर देनेवाला एक तथ्य है ।

सामाजिक यथार्थ पचास के बाद के उपन्यासों में

पचास के बाद के उपन्यासों में जो यथार्थता झलकती है वह कई दृष्टियों से पचास के पूर्व के उपन्यासों में दिखाई पडने वाले यथार्थ बोध से जुडी हुई लगती है । विशेषकर जोशी, जैनेन्द्र, यशपाल आदि रचनाकारों की पचासोत्तर रचनायें उनकी पूर्ववर्ती रचनाओं की यथार्थता को ही लेकर खडी होती हैं । मूल्य बोध की दृष्टि से समाज में आये हुए परिवर्तनों का सीधा प्रभाव उन रचनाओं में कम ही परिलक्षित होता है ।

जोशीजी का 'जहाज का पंछी' उपन्यास एक आवारे नायक के माध्यम से जीवन के राजनीतिक, सामाजिक क्षेत्रों की मनोवैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत करता है । सामाजिक क्षेत्र में व्याप्त अनैतिक आचरणों का स्पष्ट चित्रण इस उपन्यास में प्राप्त होता है । जोशी जी ने "जहाज़ का पंछी" में

अनाथालयों के आंतरिक रूप को पहचानने की कोशिश की है । अनाथालयों के लेबल चिपकाकर स्त्रियों का व्यापार करनेवाली संस्थायें सामाजिक क्षेत्रों में कार्यरत अवांछनीय तत्वों का परिचय देती हैं । पढ़े लिखे आदमियों की बेकारी की समस्या को उपन्यास के नायक ने अपने जीवन के द्वारा दर्शाया है । उपन्यास अत्यंत अस्वाभाविक होते हुए भी समाज की यथार्थता की पहचान करने में सफल प्रतीत होता है ।

जैनेन्द्र के 'सुखदा' उपन्यास में स्त्री और पुरुष के जीवन की विषमताओं की अभिव्यक्ति मिलती है । उपन्यास की नायिका सुखदा अपने अहंबोध के कारण पति कांत से धन मिल जाने में असमर्थ बन जाती है । सुखदा पारिवारिक जीवन से आसंतृप्त होकर क्रांतिकारियों से संबन्ध जोड़ती है । सुखदा उपन्यास की कथा अत्यंत कृत्रिम जान पड़ती है ।

"विवर्त" की नायिका मोहिनी और नायक जितेन की प्रेम कथा में स्वाभाविकता की कमी है । मोहिनी के प्रेम से वंचित जितेन का क्रांतिकारी बन जाना, क्रांतिकारी जीवन में भी असफलता का परिचय देना अत्यंत दुर्बल घटनायें हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि जैनेन्द्र के नायक और नायिका प्रेम से वंचित होकर क्रांतिकारी जीवन बिताने लगते हैं । सुखदा पारिवारिक जीवन से विमुख होकर, क्रांतिकारी दलों से संबन्ध जोड़ती है तो जितेन प्रेम से वंचित होकर क्रांतिकारी बन जाता है ।

"अंतर" उपन्यास की नायिका अपरा उच्चवर्गीय जीवन की उच्छृंखलता को वाणी देती है । वह समाज में खुलकर व्यवहार करती है और समाज उसे उच्छृंखल चरित्रहीन नारी समझता है ।

जैनेन्द्र का 'जयवर्धन' राजनीतिकी दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत करता है । उपन्यास के स्वामी चिदानंद राजनीति में धार्मिक आचार्यों के हस्तक्षेप को व्यक्त करता है । डॉ॰नाथ, ऐलिसेबेथ आदि प्रगतिकामी दलों के नेताओं का आचरण राजनीति में व्याप्त मिथ्याचरणों को सूचित करताहै ।

'मुक्तिबोध' उपन्यास में राजनीतिज्ञों के भ्रष्ट आदर्शों की व्याख्या मिलती है । उपन्यास का नायक सहाय अन्य स्त्री से संबन्ध स्थापित करता है । सहाय की पत्नी पति के उच्छृंखल आचरण केलिए छूट भी देती है । आधुनिक भारत के मंत्री से लेकर समाज के साधारण जन तक का जीवन भ्रष्टाचारपूर्ण है । आदर्श का कोई मूल्य भारतीय समाज में नहीं रह गया है । लेखक ने इस सत्य को हमारे सामने प्रस्तुत किया है । बदलनेवाले सामाजिक यथार्थ का स्वरूप दिखाकर मूल्यच्युति के विकराल स्वरूप को उपन्यासकार ने दर्शाया है ।

यशपाल का 'झूठा सच' भारत की स्वाधीनता प्राप्ति एवं बंटवारे के आधार पर लिखा गया है । यशपाल ने 'झूठा सच' में नारी की दुर्दशा का, उसके प्रति किये जानेवाले अत्याचारों का वर्णन करके भारतीय नारी की विवशता का परिचय देने के साथ ही साथ तारा को स्वावलंबिनी नारी बनाकर स्त्री को शोषण से मुक्त कराने का प्रयत्न भी किया है । उपन्यास में राजनीतिक नेताओं के भ्रष्ट मानस को, आदर्शवादियों के जीवन के खोखलेपन को व्यक्त करने का प्रयास भी दृष्टिगत होता है ।

'बारह घंटे' उपन्यास में एक विधुर एवं विधवा के निकट आ जाने की कथा वर्णित है । इस उपन्यास के माध्यम से उपन्यासकार ने नयी नैतिक मान्यताओं को समाज के सामने प्रस्तुत किया है और यह दिखाने की कोशिश की है कि मृत व्यक्ति की यादों की अपेक्षा जीवित व्यक्ति का सामीप्य ही सत्य बन सकता है । *दिव्या अमिता* 'अमिता' उपन्यास में बौद्धकालीन सामाजिक यथार्थ का परिचय मिलता है ।

मार्क्सीय दृष्टि से समाज के अंग अंग की व्याख्या करने का प्रयत्न यशपाल के सारे के सारे उपन्यासों में दृष्टिगत होता है । तत्कालीन सामाजिक यथार्थ को प्रस्तुत करने में यशपाल जी ने अपनी कल्पना और विवेक का उपयोग किया है ।

भगवतीचरण वर्मा का उपन्यास 'भूले बिसरे चित्र' स्वतंत्रता के पूर्व के भारतीय समाज का चित्रण प्रस्तुत करता है । मुंशी शिवलाल का सामंतीय जीवन ; ज्वाला प्रसाद, गंगाप्रसाद जैसे उच्च पदधिकारियों का अधार्मिक जीवन, स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेनेवाले नवल किशोर जैसी नयी पीढ़ी के लोगों का जीवन आदि के द्वारा युग की मान्यताओं के अनुसार बदलनेवाली दृष्टियों की अभिव्यक्ति वे प्रस्तुत करते हैं ।

'सामर्थ्य और सीमा' स्वाधीनोत्तर भारत के राजनीतिज्ञों की मनोवृत्तियों का विश्लेषण करने के साथ ही साथ मनुष्य की सामर्थ्य और सीमा की व्याख्या प्रस्तुत करता है । सुमनपुर योजना केलिए आये पांचों विशेषज्ञ रानी मानकुमारी पर मोहित हो जाते हैं । विवाहित और अविवाहित व्यक्तियों की यह कामना, नारी के प्रति उच्चवर्गीय दृष्टिकोण को सूचित करती है । लेखक ने यह कहने की कोशिश की है कि मानव की क्षमता की भी एक सीमा होती है । अपनी अपनी क्षमता पर गर्व करनेवाले व्यक्ति को विधाता के सामने झुकना ही पड़ता है ।

'सीधी सच्ची बातें' उपन्यास में स्वातंत्र्योत्तर भारत के एक असहाय व्यक्ति के आन्तरिक वेदना को पहचानने का प्रयास लेखक ने किया है । उनके जीवन के माध्यम से लेखक ने कुलसुम, परवेज़ जैसे संपन्न व्यक्तियों के जीवन की यथार्थता को परखा है । जीने की कला में अनभिज्ञ असंपन्न व्यक्ति जगत् प्रकाश कभी साम्यवादी बनना चाहता है, कभी काग़ज़ी कार्यों में भाग लेता है, कभी स्त्रियों का प्रेम चाहता है । लेकिन जीवन के हर प्रयत्न में उसको असफलता ही मिलती है ।

बंटवारे के फल स्वरूप टूटी हुई ज़िन्दगी का चित्र 'वह फिर नहीं आयी' उपन्यास में मिलता है । रानी श्यामला और जीवनराम वास्तव में टूटे हुए व्यक्ति प्रतीत होते हैं । जीवन राम के प्रेम को सुरक्षित रखने केलिए

रानी श्यामला को अनेक पुरुषों के साथ संबन्ध जोडना पडता है । प्रेम को सुरक्षित रखने केलिए कोशिश करनेवाली रानी श्यामला और जीवन राम आधुनिक जीवन की संकीर्णताओं का परिचय देते हैं ।

'सबहि नचावत राम गोसाई' दरअसल समाज की समालोचना ही प्रतीत होता है । नौका परस्ती, बेईमानी जैसे नये मूल्यों को जीवनका धर्म समझनेवाला राधेश्याम, राजनीतिक क्षेत्र में सफल बननेवाला पेशेवर डाकु का प्रपौत्र जबरसिंह आदि उद्योग पतियों के अधार्मिक जीवन एवं राजनीति के भ्रष्ट वातावरण को व्यक्त करते हैं ।

'रेखा' अत्यंत अस्वाभाविक उपन्यास लगता है । अनेक पुरुषों से शारीरिक संबन्ध स्थापित करके एक से मात्र प्रेम करने वाली नेता रेखा आधुनिक उच्चवर्गीय नारी के जीवन के नैतिक पतन को सूचित करती है । उच्छृंखल नारी के सामने आदर्श पर अडिग व्यक्ति का भी संयम टूटने लगता है । लगता है कि स्त्री की उच्छृंखलता मात्र उसके जीवन को नष्ट नहीं करती, समाज में अनैतिक आचरणों को पनपने भी देती है ।

भगवतीचरण वर्मा ने समाज की यथार्थता की अभिव्यक्ति अपने उपन्यासों में की है । समाज में व्याप्त अनैतिक आचरणों का चित्रण करके भगवतीचरण वर्मा ने अपनी सामाजिक दृष्टि का परिचय दिया है । उनका यथार्थ बोध कहीं व्यक्ति संबन्धों के भीतर से गुज़रता है, तो कभी सामाजिक संबन्धों की व्याख्या करने में लगा रहता है, कहीं वह राजनीतिक व्यक्तियों के जीवन के खोखलेपन को प्रकट करता है । इस तरह समाज के यथार्थ को विविध आयामों से जोड़कर विविध वर्गों की समस्याओं को आंकने का सफल कार्य उनके उपन्यासों में मिलता है । वर्माजी की दृष्टि भारतीय समाज की मूल्यच्युति को भी प्रस्तुत करती है और यह दिखाती है कि यथार्थ का स्वरूप कहाँ से कहाँ तक परिवर्तित हो गया है ।

हज़ारी प्रसाद द्विवेदी का "बाणभट्ट की आत्मकथा" उपन्यास हर्षकालीन यथार्थ को प्रस्तुत करता है । राजा महाराजाओं का अनैतिक जीवन एवं नारी की दुर्दशा का वर्णन करके एक ऐतिहासिक यथार्थ की ओर उपन्यासकार ने हमारा ध्यान आकर्षित किया है ।

व्यक्तिवादी उपन्यासकार अज्ञेय ने अपने उपन्यासों के ज़रिए वैयक्तिक यथार्थ को दर्शाया है । 'शेखर एक जीवनी', 'नदी के द्वीप' जैसे उपन्यास समाज के नियमों के विरुद्ध व्यक्ति के विद्रोह को प्रकट करते हैं । 'शेखर एक जीवनी' एक आत्मकामी युवा के मानसिक संघर्षों की कथा प्रस्तुत करता है । जीवन यात्रा में अनेक लडकियों से संबन्ध जोड़ने वाला शेखर मौसेरी बहन शशि में आत्मीयता की पहचान करता है । शशि से नाजायज संबन्ध जोड़कर शेखर समाज के सामने प्रश्न चिह्न खडा करता है । लगता है कि इस उपन्यास में वर्णित यथार्थ समाज का यथार्थ नहीं लेकिन कुछ इने गिने विशेष मनोवृत्तियोंवाले व्यक्तियों के जीवन का यथार्थ है ।

'नदी के द्वीप' की रेखा भी समाज में अपनी वैयक्तिक भावना को उजागर करती है । भुवन से शारीरिक संबन्ध जोड़कर गर्भिणी बन जाने वाली रेखा ने डॉ॰ रमेशचन्द्र से विवाह संबन्ध जोड़कर, सामाजिक नियमों की अवहेलना कर वैयक्तिक भाव बोध की अभिव्यक्ति की है ।

'शेखर एक जीवनी' और 'नदी के द्वीप' के पात्र रेखा, शेखर, चन्द्रमाधव आदि भारतीय नैतिक मान्यताओं को चुनौती देते हैं । इन उपन्यासों का यथार्थ आत्मकेन्द्रित कुंठाग्रस्त जीवन बितानेवाले कुछ व्यक्तियों के जीवन का यथार्थ है ।

फणीश्वर नाथ रेणु ने अपने उपन्यासों के ज़रिए समाज के भीतर झाँककर, उसका विश्लेषण करने की कोशिश की है ।

निम्न एवं मध्यवर्गीय जीवन में व्याप्त पापाचार, धार्मिक आचार्यों के अधार्मिक जीवन आदि को प्रस्तुत करके लेखक ने देहाती वातावरण के अनैतिक पक्षों का उद्घाटन 'मैला अंचल' में किया है ।

'परती परिकथा' में एक गाँव के जीवन की असली झाँकी रेणुजी ने प्रस्तुत की है । लुत्तो जैसे व्यक्तियों का चित्रण अनपढ़े, असंस्कृत फिर भी राजनीति की बड़ी चढ़ी बातें करनेवाले आधुनिक राजनीतिज्ञों के आचरणों के खोखलेपन को प्रस्तुत करता है । इरावती जैसी स्त्री पुरुष की कामुकता का परिचय देती है । जितेन्द्र और ताजमनी के बीच अवैध संबन्ध का आरोप स्त्री पुरुष संबन्धों के प्रति परंपरावादी समाज की अंधी दृष्टि का परिचायक है ।

'जुलूस' उपन्यास में उच्चवर्गीय एवं निम्नवर्गीय जीवन की यथार्थता को व्याख्यायित करने का प्रयास मिलता है । तीर्थयात्रा के अवसर पर भी स्त्रियों से संबन्ध स्थापित करनेवाला तालेवर गोदड़ी, अध्यापिका होकर भी अपनी वासनाओं को नियंत्रित करने में असमर्थ सरस्वती देती, गाँजे का व्यापार करनेवाला ब्राह्मण चौधरी आदि समाज की यथार्थता को हमारे सामने प्रकट करते हैं ।

'कितने चौराहे' विधवा नारी शरबतिया के व्यवहार के प्रति समाज की शंका को अंकित करके नारी के आचरण संबन्धी समाज की संकुचित दृष्टि का परिचय देता है , साथ ही साथ स्वातंत्र्योत्तर समाज के जीवन की दिशाहीनता और उसकी समस्याओं का वर्णन भी प्रस्तुत करता है । निम्नवर्गीय परिवारों में नित्य होनेवाले गाली-गलौज, दारू का सेवन आदि का वर्णन करके निम्न वर्गीय परिवार की यथार्थता को लेखक ने साकार कर दिया है ।

रेणु जी ने अपने उपन्यासों में अंचल विशेष की कथा को रूपायित किया है । उनके उपन्यासों का यथार्थ भारतीय गाँवों के समाज का यथार्थ है । रेणु जी के ग्रामीण समाज में धार्मिक नियमों की अवहेलना करनेवाले, झूठ एवं बेईमानी को प्रश्रय देने वाले लोगों का भरमार है । आंचलिकता के माध्यम से पिछडे हुए गाँवों के जीवन के *रहे* सच्चे स्वरूप को अंकित करके यथार्थता के नये आयामों को रेणु जी ने प्रस्तुत किया है ।

नागार्जुन ने स्त्री-पुरुष संबन्धों में शारीरिक पवित्रता की अपेक्षा मन की पवित्रता को अहम जताकर अपनी नयी दृष्टि का परिचय 'उग्रतारा' उपन्यास में दिया है ।

'बलचनमा' में नारी पर किये जानेवाले अत्याचारों का चित्रण करके नागार्जुन ने उच्चवर्गीय जीवन के अनैतिक पक्षों का उद्घाटन किया है । गरीब होकर भी अपने जीवन को सत्यनिष्ठ एवं धर्मनिष्ठ बनाये रखनेकेलिए कोशिश करनेवाले निम्न वर्ग के लोगों की कथा अत्यंत यथार्थ पूर्ण लगती है ।

'बाबा बटेसर नाथ' में पूँजीपतियों के द्वारा किये जानेवाले अनैतिक आचरणों का चित्रणमिलता है ।

राजेन्द्र यादव ने 'उखडे हुए लोग' में भ्रष्ट राजनीतिक नेताओं के जीवन को अंकित कियाहै । स्त्री के साथ वासनामय संबन्ध जोडनेवाले, गरीबी हटाने केलिए गंभीर भाषण देनेवाले, धन के आगे आदर्शों को समर्पित करनेवाले राजनीतिज्ञों का चित्रण करके यादव जी ने सामाजिक यथार्थ को दर्शाया है । उनका उपन्यास 'सारा आकाश' संयुक्त परिवार की विषमताओं को वाणी देता है तो 'शह और मात' लेखकीय जिन्दगी की अभिव्यक्ति करता है । 'अनदेखे अनजान पुल' में एक काली कलूटी लडकी के जीवन की विषमताओं की,

इस परिवर्तन विशेष के कारण जीवन को सुसंघटित करनेवाली नैतिक मान्यताओं के स्थान पर वैयक्तिक इच्छा और अनिच्छा के अनुसार नयी मान्यतायें उभरने लगी हैं । जीवन के सारे क्षेत्र वैयक्तिक स्वार्थ की भावना के भार से झुके हुए हैं । समाज की गलत व्यवस्था, भ्रष्ट राजनीति और आर्थिक असंतुलन आदि बातें आधुनिक समाज की नैतिक मान्यताओं के विघटन के मूल में काम कर रही हैं । देश की पथभ्रष्ट सामाजिक व्यवस्था ने समाज को अनेक घेरों और आर्थिक श्रेणियों में खंडित कर दिया है ।

मूल्यों का विघटन या परिवर्तन साधारण प्रक्रिया ही है । इस प्रक्रिया को सामाजिक चेतना आगे की ओर बढाती रहती है और सामाजिक चेतना को रूपायित करनेवाली परिस्थितियाँ इस तरह से परोक्ष रूप में नैतिक भाव बोध के विकास में शरीक हो जाती है । इस प्रकार पुरानी मान्यताओं के स्थान पर नयी मान्यतायें जन्म लेने लगती हैं । पुरानी नैतिक मान्यताओं को स्थान पर नयी चिपककर रहनेवाली पुरानी पीढ़ी मूल्यों के इस परिवर्तन से चिढ़ जाती है और कहती है कि नैतिक मूल्यों का विघटन हो चुका है, आज के समाज में सत्य, धर्म, नीति का कोई स्थान नहीं रह गया है नये मूल्यों की खोज करनेवाली नयी पीढ़ी मूल्यों के इस परिवर्तन को नैतिक मान्यताओं का विकास मानती है ।

पचास के पूर्व के उपन्यासों में नैतिक यथार्थ को अपने ढ़ंग से देखने का प्रयास उपन्यासकारों ने किया है । प्रसाद के सामने पारिवारिक आचरण की विशिष्टता तत्कालीन नैतिक मूल्यों के आधार पर उभरती है तो प्रेमचंद में आते आते नैतिकता सामाजिक यथार्थ के पक्ष के रूप में दिखाई पड़ती है । सभी प्रकार के शोषण के शिकार बने हुए समाज में वेश्यावृत्ति और अवैध संबन्ध किस तरह से पनपते हैं , इसका चित्रण प्रेमचंद के उपन्यासों में मिलता है । जोशी के उपन्यास नैतिक यथार्थ को और नैतिकता के भाव बोध को सेक्स की समस्याओं से जोड़कर देखते हैं । इतिवृत्त की दृष्टि से

यथार्थता का अंकन मिलता है ।

अमृतलाल नागर ने अपने उपन्यासों में समाज का बहुत ही विशाल चित्र प्रस्तुत किया है । 'बूँद और समुद्र', 'अमृत और विष' जैसे उपन्यास अमृतलाल नागर की सामाजिक दृष्टि का परिचय देते हैं ।

'अमृत और विष' उपन्यास में पुरानी पीढ़ी और नयी पीढ़ी के आदर्शों के टकराहट का वर्णन मिलता है । उस संघर्ष में नयी पीढ़ी की विजय भी लेखक ने दर्शायी है । उपन्यास में उच्चवर्गीय समाज के अत्याचारों का वर्णन के साथ साथ गरीब लोगों के अनैतिक जीवन का चित्रण भी मिल जाता है ।

'बूंद और समुद्र' में अपने पिता के अनैतिक आचरण के विरुद्ध मुकदमा लडनेवाली वनकन्या, अपनी सारी संपत्ति समाज सेवा केलिए अर्पित करनेवाला सज्जन आदि के माध्यम से लेखक ने बदलनेवाले समाज की झांकी प्रस्तुत की है । ग्रामीण जनता के जीवन की आशाओं और निराशाओं अंधेर का वर्णन उपन्यास में मिलता है जो ग्रामीण जनता के जीवन के यथार्थ को व्यक्त करता है ।

धर्मवीर भारती का 'गुनाहों का देवता' व्यक्ति निष्ठ प्रेम और तज्जनित समस्याओं का चित्रण करता है जो सामाजिक यथार्थ से दूर खडा होता है । परंतु उनका ही 'सूरज का सातवाँ घोडा' सामाजिक यथार्थ की ओर उन्मुख लगता है । ईमान्दार व्यक्ति होने से जीवन में बहुत अधिक कठिनाईओं को सहने केलिए बाध्य हो जाने वाला तन्ना, पुरुषों की कामुकता की शिकार बननेवाली स्त्रीयाँ जैसे पात्र मध्यवर्गीय जीवन की झांकी प्रस्तुत करते हैं ।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री का 'बगुला के पंख' पथभ्रष्ट राजनीतिज्ञों की कथा है । एक खानसामा राजनीति के क्षेत्र में उतर कर अपनी कुशलता एवं मौकापरस्ती की सहायता से मंत्री तक बन जाता है और अपनी कामुक मनोवृत्तियों का परिचय देता है । भारतीय राजनीति क्षेत्र के ढोंगी, अज्ञानी व्यक्तियों की कथा जगनप्रसाद के माध्यम से अभिव्यक्त करने का, चतुरसेन शास्त्री जी का प्रयास अत्यंत सफल ही दिखाई देता है ।

' वैशाली की नगर वधु' उपन्यास वैशाली नगर के यशस्वी गणतंत्र के कलंक को प्रस्तुत करता है । वेश्या के जीवन बिताने केलिए मज़बूर होनेवाली सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी अम्बपाली नारी की विवशता को सूचित करती है । उपन्यास में राजा महाराजाओं के अनैतिक जीवन का वर्णन एक ओर मिलता है तो दूसरी ओर तत्कालीन समाज के धर्म की विडंबना को व्याख्यायित करने का प्रयास भी दर्शित होता है ।

सामाजिक यथार्थ साठोत्तरी उपन्यासों में

साठोत्तरी उपन्यास यथार्थ की खोज में संलग्न दिखाई पड़ता है नये मूल्यों की खोज करनेवाले, अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति में असफल बन जाने वाले, न चाहते हुए भी जीने केलिए मज़बूर होनेवाले अतृप्त स्त्री और पुरुष आधुनिक जीवन की विसंगतियों को प्रस्तुत करते हैं । साठोत्तरी उपन्यास इस यथार्थता की अभिव्यक्ति करता है ।

मोहन राकेश के 'अंधेरे बन्द कमरे' में आधुनिक स्त्री और पुरुष के संबन्धों की विसंगतियों का उद्घाटन हुआ है । अंधेरे बन्द कमरे के पति और पत्नी साथ रहते हुए भी अजनबीपन महसूस करते हैं ।

"नआनेवाला कल" आने वाले कल की प्रतीक्षा में जीवन जीने वाले कुछ व्यक्तियों के जीवन की यथार्थता को अभिव्यक्त करतो हैं । सेक्स की पवित्रता पर विश्वास न करनेवाली नारी बानी, स्त्रियों से संबन्ध जोड़ने में प्रयत्नशील मनोज आधुनिक जीवन की एकरसता को समाप्त करने केलिए कोशिश करते हैं ।

'अंतराल' में भी पारिवारिक संबन्धों के ढ़ीलापन का चित्रण करके लेखक ने आधुनिकता बोध की व्याख्या की है ।

मन्नूभण्डारी का 'आपका बंटी', माता पिता के प्रेम से वंचित बंटी नामक बच्चे की कथा है जिसमें आधुनिक युग के स्त्री और पुरुष के संबंधों की, उनके जीवन की दिशाहीनता एवं दायित्वहीनता की छानबीन दृष्टिगत होती है ।

निर्मल वर्मा के 'वे दिन' में स्त्री और पुरुष के आपसी संबंधों की व्याख्या मिलती है । पति से प्रेम करनेवाली रैमान पति के साथ जीवन बिताना नहीं चाहती । फ्रान्सिस मरियम को चाहता है लेकिन विवाह करना नहीं चाहता । लेखक यह कहने का प्रयास करता दिखाई देता है कि विदेशी समाज में स्त्री और पुरुष के संबन्धों में शारीरिक या मन की पवित्रता नामक कोई वस्तु ही नहीं है ।

राजकमल चौधरी का 'मछली मरी हुई' उच्च वर्गीय जीवन की यौन उच्छृंखलता की अभिव्यक्ति करता है ।

नरेश मेहता का 'डूबते मस्तूल' एक स्त्री की अतिरंजित कथा प्रस्तुत करता है । रंजना अनेक पुरुषों से प्रेम करती है और अनेक व्यक्तियों से शारीरिक संबन्ध भी जोड़ती है, सुख की इस खोज में उसकी सारी मर्यादाएँ नष्ट हो जाती हैं ।

'यह पथ बन्धु था' में एक ईमान्दार व्यक्ति के जीवन की असफलता की कहानी मिलती है तो नदी यशस्वी में बाल्यावस्था में बुरे संग से उत्पन्न अनैतिक आचरणों की कथा कही गयी है ।

शैलेश मटियानी का 'भागे हुए लोग' में व्यक्ति के मन की यौन कुंठाओं का, मठ और मंदिरों में होनेवाले धार्मिक अनाचार एवं स्त्रियों के प्रति किये जानेवाले अत्याचारों का वर्णन मिलता है ।

श्रीलाल शुक्ल का 'राग दरबारी' में स्वार्थी और अवांछनीय तत्वों के आघातों के सामने पिसटनेवाली एक गाँव की ज़िन्दगी की कथा अंकित है ।

साठोत्तरी उपन्यासों की दृष्टि यथार्थ के संबन्ध में कुछ बदलती हुई लगती है । इन उपन्यासों में स्वातंत्र्योत्तर समाज की यथार्थता को अपने सही मायनों में अंकित करने का प्रयत्न आद्यंत दिखाई पड़ता है । भूख की समस्या ही नहीं, सेक्स की समस्या ही नहीं अपितु सामाजिक क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार की समस्या को भी दर्शाकर सामाजिक यथार्थ की कुरूपता को अंकित करने का प्रयास इन उपन्यासों में दृष्टिगत होता है ।

यथार्थ और लेखकीय दृष्टि

पच्चास के पूर्व के उपन्यासकारों की दृष्टि पूर्ण रूप से सुधारवादी रही है । समाज में व्याप्त बुराईओं का ज्यों का त्यों चित्रण करके पच्चास के पूर्व के उपन्यासकारों ने सामाजिक यथार्थ को परखने का प्रयास किया है । उन उपन्यासकारों में प्रसादजी ने उच्चवर्गीय जीवन के यथार्थ का नंगा चित्र प्रस्तुत करके उच्चवर्गीय जीवन के अधार्मिक पक्षों का परिचय दिया है । प्रेमचंद ने युगीन समस्याओं से साक्षात्कार करके समस्याओं की परिस्थितियों को ठीक तरह से समझाने की कोशिश की है और उसका हल भी प्रस्तुत किया है । प्रेमचन्द का यथार्थ समाजेन्मुख है । साधारण

लोगों की जीवन की समस्यायें वहां उभरती हैं । वास्तव में सच्चे अर्थ में प्रेमचन्द ने ही यथार्थ को पकडा था । सामाजिक यथार्थ के सही संदर्भों को रूपायित कर उन्होंने उसका हल भी ढूँढ निकाला था । यहाँ पर वे आदर्शोन्मुख बन गये थे । इस कारण यथार्थ का पुट आदर्श से भी जुड गया था ।

जोशीजी ने अपने उपन्यासों में नैतिक यथार्थ के स्वरूप को उभारकर रखा है । उनके उपन्यास आंशिक रूप में सामाजिक जीवन के नैतिक यथार्थ को अभिव्यक्त करने का प्रयास है । जोशीजी ने व्यक्तियों के असामाजिक जीवन की मनोवैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत करके समाज पर पडे दुष्प्रभाव को, समाज के नैतिक पतन को सूचित करने की कोशिश की है । जोशीजी के कुछ उपन्यास ऐसे हैं जो जीवन की यथार्थता से कोसों दूर पाठक को ले जाते हैं और अतिरंजित यथार्थ का वर्णन करते हैं ।

जैनेन्द्र के उपन्यास दार्शनिक धरातल पर लिखे गये हैं । उपन्यासों में वर्णित घटनायें इतनी अस्वाभाविक एवं अयथार्थ है कि जीवन से कहीं दूर स्वप्निल जगत की घटनायें जैसी लगती हैं । जैनेन्द्र के पात्र सामाजिक यथार्थ को प्रस्तुत करनेवाले नहीं होते । कहा जा सकता है कि जैनेन्द्र के सारे के सारे उपन्यास अतिरंजित हैं । अपने उपन्यासों के माध्यम से जैनेन्द्र जी किसी सामाजिक मूल्य की प्रतिष्ठा नहीं करते ।

यशपाल के उपन्यासों में मार्क्सीय विश्लेषण के माध्यम से समाज की यथार्थता की छानबीन मिलती है । यशपाल के उपन्यासों में वर्णित कथावस्तु सामाजिक यथार्थ की झलक देती है । उन्होंने वर्गसंघर्ष के आधार पर शोषित वर्ग की वेदना को समझाने का भरसक प्रयत्न किया ।

क्रांति के माध्यम से वर्गहीन समाज की स्थापना करने की आशा अपने उपन्यासों के माध्यम से प्रकट की है। इसलिए यशपाल की औपन्यासिक दृष्टि प्रगतिवादी रही है ।

उग्रजी के उपन्यासों में भी सामाजिक भावना को अभिव्यक्ति मिली है। सुधारवादी उग्रजी अपने उपन्यासों में विभिन्न सामाजिक समस्याओं का अंकन करके, सामाजिक यथार्थ को प्रस्तुत करके पाठकों को एक विशेष सामाजिक भावना की ओर ले जाते हैं ।

जैनेन्द्र, जोशी, यशपाल आदि की पचासोत्तर के रचनाओं में उनकी पूर्ववर्ती रचनाओं में अंकित यथार्थता बोध ही अभिव्यक्त होता है ।

लेकिन पचासोत्तर काल में कुछ उपन्यासकारों की दृष्टि में पर्याप्त अंतर भी दिखाई पड़ता है । भावतीचरण वर्मा, अमृतलाल नागर जैसे उपन्यासकारों की दृष्टि अधिक समाजोन्मुख रही है । इन उपन्यासकारों ने समाज के विशालकाय कैनवास पर जीवन के यथार्थ को उसकी अपनी बुराईओं और अच्छाईओं के साथ प्रस्तुत किया है , समय की मांग के अनुसार ।

एक दूसरे घेरे के उपन्यासकारों में राजेन्द्र यादव धर्मवीर भारती जैसे उपन्यासकारों ने युगीन यथार्थ को प्रस्तुत करने में अपनी योग्यता का परिचय दिया है । उनके उपन्यास अत्यंत स्वाभाविक है । समाज की समस्याओं का वे यथातथ्य चित्रण प्रस्तुत करते हैं ।

आधुनिक उपन्यासकारों में अज्ञेय की दृष्टि बहुत ही अनोखी लगती है । अपने उपन्यासों के द्वारा अज्ञेय वैयक्तिक यथार्थ की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं एवं वैयक्तिक मूल्यों का निर्धारण करते हैं । उनके उपन्यास व्यक्तिवादी चिंतन की प्रमुखता के कारण अपने आप में नवीन हैं और ये उपन्यास बहुत अधिक चर्चा का विषय भी रहे हैं ।

अंचल विशेष की आशाओं, निराशाओं के कथाकार रेणु जी की दृष्टि संकुचित नहीं कही जा सकती । भारतीय ग्रामीण समाज की झांकी प्रस्तुत करने में वे अत्यंत सफल दीखते हैं ।

चतुरसेन शास्त्री अपने उपन्यासों के द्वारा सामाजिक यथार्थ के कुछ पहलुओं पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करते हैं ।

मार्क्सवादी विचार धारा से प्रभावित नागार्जुन अर्थ मे जन्मी सामाजिक असमानताओं का वर्णन करने में, उसके बुरे परिणाम को समाज के सामने प्रस्तुत करने में सफल हुए हैं ।

साठोत्तरी उपन्यासकारों ने व्यक्ति के आंतरिक मन की छानबीन करने की कोशिश की है । मोहन राकेश, निर्मलवर्मा, मन्नूभंडारी आदि उपन्यासकारों की दृष्टि व्यक्तिवादी रही है । उनके उपन्यासों में व्यक्ति की आंतरिक कुंठा से जन्मे अजनबीपन, अपरिचय का बोध, संदेह की भावना को स्वर मिला है ।

नरेश मेहता, शैलेश मटियानी, राजकमल चौधरी, श्रीलाल शुक्ल आदि उपन्यासकार भी व्यक्ति के मन का विश्लेषण करते हैं ।

समाज सापेक्षता और मूल्य बोध

बदलते नैतिक मूल्यों की दृष्टि से उपर्युक्त उपन्यासों के विश्लेषण से यह पता चलता है कि जीवन के सारे मूल्य परिवर्तन के शिकार हो गये हैं । परिवर्तन के दो परिणाम स्पष्टत: झलकते हैं । एक परिणाम यह सूचित करता है कि मूल्यच्युति के कारण समाज की नैतिक चेतना भी हो गयी है । दूसरा परिणाम यह घोषित करता है कि बदलनेवाले समाज में नैतिक अवमूल्यन भी एक नया मूल्य बन सकता है ।

अस्वाभाविक होने पर भी तत्कालीन समाज में जन्म लेनेवाली कामुक मनोवृत्ति की ओर और अवैध संबन्धों की ओर इशारा करने में उनके उपन्यास सफल हुए हैं । उधर जैनेन्द्र की दृष्टि नैतिकता को दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में देखना उचित समझती है और इसलिए उनकी नैतिकता साधारण लोगों के लिए बोधगम्य नहीं बनती । यशपाल नैतिक मूल्यों में आनेवाले परिवर्तन को समझते तो है परंतु उन सबको वे शोषण ग्रस्त समाज के अनिवार्य परिणाम के रूप में देखना उचित समझते हैं ।

नैतिकता और लेखकीय दृष्टि

पच्चास के पूर्व के इन प्रमुख लेखकों की नैतिक दृष्टि पूर्णतया परंपरावादी रही है ऐसा तो नहीं कहा जा सकता । नैतिक यथार्थ के अंकन में कालानुगत परिवर्तन उनके उपन्यासों में परिलक्षित होता है । प्रसाद से अज्ञेय तक आते आते सम-सामयिकता के बोध से प्रभावित होकर परिवर्तित होनेवाली नैतिकता का भिन्न स्वरूप स्पष्ट होने लगता है । इससे यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि यथार्थ के समान नैतिकता भी परिवर्तनोन्मुख रहती है और उपन्यासकार समाज में व्याप्त प्रवृत्तियों को अपने उपन्यासों में नैतिक कार्यकलापों के अंदर चित्रित करता है । इस कारण पचास के पूर्व के उपन्यासों की नैतिकता उसी तरह समाज सापेक्ष है जिस तरह कि पच्चासोत्तर उपन्यासों की नैतिकता ।

जो यथार्थता की अभिव्यक्ति उपन्यासों में प्राप्त होती है उस पर नैतिक दृष्टि डालने से दो भिन्न प्रकार की यथार्थता का बोध होता है, एक है सामाजिक मूल्य बोध से जुडी हुई नैतिक यथार्थता और दूसरी है व्यक्तिगत मूल्य बोध से जुडी हुई नैतिक यथार्थता । पच्चासोत्तर उपन्यासों में इन भिन्न मूल्य बोधों से युक्त नैतिक यथार्थता का अंकन हुआ है ।

भगवतीचरण वर्मा नियतिवादी दर्शन के सहारे जीवन के व्यापक नैतिक पक्ष को व्याख्यायित करने का प्रयास करते हैं । उनके उपन्यास अनैतिक आचरणों से भ्रष्ट उच्चवर्गीय जीवन की झाँकी एक ओर प्रस्तुत करते हैं तो दूसरी ओर स्त्री पुरुष संबन्धों की नैतिकता को भी उभारते हैं । वे कहीं नैतिक यथार्थ को सेक्स की समस्याओं से जोड़कर देखते हैं तो कहीं नैतिक यथार्थ को अर्थ की भावनाओं से भी जोड़ते हैं ।

उधर अज्ञेय व्यक्तिवादी चिंतन से प्रेरित होकर पात्रों का निर्माण करते हैं । लगता है कि उनकी दृष्टि बिलकुल व्यक्ति प्रधान है । ऐसा प्रतीत होता है कि व्यक्ति की इच्छा, अनिच्छा पर बने संबन्धों को अज्ञेय जी पवित्र मानते हैं । शेखर, रेखा जैसे कुंठाग्रस्त, रुग्ण व्यक्तियों के माध्यम से वे बदलती मनोवृत्तियों को सूचित करते हैं ।

फणीश्वर नाथ "रेणु" भारतीय गाँवों के यथातथ्य चित्रण करके ग्रामीण समाज में प्रचलित अनैतिक आचरणों को, अधार्मिक क्रियाकलापों का वर्णन करते हैं । उनकी नैतिकता सामाजिक नैतिकता से मेल खाती है । नैतिक विकृतियों का चित्रण रेणुजी के उपन्यासों के यथार्थ को व्यक्त करता है ।

नागार्जुन नैतिक मान्यताओं को प्रगतिवादी रूप देते हैं । वे अपने उपन्यासों में स्त्री की शारीरिक पवित्रता एवं नारी संबन्धी भारतीय दृष्टिकोण की व्याख्या करके शोषित नारी वर्ग के प्रति किये जानेवाले अत्याचारों का वर्णन प्रस्तुत करते हैं । उपन्यासों में वे तत्कालीन सामंतीय नैतिकता के प्रति अपना विरोध प्रकट करते दीखते हैं ।

राजेन्द्र यादव की नैतिकता सामाजिक यथार्थ से जुडी हुई लगती है । उखडी हुई पुरानी मान्यताओं की ओर यादवजी हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं । अपने उपन्यासों में स्त्री-पुरुष संबन्धों की शिथिलता को व्यक्त करके, नैतिकता को सामाजिक यथार्थ के संदर्भ में परखने की कोशिश करते हैं ।

अमृतलाल नागर अपने उपन्यासों के सहारे सामाजिक मूल्य-च्युति को अभिव्यक्त करके, नैतिकता के व्यापक पक्ष को चित्रित करने का प्रयास करते हैं । धर्मवीर भारती के उपन्यास सामाजिक यथार्थता के बोध को प्रस्तुत करते हैं । उनकी दृष्टि सामाजिक मूल्य बोध से ह जुडी हुई लगती है । प्रेम और नैतिकता की समस्या को धर्मवीर भारती आर्थिक व्यवस्था का अंग मानते हैं ।

सामाजिक यथार्थ के नैतिक पक्ष को उभारने में लगे हुए भैरव प्रसाद गुप्त की दृष्टि सामाजिक मूल्य बोध की अभिव्यक्ति करती है ।

चतुरसेन शास्त्री समसामयिक सामाजिक यथार्थता को अभिव्यक्त करके राजनीति में उभरी कामुकता, धनलिप्सा आदि की व्याख्या करते हैं

साठोत्तरी उपन्यासकार व्यक्ति के मन की कुंठाओं का वर्ण करके व्यक्तिगत मूल्यबोध से जुडी हुई यथार्थता को अंकित करते हैं उनके उपन्यास बदले हुए नैतिक भावबोध को दर्शाते हैं ।

मन्नू भंडारी पति और पत्नी के बीच की वैमनस्य भावना वर्णित करके वैयक्तिक नैतिक भावबोध का परिचय देती है ।

निर्मल वर्मा व्यक्तिगत नैतिक मान्यताओं का परिचय देते हैं तो मोहन राकेश आधुनिक जीवन की विसंगतियों के, संबन्धों की यांत्रिकता के नैतिक पक्ष को उभारते हैं । नरेश मेहता मानसिक एकता के अभाव में खोखले बन जानेवाले स्त्री पुरुष संबन्धों की नैतिकता को उभारने का प्रयत्न करते हैं तो शैलेश मटियानी, राजकमल चौधरी जैसे उपन्यासकार समसामयिक मूल्य हीनता की अभिव्यक्ति में सफल दिखाई देते हैं । इधर श्रीलालशुक्ल भ्रष्ट समाज के चित्रण करके अपने सामाजिक मूल्य बोध का परिचय देते हैं ।

इस तरह उपन्यासों में चित्रित विविध तथ्य यह प्रकट करते हैं कि नैतिक मूल्य, विघटन के पथ पर है । मूल्य विघटन की यह स्थिति समाज के स्वस्थ वातावरण को नष्ट करती दिखाई देती है । दरअसल आधुनिक समाज का मूल्य बोध अर्थ पर टिका हुआ है । आधुनिक जीवन का यथार्थ मोहन राकेश के अंधेरे बन्द कमरे का यथार्थ है । स्त्री का उच्छृंखल व्यवहार, संबन्धों का विघटन, ममता एवं मानवीकता का अभाव, सामाजिक जीवन में व्याप्त भ्रष्टाचार आदि आधुनिक समाज के नये मूल्य बोध को प्रस्तुत करते हैं ।

लेखकीय प्रतिबद्धता की सीमायें

"दायित्व शब्द में अधिकार एवं कर्तव्य की भावना"[10] निहित है साहित्यकार समाज के विभिन्न पहलुओं का चित्रण करके अपने अधिकार को व्यक्त करता है, साथ ही साथ समाज के प्रति अपनी कर्तव्य भावना को निभाता भी है । साहित्य कार समाज का अंग होने के कारण, समाज के विघटित रूप को अनदेखा नहीं कर सकता । समाज में व्याप्त बुराईयां साहित्यकार की संवेदना को जगाती हैं । जागरूक कलाकार समाज का यथातथ्य चित्रण समाज के सामने प्रस्तुत करता है । साहित्यकार चाहे आदर्शवादी हो, चाहे यथार्थवादी, उसका लक्ष्य समाज की विषमताओं को

---

10. साहित्य साधना और संघर्ष - रणवीर राग्र - पृ.33
(प्रभाकर माचवे का कथन)

दूर करके समाज में शांति एवं समरसता पैदा करना है । डॉ॰ देवेश ठाकुर ने श्रेष्ठ साहित्यकार की परिभाषा दी है । "श्रेष्ठ साहित्यकार केलिए यह आवश्यक हो जाता है कि उसकी रचनायें उन तत्वों से पोषित हो जिनसे सामाजिक जीवन उन्नत बनता है, चिंतन के नये आयाम प्रस्फुटित और विकसित होते हैं और जिनकी प्रेरणा से पाठक को जीवन यापन की स्वस्थ और प्रेरक दिशायें प्राप्त होती है"[11]। साहित्यकार का कर्तव्य सामाजिक, सांस्कृतिक मूल्यों को विघटित करने में, लोगों के मन की आस्था को नष्ट करने में नहीं जो साहित्यकार लोगों के मन में कामुकता पनपने देता है जो साहित्यकार पाठकों केमन में स्वार्थ, बेईमानी जैसे नये भावों की सृष्टि करता है; जो साहित्यकार लोगों के मन की विशालता को नष्ट करता है वह दरअसल असामाजिक कार्य ही कर रहा है । "प्रसिद्ध आलोचक रामकुमार वर्मा ने साहित्य को समाज का पथप्रदर्शन करनेवाला, नैतिक धरातल को उठानेवाला तत्व माना है । "साहित्य समाज का पथप्रदर्शन करता है और उसके नैतिक धरातल को उठाता है[12]।" रामकुमार वर्मा के दृष्टिकोण से मिलता जुलता दृष्टिकोण डॉ॰ देवराज ने भी प्रकट किया है ।" "साहित्यकार का प्रमुख उद्देश्य हमारी जीवन प्रक्रिया को उत्तेजित और समृद्ध करना है न कि उसे रूद्ध करना।[13]"

लेकिन महान साहित्यकार अज्ञेय ने दायित्व की अलग परिभाषा दी है । उनका कहना है कि साहित्यकार रूप सृष्टा है, उपदेशक नहीं ..... साहित्य समाज को कुछ देता है, समाज को बदल लेता है, सामाजिक ईकाई व्यक्ति के जीवन को संपन्नतर बनाता है ।"[14] अज्ञेय की दृष्टि में लेखक केवल अपनी अनुभूति का संप्रेषण करता है । इस संप्रेषण के फलस्वरूप समाज प्रभावित

11॰ नदी के द्वीप की रचना प्रक्रिया - देवेश ठाकुर - पृ॰134

12॰ साहित्य शास्त्र - रामकुमार वर्मा - पृ॰49

13॰ साहित्य समीक्षा और संस्कृतिक बोध - देवराज - पृ॰7

14॰ जोगलिखी - अज्ञेय - पृ॰116

हो जाता है । समाज को प्रभावित करना लेखक का उद्देश्य नहीं है । अपनी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति मात्र कलाकार का उद्देश्य है । इस आत्माभिव्यक्ति के फल स्वरूप समाज खुद ही प्रभावित हो जाता है । समाज को उपदेश देना, उसकी आस्था को समृद्ध करना अज्ञेय जैसे लेखकों का लक्ष्य नहीं रहा है । "..... कृतिकार का उद्देश्य या लक्ष्य केवल अनुभव का संप्रेषण है ।"[15]

जैनेन्द्र जी साहित्य को प्रेरणा देनेवाली वस्तु समझते हैं । "साहित्य अब प्रेरक भी है । वह झलकाता ही नहीं, अब वह चलाता भी है, हमारी बीती भी उसमें नही, हमारे संकल्प और हमारे मनोरथ भी आज उसमें भरे हैं ।"[16]

लेकिन समसामयिक परिवेश में कलाकार के दायित्व की परख करना अत्यंत विषम कार्य बन गया है । आज के नये उपन्यासों में कामप्रसंगों का खुलकर वर्णन मिलता है । उच्चतर मूल्यों के स्थान पर, "काम" पर केन्द्रित नये मूल्यों की प्रतिष्ठा की झलक आधुनिक उपन्यासों में मिल जाती है "कहीं कहीं सामाजिक जीवन को साहित्य में स्थान देते समय सत्य और असत्य की ओर उतना ध्यान नहीं होता ; जितना कामुक की नग्न लालसा के उद्घाटन करने, विलास के गुप्त अण्डों के शोध करने तथा संयम नियम को तिरस्कृत करने, उन्मुक्त भोग वासना को उद्दीप्त करने की ओर होता है ।"[17]

उपर्युक्त मन्तव्यों के आधार पर लेखकीय प्रतिबद्धता का विश्लेषण करते समय उपन्यासकारों की विभिन्न दृष्टियों का परिचय मिलने लगता है । रचनाकार की दृष्टि सकारात्मक एवं नकारात्मक

---

15. भ्वन्ती - अज्ञेय - पृ.80
16. साहित्य का श्रेय और प्रेय - पृ.8 जैनेन्द्र - पृ.32
17. समीक्षा शास्त्र - दशरथ ओझा - पृ.24

स्थितियों से गुजरती है । समिति यथार्थ की अभिव्यक्ति करनेवाली सकारात्मक दृष्टि सामाजिक भावना से ओतप्रोत है । सकारात्मक दृष्टि के उपन्यासों में अच्छे और बुरे तथ्यों का चित्रण होता है । कभी इन में निषेधात्मक प्रवृत्तियों को प्रश्रय नहीं दिया जाता है । इन उपन्यासों में वैयक्तिक भावना उतनी उभरती नहीं है जितनी व्यक्ति प्रधान उपन्यास में ।

यथार्थ का नग्न चित्रण प्रस्तुत करके कुछ साठोत्तरी उपन्यासकारों ने अपनी नकारात्मक दृष्टि का परिचय दिया है । नकारात्मक दृष्टिवाले उपन्यासों में, बडी सूक्ष्मता के साथ सामाजिक विकृतियों को देखने की प्रवृत्ति दिखाई पडती है । ऐसे उपन्यासों में कुछ ऐसे प्रसंग होते हैं जिनमें कामुकता की गंध है । नयी पीढ़ी के ये उपन्यासकार अपने उपन्यासों में समाज की कुरूपताओं का चित्रण तो करते है , लेकिन अपने अश्लील प्रसंगों के माध्यम से पाठकों की वासना को भी उद्दीप्त करते हैं । ऐसा लगता है कि इन उपन्यासकारों की प्रतिबद्धता वैयक्तिक चेतना के प्रति अधिक है ।

व्यक्ति प्रधान उपन्यासों के रचयिता समाज के प्रति कम दायित्वपूर्ण होते हैं । अपने जीवन के अनुभवों को व्यक्त करने केलिए वे पात्रों की रचना करते हैं, ये पात्र कुण्ठा ग्रस्त एवं रुग्ण होते हैं । रुग्ण मानसिकता के शिकार बने हुए पात्रों के माध्यम से जीवन की विसंगतियों को चित्रित करते वक्त सामाजिक दायित्व से दूर खडे होने की प्रवृत्ति उनमें परिलक्षित होती है नयी पीढ़ी के उपन्यासकारों में एक वर्ग इस तरह का भी है । उनकी रचना में कामुकता की गंध है, नैतिकता का तिरस्कार है, सामाजिक नियमों का उल्लंघन है । वैयक्तिक कलात्मक चेतना के आधार पर ये रचनायें सफल भी हो सकती हैं , परन्तु सामाजिक प्रतिबद्धता की दृष्टि से नहीं ।

नैतिक मूल्य विघटन से युक्त इन रचनाओं को नयी पीढ़ी की मुखमुद्रा कहना भी उचित नहीं है । नयी प्रवृत्तियाँ तो यहाँ परिलक्षित होती हैं । परंतु ये प्रवृत्तियाँ अपने में अधूरी हैं और इसलिए सर्वमान्य नहीं । इस हालत में साठोत्तरी उपन्यास के नैतिक भावबोध पर निर्णयात्मक टिप्पणी लिखना कठिन कार्य है । परन्तु इतना तो कहा जा सकता है कि इस काल के उपन्यास की नैतिक दृष्टि सामयिक मूल्यों से प्रभावित है ।

छठा अध्याय

उपसंहार

छठा अध्याय

उपसंहार

नैतिकता एक ऐसा शब्द है जिसकी सही व्याख्या करना आधुनिक परिस्थितियों में अत्यंत कठिन बात लगती है । समाज और समय के अनुसार बदलनेवाली नैतिक मान्यतायें व्यक्ति के अनुसार भी बदलती रहती हैं । बदलती नैतिक मान्यताको नयी नैतिकता कहें या मूल्यच्युति, यह आज की द्विविधात्मक स्थिति रही है ।

समाज का हर क्षेत्र इस "मूल्यच्युति" का शिकार रहा है । आज के समाज में "ऐसा होना चाहिए" का "ऐसा होता है" का जैसा उत्तर मिलता है । राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में पापाचार बढने लगे हैं । राजनीति के क्षेत्र में पहले जिन मूल्यों की प्रतिष्ठा थी, उनके स्थान पर रिश्वत-खोरी, मौका परस्ती, बेई-मानी जैसे नये मूल्य उभरने लगे हैं । धर्म के आवरण में छिपे रहकर लोग अनैतिक कार्य करने लगे हैं ।

अर्थ के क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार आधुनिक युग की अर्थ-लोलुपता, स्वार्थता जैसी मनोवृत्तियों का सूचक है । आज के सामाजिक क्षेत्र में व्याप्त इस नैतिक अवमूल्यन को सर्जनात्मक संभावनाओं से जोड़कर विश्लेषण करते समय जो निष्कर्ष निकलते हैं वे विविधात्मक प्रतिक्रियायें उत्पन्न करनेवाले हैं ।

1. "हिन्दी उपन्यासों के नैतिक भाव बोध" पर शोधात्मक दृष्टि डालते समय प्रतीत होता है कि उपन्यास सामयिक संदर्भों से जुड़कर नैतिक भावबोध के बदलते स्वरूप को स्वांशीकृत कर अपनी यात्रा तय करता आया है । इसलिए बदलते सामाजिक परिप्रेक्ष्य, बदलती मानसिक वृत्तियाँ और सापेक्षिक रूप में बदलनेवाली जन मानस की प्रवृत्तियाँ साहित्यकार की सर्जनात्मक प्रतिभा को प्रभावित करती रही है । हिन्दी उपन्यास के विकास के विविध आयामों से संबन्ध जोड़ते समय लगता है कि उपन्यास ने पूरी ईमान्दारी के साथ अपने दायित्व को निभाने की कोशिश की है । सत्य के स्थायित्व को समाज की आत्मवत्ता से जोड़कर अनुभूति के अनोखे क्षणों को पकड़ने की कोशिश हिन्दी के उपन्यासकारों ने की है । अंतर इतना ही है कि द्विवेदी युगीन उपन्यास का नैतिक भाव बोध स्थूलता को गले लगाकर चलता रहा तो साठोत्तरी उपन्यास का नैतिक बोध अहं केन्द्रित, आत्मनिष्ठ, स्वार्थ लोलुपता से संचालित व्यक्ति और समाज की मनोवृत्तियों को प्रतिबिंबित करता रहा । साठोत्तरी उपन्यास व्यक्ति की अस्मिता की खोज करता है तो उसका नैतिक भावबोध भी व्यक्ति केन्द्रित होने लगता है । भ्रष्ट समाज के मूल्यों के पतन के साथ नये सहारे की खोज में निकल पड़नेवाला व्यक्ति, यदि अकेला होकर, अन्तर्मुखी हो गया, और इस परिवर्तन में, उसने अपनी एक अलग नैतिक संहिता का निर्माण भी कर डाला, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है !

2. नैतिक भाव बोध की दृष्टि से किये गये इस अध्ययन के परिणाम स्वरूप जो निष्कर्ष हमारे सामने उभरने लगते हैं, वे परिवर्तन की नयी सीमाओं की ओर संकेत करते हैं। सामाजिक जीवन के विविध आयामों से संबन्ध जोडकर चलनेवाली रचनात्मक प्रक्रिया जहाँ समयानुबंधित नैतिकता के साथ करवटें बदलती है तब उपन्यास के स्वर और आलाप का ढ़ंग ही बदल जाता है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण स्वातंत्र्यपूर्व और स्वातंत्र्योत्तर काल के उपन्यासों के रचनात्मक विधान में दृष्टिगत होने लगता है। उपन्यासों में अंकित नैतिकता कालानुगत होने के साथ साथ सांस्कृतिक एवं आर्थिक परिबोधों से प्रभावित लगती है। उपन्यासों में प्रतिबिंबित नैतिकता की यह समय सापेक्षिकता कहीं मूल्यच्युति बनती है (परंपरागत दृष्टि से) तो कहीं नये मूल्यों की धात्री बनती है।

3. हिन्दी उपन्यास के प्रारंभिक एवं विकसित स्वरूपों में दृष्टिगत होनेवाली नैतिक मान्यतायें बिलकुल भिन्न लगती हैं। पचास के पूर्व के उपन्यासों में परिलक्षित होने वाला नैतिक भावबोध परंपरागत जीवन दृष्टि से प्रभावित होकर उपदेशात्मक स्वरूप को लेकर खडा होता है, तो पचासोत्तर उपन्यास की नैतिकता व्यक्ति चेतना की ओर अधिक उन्मुख होती नज़र आती है। इन दोनों काल खंडों में रचित उपन्यासों के तुलनात्मक अध्ययन से पता चलता है कि भारतीय नैतिकता का स्वरूप परिवर्तित हो गया है। मूल्य संक्रमण की विविध परिस्थितियों ने नये मूल्य बोध की सृष्टि करने में बडी सफल भूमिका अदा की है। इस कारण पुरानी नैतिकता की सामाजिक प्रासंगिकता संदिग्ध होती गयी है।

4. स्वातंत्र्योत्तर काल के उपन्यासकार समाज के नये यथार्थ को पकडने की कोशिश में व्यक्ति मन के इर्द गिर्द घूमकर "मूल्यच्युति" के सही संदर्भों को आंकने का प्रयास करते रहे। इस कारण पचासोत्तर उपन्यास की

नैतिक दृष्टि सामाजिक चेतना से कम, और वैयक्तिक चेतना से अधिक प्रभावित लगती है । स्वातंत्र्योत्तर काल के उपन्यासों में इस कारण स्त्री और पुरुष के शारीरिक संबन्धों पर अधिक बल दिया गया है । "फ्री सेक्स" की मनोवृत्ति से प्रभावित होने के कारणकिसी रोकथाम के बिना स्त्री और पुरुष खुलंखुल्ला शारीरिक संबन्ध जोड़ते हैं । वैधता और अवैधता नैतिकता के दायरे की बात लगती हैं ।

5. जहाँ तक प्रतिबद्धता का सवाल है स्वातंत्र्यपूर्व काल से लेकर आज तक के उपन्यासों में कालानुगत दृष्टि का अंतर दिखाई पड़ता है । पचास के पूर्व के उपन्यासकार सामाजिक नैतिकता की ओर अधिक प्रतिबद्ध रहे तो स्वातंत्र्योत्तर काल के उपन्यासकार आत्मानुभव और भोगे हुए यथार्थ के क्षणों की अभिव्यक्ति में पड़कर सामाजिक नैतिकता के आदर्शों को तिलांजलि दे गये । स्वातंत्र्योत्तर काल की विविधात्मक परिस्थितियों ने भारतीय नैतिक भाव बोध को जहाँ एक ओर आंतरिक रूप में जर्जरित किया है तो परंपरागत मूल्यों को उखाड़कर फेंकने के उद्देश्य से जन्म लेनेवाले अंतराष्ट्रीय दर्शनों ने भी इसपर कटु आघात किया है । इस तरह देशीय और अंतराष्ट्रीय घात प्रतिघातों से भारतीय नैतिकता का परंपरागत स्वरूप क्षीण और ह्रासोन्मुख हो गया है ।

6. और अंत में हिन्दी उपन्यासों के नैतिक भावबोध के अध्ययन से पता चलता है कि युगबोध से प्रेरित होकर हिन्दी के उपन्यासकार समाज के साथ चलते आये हैं और उनकी सूक्ष्म दृष्टि समाज के हित और अहित को पहचानती हुई, यथार्थ की सीमारेखाओं पर चलती हुई अपनी जीवंतता का परिचय देती रही है ।

****

संदर्भ ग्रंथ सूची

संदर्भ ग्रंथों की सूची

औपन्यासिक रचनायें

अनंतर	जैनेन्द्र पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, 1968
अन्तराल	मोहन राकेश राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1971
अमृत और विष	अमृतलाल नागर किताब महल, इलाहाबाद, 1964
अनदेखे अन जान पुल	राजेन्द्र यादव राजपाल एण्ड सन्स, 1963
अमिता	यशपाल लोकभारती प्रकाशन, 1972
आपका बंटी	मन्नू भंडारी अक्षर प्रकाशन, 1971
उग्रतारा	नागार्जुन राजपाल एण्ड सन्स, 1963
उखड़े हुए लोग	राजेन्द्र यादव चतुर्थ सं॰ अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, 1975
अंधेरे बन्द कमरे	मोहन राकेश राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1961

कल्याणी — जैनेन्द्र
पूर्वोदय प्रकाशन, 1961

कंकाल — जयशंकर प्रसाद
भारती भंडार, सं॰2022 वि॰

कर्मभूमि — प्रेमचन्द
सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, 1964

कायाकल्प — प्रेमचंद
सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, 1964

कितने चौराहे — फणीश्वरनाथ रेणु
अनुपम प्रकाशन, 1966

गबन — प्रेमचन्द
हंस प्रकाशन, इलाहाबाद

गीता पार्टि कामरेड — यशपाल
पांचवां सं॰ विप्लव कार्यालय, 1963

गोदान — प्रेमचंद
सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, 1960

गुनाहों का देवता — धर्मवीर भारती
भारतीय ज्ञानपीठ, काशी

चंद हसीनों के खुतूत — बेचन शर्मा "उग्र"
हिन्द पाकेट बुक्स, दिल्ली

चित्रलेखा — भगवतीचरण वर्मा
भारती भंडार, 1971

जयवर्धन	जैनेन्द्र पूर्वोदय प्रकाशन, 1956
जहाज़ का पंछी	इलाचंद्र जोशी राजकमल प्रकाशन, द्वितीय सं॰1956
जीजीजी	बेचनशर्मा 'उग्र' आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, 1955
जुलूस	फणीश्वर नाथ रेणु भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 1965
जिप्सी	इलाचंद जोशी लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1967
झूठा सच - देश का भविष्य	यशपाल विप्लव कार्यालय, लखनऊ, 1963
झूठा सच - वतन और देश	वही
ढेढे मेढे रास्ते	भगवतीचरण वर्मा भारती भंडार, प्रयाग, सं॰2020 पं॰सं॰
डूबते मस्तूल	नरेश मेहता साधना सदन, इलाहाबाद, 1965
तीन वर्ष	भगवतीचरण वर्मा भारती भंडार, इलाहाबाद, सं॰2020 वि॰
तितली	जयशंकर प्रसाद भारती भंडार, इलाहाबाद, सं॰2023 वि॰
त्यागपत्र	जैनेन्द्र हिन्दी ग्रंथरत्नाकर बंबई

दादा कामरेड	यशपाल विप्लव कार्यालय, 1941
देश द्रोही	यशपाल विप्लव कार्यालय, 1961
नदी के द्वीप	अज्ञेय सरस्वती प्रेस वाराणसी, 1960
नदी यशस्वी है	नरेशमेहता नाशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
न आनेवाला कल	मोहन राकेश राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 1970
निर्वासित	इलाचंद्र जोशी भारती भंडार, सं॰2015 द्वितीय संस्करण
निर्मला	प्रेमचंद सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद
परख	जैनेन्द्र हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर, बंबई, 1960, 10वीं
परती परिकथा	फणीश्वर नाथ रेणु राजकमल प्रकाशन 1961
पर्दे की रानी	इलाचंद्र जोशी भारती भंडार, सं॰2015 चतुर्थ सं॰
प्रेत और छाया	इलाचंद जोशी, भारती भंडार, सं॰2015 तृतीय सं॰

प्रेमाश्रम	प्रेमचन्द सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, 1962
प्रतिज्ञा	प्रेमचन्द्र दंस प्रकाशन, इलाहाबाद, 1971
बगुला के पंख	चतुरसेनशास्त्री, राजपाल एण्ड सन्स, 1960
बलचनमा	नागार्जुन किताब महल, इलाहाबाद, 1967
बाबा बटेसरनाथ	नागार्जुन राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1960
बारह घंटे	यशपाल विप्लव कार्यालय, लखनऊ, 1963
बाणभट्ट की आत्मकथा	हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर, 1968
बूंद और समुद्र	अमृतलाल नागर किताब महल, इलाहाबाद, 1964
भागे हुए लोग	शैलेश मटियानी किताब महल, इलाहाबाद, 1966
भूले बिसरे चित्र	भगवतीचरण वर्मा राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1975

मछली मरी हुई	राजकमल चौधरी राजकमल प्रकाशन, 1966
मनुष्य के रूप	यशपाल विप्लव कार्यालय, 1961
मुक्तिपथ	इलाचंद्र जोशी हिन्दी भवन, इलाहाबाद, 1962
मुक्तिबोध	जैनेन्द्र पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, 1965
मैला अंचल	फणीश्वरनाथ रेणु राजकमल प्रकाशन, छठी आवृत्ति, 1969
यह पथ बन्धु था	नरेश मेहता हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर, बंबई, 1962
रेखा	भगवतीचरण वर्मा राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1964
रंगभूमि	प्रेमचंद सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, 1962
रागदरबारी	श्रीलाल शुक्ल राजकमल प्रकाशन, 1975 चतुर्थ सं॰
लज्जा	इलाचंद्र जोशी भारती भंडार, इलाहाबाद, सं॰2020 पंचम सं॰

वे दिन	निर्मलवर्मा राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1966
वैशाली की नगरवधू	चतुरसेन शास्त्री हिन्द पाकेट बुक्स, दिल्ली
वह फिर नहीं आई	भगवतीचरण वर्मा राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1962, दूसरा सं॰
विवर्त	जैनेन्द्र पूर्वोदय प्रकाशन, 1957
शह और मात	राजेन्द्र यादव भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, 1959
शेखर एक जीवनी	पहला भाग, अज्ञेय सरस्वतीप्रेस, वाराणसी, 1961
शेखर एक जीवनी, दूसरा भाग	अज्ञेय सरस्वती प्रेस, वाराणसी, 1961
शराबी	बेचन शर्मा "उग्र" आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, 1961
सबहि नचावत राम गोसाईं	भगवती चरणवर्मा राजकमल, दिल्ली, 1970
सामर्थ्य और सीमा	भगवती चरण वर्मा राजकमल, दिल्ली, 1970
सारा आकाश	राजेन्द्र यादव राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1960

सूरज का सातवाँ घोडा	धर्मवीर भारती भारतीय ज्ञानपीठ, 1963
सरकार तुम्हारी आंखों में बेचन	बेचनशर्मा "उग्र" राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1960
सन्यासी	इलाचंद्र जोशी भारती भंडार, सं॰2016
सुखदा	जैनेन्द्र, पूर्वोदय प्रकाशन, 1961
सुनीता	जैनेन्द्र पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, 1964
सीधी सच्ची बातें	भावती चरणवर्मा राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
सेवासदन	प्रेमचंद सरस्वती प्रेस, वाराणसी, 1962

आलोचनात्मक ग्रंथ

अस्तित्ववाद दार्शनिक तथा साहित्यिक भूमिका - लालचंद गुप्त-
मंगल-अनुपम प्रकाशन, पटना

आधुनिक निबंध	ओम प्रकाश शर्मा राम चंद एण्ड कम्पनी, 1968
आधुनिक परिवेश और अस्तित्ववाद	शिवप्रसाद सिंह नाशनल बुक हाउस, 1973
आंचलिकता से आधुनिकता बोध	भावतीप्रसाद शुक्ल ग्रंथम, कानपुर, 1962

आज का हिन्दी साहित्य	प्रकाशचंद्र गुप्त नाशनल पब्लिशिंग हाउस, 1966
कम्यूनिस्ट नैतिकता	रमेश सिन्हा इंडिया पब्लिशर्स , लखनऊ, 1980
कौटिल्य का अर्थशास्त्र	वाचस्पति गैरोला
गांधीजी व्यक्तित्व विचार और प्रभाव	गांधीजी सस्ता साहित्य मंडल
गांधी साहित्य गांधी विचार रत्न	गांधीजी सस्ता साहित्य मंडल, 1963
जोग लिखी	अज्ञेय राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 1979
द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास	लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली
धर्म और समाज	डॉ॰ राधाकृष्णन राजपाल एण्ड सन्स,दिल्ली
नदी के द्वीप की रचना प्रक्रिया	देवेश ठाकुर वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1975
पश्चिमीय आचार विज्ञान का तुलनात्मक अध्ययन	ईश्वरचंद शर्मा जेतली राजपाल एण्ड सन्स, 1961
परिप्रेक्ष्य	जैनेन्द्र कुमार पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, 1965

भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में युग चेतना	बैजनाथ प्रसाद शुक्ल प्रेम प्रकाशन, मंदिर, दिल्ली, 1979
भ्रान्ती	अज्ञेय राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 1972
मेरे जीवन के विचार स्तंभ	गोविन्द दास भारतीय विश्व प्रकाशन, सं॰2018
वृन्दावन लाल वर्मा के उपन्यासों में नैतिकता	कमलेशचन्द्र माथुर मलिक एण्ड कम्पनी, 1972
व्यक्ति चेतना और स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास	पुरुषोत्तम दुबे अनुपमा प्रकाशन, 1973, बम्बई
राजनीति और दर्शन	विश्वनाथ प्रसाद शर्मा बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्
समकालीन कविता की भूमिका	विश्वंभरनाथ उपाध्याय, मंजुल उपाध्याय, मैकमिलन, दिल्ली, 1976
समीक्षा शास्त्र	दशरथ ओझा राजपाल एण्ड सन्स, 1963
संस्कृत काव्य में नीति तत्व	गंगाधर
संस्कृति के चार अध्याय	रामधारी सिंह दिनकर उदयाचल, पटना, 1962

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य और ग्राम जीवन - विवेकी राय
लोक भारती प्रकाशन, 1974

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और मूल्य संक्रमण	हेमेश पानेरी संघी प्रकाशन, जयपुर, 1974
साहित्यिक साक्षात्कार	रणवीर रांग्रा पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, 1978
साम्प्रतिक हिन्दी कहानी	सं• परमानंद गुप्त, सप्तांशु प्रकाशन, बैंगलूर, 1971
साहित्य संदर्भ और मूल्य	रामदरश मिश्र भारती साहित्य मंदिर, दिल्ली, 1961
साहित्य शास्त्र	रामकुमार वर्मा लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1968
साहित्य समीक्षा और संस्कृति बोध	देवराज मैक मिलन, दिल्ली, 1977
साहित्य साधना और संघर्ष	डॉ• रणवीर रांग्रा भारती साहित्य मंदिर, दिल्ली, 1965
साहित्य का श्रेय और प्रेय	जैनेन्द्र पूर्वोदय प्रकाशन, 1961
साहित्य सिद्धांत और शोध	आनंद प्रकाश दीक्षित
हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास	सुरेश सिन्हा अशोक प्रकाशन, दिल्ली, 1965

हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण	महेन्द्र चतुर्वेदी नाशनल पब्लिशिंग हउस, दिल्ली, 1962
हिन्दी उपन्यास उपलब्धियाँ	लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1970
हिन्दी वार्ष्णेय	नगेन्द्र भारती साहित्य मंदिर, प्र॰सं॰1961
हिन्दी उपन्यास विकास और नैतिकता	सुखदेव शुक्ल अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर, 1966
हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ	शशिभूषण सिंहल विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1970
हिन्दी कथा साहित्य	गंगा प्रसाद पाण्डेय भारती भंडार सं॰2008, वि॰
हिन्दी उपन्यास ऐतिहासिक अध्ययन	शिवनारायण श्रीवास्तव सरस्वती मंदिर, वाराणसी, 1968

हिन्दी कोश

बृहत सूक्ति कोश	संपादक शरण प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 1972
सूक्ति सागर	संकलन कर्ता रमाशंकर गुप्त प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, 1959
हिन्दी साहित्य कोश	धीरेन्द्र वर्मा ज्ञान मंडल, वाराणसी, प्र॰सं॰ सं॰2020

पत्र-पत्रिकायें

अणुव्रत (पाक्षिक)	अप्रैल 16-30, 1983
कल्याण (मासिक)	विवेकानंद गीता प्रेस, गोरखपुर
अनुशीलन - विश्वनाथ अय्यर षष्ठिपूर्ति	स्मारिका प्र॰सं॰ डॉ॰एन॰ रामन नायर हिन्दी विभाग, कोचीन विश्वविद्यालय, कोचीन ।

अंग्रेज़ी ग्रंथ

An Introduction to socialogy	Vidyabhushan, Sachidev, Kitab Mahal
Emergency in India	Trevor Drieberg, Sarala Jagmohan Manas Publications, 1975
India in Crisis	J.D. Sethi Vikas Publishing House, 1975
South Asian Politics and Religion	Donald E. Smith Princeton Univrsity Press, 1966
The Discovery of India	Jawaharlal Nehru Asia Publishing House, 1961
The Prospects of Industrial Civilization	Bertrand Russel George Allen and Unwin Ltd.,1959

अंग्रेज़ी कोश

International Dictionary of thoughts - John P. Bradley
Leo F. Daniels
Thomas C. Jones
Ferguson Publishing Company
Chicago